जयप्रकाश

लेखक

श्रीरामवृक्ष बेनीपुरी

प्रकाशक

साहित्यालय

पटना

प्राप्तिस्थान

भारती-सदन

मुजफ्फरपुर

बिहार

कीमत : पाँच रुपये

प्रथम संस्करण, मार्च १९४७
५००० प्रतियाँ

मुद्रक
रामेश्वर सिंह
ओरियण्ट प्रेस
पटना

विषय-सूची

दो शब्द

हमारे साहित्य में पहला चरितलेखक वाल्मीकि हैं और उनकी रामायण पहला जीवनचरित।

व्यास और कालिदास ने उनका अनुसरण किया। व्यास की चीज पुराण बन कर रह गई और कालिदास की कोरा काव्य।

हमारी हिन्दी में सूरदास और तुलसीदास दो प्रमुख चरितलेखक हैं। सूरदास भी काव्य में उलझ गये। वाल्मीकि के बाद सफल चरितलेखक तुलसीदास हैं।

यूरोप में चरितलेखन की एक नई परिपाटी चली, जिसके चरम उत्कर्ष के प्रतिनिधि एमिल लुडविक और आन्द्रे मोरियो हैं।

इतिहास, काव्य, उपन्यास, नाटक इन सबसे परे चरितलेखन की एक खास कला है, जिसमें इन चारों का पुट न पड़े, तो चीज सूनी-सूनी, बासी बासी मालूम हो।

इतिहास की सचाई, काव्य की मनोहारिता, उपन्यास की सरसता और नाटक की भंगिमा यदि चरित में नहीं आई—तो समझ जाइये, आप असफल हुए!

और, इन सबको एक साथ जुटाने के लिए सबसे आवश्यक यह है कि चरितलेखक को अच्छा चरितनायक मिले—जो सर्वाङ्गपूर्ण हो और जिसके साथ वह भावना की डोर में बँधा हो।

सिर्फ मस्तिष्क का ऊहापोह अच्छा जीवनचरित नहीं दे सकता, हृदय का स्पंदन और आलोड़न उसका प्रमुख उपादान है।

मेरा यह सौभाग्य है कि मुझे एक उपयुक्त नायक मिला और मेरा उसका सम्बन्ध सिर्फ मस्तिष्क का नहीं, हृदय का भी है।

अभी हाल में, पंडित बनारसीदास चतुर्वेदी ने अपने स्वर की स्वाभाविक ऊँचाई में मुझे हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ शब्दचित्रकार घोषित किया है। सर्वश्रेष्ठता का दावा तो मेरा नहीं है, किन्तु मैं शब्दचित्रकार हूँ, यह मैं हमेशा महसूस करता रहा हूँ और इस पुस्तक में मैंने अपने चरितनायक को मुख्यतः चित्रों के एक अलबम के रूप में पेश करने की चेष्टा की है।

जीवन का वर्णन उसकी गति में होना चाहिये — उसकी धारा में। मैंने अपने नायक को कहीं खड़ा करके उसका फोटो लेने की चेष्टा नहीं की है—जब वह खेल रहा है पढ़ रहा है, जा रहा है, दौड़ रहा है, रो रहा है, हँस रहा है—जब वह किसी महानतम कार्य को सम्पन्न करने में लीन है, या जब वह अदना से-अदना काम में अपने को बहला रहा है—मेरे कलम के कैमरे ने उन अवसरों पर उसे पकड़ने की कोशिश की है।

यह जीवनचरित कैसा उतरा, मेरा यह अलबम कैसा है, यह आप बतावें। किन्तु मुझे सन्तोष है कि शतशः कर्मकोलाहलों में फँसा, कार्य और समय की होड़ाहोड़ी में पड़ा हुआ भी मैंने इसे पूरा कर ही लिया। अपनी त्रुटियाँ ही नहीं, अपनी खामियाँ भी जानता हूँ—इसलिए जनमत और आत्मतुष्टि की खींचतान में भी मेरा कलाकार निर्द्वन्द्व और निर्विकार रह सके, यही मेरी आकांक्षा है।

अन्त में मैं 'साहित्यालय' के संचालकों को धन्यवाद देता हूँ, जिन्होंने अपने प्रकाशन की पहली पुस्तक का गौरव इसे प्रदान किया है। वे लोग मेरे 'अपनों' में से हैं; उन्होंने एक खास उद्देश्य से इस प्रकाशन-संस्था का श्रीगणेश किया है। ममत्व और प्रयास का महत्त्व दोनों मेरे हाथ पकड़ते हैं—अतः, मैं सिर्फ यही आशीर्वाद देना चाहता हूँ कि यह संस्था फूले-फले और बिहार में एक उच्चकोटि की प्रकाशन-संस्था के अभाव को दूर करे।

पटना
१५-२-४७

श्रीरामवृक्ष बेनीपुरी

अगस्त-क्रान्ति के

अज्ञात शहीदों की पुण्यस्मृति में

प्रकाशक का वक्तव्य

'साहित्यालय' के स्थापन का आयोजन हजारीबाग जेल ही में हुआ। वहाँ श्रीरामवृक्ष बेनीपुरीजी इस धड़ल्ले से साहित्य की रचना करते जाते थे कि उसके प्रकाशन की ओर बरबस ध्यान जाना स्वाभाविक था। परन्तु आयोजन को कार्यान्वित करने में स्वभावतः कुछ समय लग गया, जिसके फलस्वरूप बेनीपुरीजी के लिखे कई साहित्य रत्न हमारे देखते-देखते दूसरों के हाथों में चले गये। हाँ, जब 'जयप्रकाश' लिखा जाने लगा, तब तक 'साहित्यालय' उसके प्रकाशन-कार्य को लेने के लिए अपने को साधनयुक्त पा सका। अब तो हिन्दी ही नहीं, अन्य भाषाओं में भी इसे प्रकाशित करने की हम तैयारी कर चुके हैं।

साथ ही स्वनामधन्य श्री जयप्रकाश नारायणजी द्वारा लिखित 'इन दि लाहौर फोर्ट' को हम अँगरेजी में प्रकाशित कर रहे हैं, जिसे हम हिन्दी तथा अन्य भाषाओं में भी प्रकाशित करेंगे। श्री बेनीपुरीजी द्वारा सम्पादित जयप्रकाश जी की रचनाओं के कई संग्रह भी हम हिन्दी-संसार के सम्मुख रखने का आयोजन कर चुके हैं।

इतना ही नहीं, विद्वत्प्रवर तथा मान्य नेता आचार्य नरेन्द्रदेवजी के लेख, भाषण तथा अन्य कीर्तियों को भी हम हिन्दी तथा अन्य भाषाओं में प्रकाशित करने का आयोजन कर रहे हैं।

इनके अलावा दूसरे समाजवादी नेताओं और विशेषज्ञों की पुस्तकों क प्रकाशन के प्रबंध में भी हम लगे हैं।

हमें विश्वास है, हमारे प्रयत्न से ऐसे ग्रन्थों का प्रकाशन हो सकेगा जिनसे समाज को सुरुचिपूर्ण साहित्य प्राप्त होगा और उसे वैज्ञानिक विचार-धाराओं से अवगत होने एवं ज्ञानोपार्जन करने का अवसर मिलेगा।

निवेदक,

पटना
२६-२-४७

व्यवस्थापक
साहित्यालय

प्रवेशिका

उस दिन नदियाँ बोलीं

हाँ, उस दिन नदियाँ बोली थीं।

रात का वक्त। आसमान पर हल्के, उजले बादलों के टुकड़े बिखर रहे। उनके बीच आधा चाँद आँखमिचौनी खेल रहा। धरती पर, वहाँ से बहुत दूर, गाँव की धुँधली छाया काँपती-सी। हवा का लड़खड़ाता झोंका किनारे के कासों की झुरमुट से जब-तब खिलवाड़ कर निकल जाता।

दो नदियाँ हहहह हहहह कुलकुल-कलकल करती आती हैं, लपकती, झपकती; और एक-दूसरे से गले मिल कर स्थिर, अचचल हो रहती हैं।

लहरों के आँचल हिलते हैं; बुदबुदों के अधरों से वाणी फूट निकलती है—

•

"बहिना, गंगा, चुप क्यों हो सखि ?"

"सरयू, संगिनि, हँसना-बोलना तुम्हारे ही भाग में पड़ा है !"

"ओहो, ऐसी उदासी ? क्या बात है, बहिना ? हाँ, मैं देख रही हूँ, कुछ दिनों से जैसे तेरे 'जीवन' में कोई उत्साह उछाह, उमंग तरंग ही नहीं रह गई है।"

"उत्साह उछाह, उमंग तरंग—इन सब को एक दिन मैं भी, नहीं, मैं ही, रानी थी, सखि ! किन्तु, वे दिन चले गये ! अब तो······"

लहरें शान्त, बुदबुदे विलीन ! नीचे, एक भयानक सन्नाटा; ऊपर का आधा चाँद घने काले बादलों में छिप जाता है।

अचानक हवा का झोंका—फिर लहर पर लहर, बुदबुदे पर बुदबुदे ! गंगा, जैसे, सिसकियों में कहने लगती हैं—

"तो······मेरी व्यथा सुना चाहती है, सरयू !···आह, कहाँ मैं शिव की जटा में, हिमालय की गोद में सोई पड़ी थी ! श्वेत, श्वेत, श्वेत—शान्ति, शान्ति, शान्ति ! कहीं कालिमा की, काई की रत्ती-राई नहीं; कहीं हाहा की, हूहू की आहट, भनक नहीं। कि······हाँ, कि उस तपस्वी, भगीरथ ने, अपने तपस्या-बल से मुझे जगाया, धराधाम पर उतरने को लाचार किया !

"सुना था, यह पुण्यभूमि है, देवभूमि है, देवदुर्लभ भूमि है। चलना ही पड़ा, तो चली उमंग में, तरंग में ! मेरी वे तरंगें ! ऐरावत से पूछो, उसकी तरलता, उसकी प्रखरता !

"किन्तु आज ! सखि, आज की बात ! उफ्······

"जिस जमीन को मैंने सरसब्ज बनाया, हरीभरी, फूलों-भरी, फलों-भरी; हरे-हरे खेत, खेतों के बीच गाँव; गाँवों के बाद नगर—नगर, अट्टालिकाओं से जगमग, रत्नों से चकमक—वही जमीन, आज उजाड़ बन रही है ! उजाड़, श्मशान !

"खेतों में कराह है, गाँवों में आह है ! ये नगर नहीं, उसासों के अम्बार हैं !

"दुपहरिया में खेतों को जोतते हुए किसान—हाँ, जिन्हें दुनिया अन्नदाता कह कर चिढ़ाती है—वे ही किसान अब एक मुट्ठी अन्न के अभाव में अपने

पेट की आग मेरे पानी से बुझाने को मेरे तट पर आते हैं और अपनी रूखी, सूखी, काँपती अंजलि मेरी ओर बढ़ाते हैं, तब मेरे अंग-अंग सिहर जाते हैं, काँप उठते हैं और मैं सोचने लगती हूँ, आह, कहाँ-से कहाँ मैं भटक आई।

"यों ही अभी-अभी जिसका सुहाग-सिन्दूर मलिन नहीं हुआ, ब्याह की हल्दी हाथों से छूटी नहीं, जिसकी लाह की चूड़ी का रंग अब भी जगमग कर रहा है, जब वे किशोरियाँ मेरे घाट पर आकर, हाहा खातीं, चिल्लातीं, अपना सिन्दूर, अपनी चूड़ियाँ मुझको सौंपने लगती हैं—उस समय, तुम सोच सकती हो सखि, मेरा हृदय कितने टुकड़े हो जाया करता है।

"उफ्—मेरे घाट आज जवानों की लाशों की चिताभूमि हैं; मेरे तट जीवित नरकंकालों की क्रीड़ाभूमि।

"जीवित नरकंकाल!—क्या तुम इन्हें मानव कह सकती हो? सूखी टाँगें, झुकी कमर, सिकुड़ी छाती, धँसी आँखें,—नहीं, नहीं, यह मानवों का चित्र नहीं।

"और इन जीवित नरकंकालों के बीच बीच कुछ जीवित नरपिशाच! मोटे, मुस्तंडे—हृदयहीन, मस्तिष्कहीन......

"ये जीवित नरपिशाच......'

अब लहरों में तरलता है, बुदबुदों में चटुलता! गंगा मैया जैसे गुस्से में बोल रही हों—

"हाँ सखि, दुख की बात तो यह है कि यह सब विधाता की देन नहीं, बल्कि मानवी रचना है। हाँ, मनुष्यों ने यह स्थिति पैदा कर दी है! चारो ओर अकाल है, भुखमरी है; महामारी है, अकाल मृत्यु है! रुदन है, आँसू है; हाहाकार है, आर्त्तनाद है! और बीच-बीच में नरपिशाचों का उल्लंग नृत्य है, दानवी अट्टहास है!

"जब कभी वे रास-हास के लिए अपने बजड़े मेरी छाती पर रुतराते फिरते हैं, सोचती हूँ, क्यों न एक लहर में उन्हें सदा के लिए नरक भेज दूँ!

"किन्तु आह ! सखि, मेरी लहरों में वह ज़ोर नहीं रहा, जिसने ऐरावत की खलड़ी उधेर दी थी, उसकी देह को झंझरी बना छोड़ा था। ये आज इतराते हैं, इठलाते हैं और मैं चुपचाप देखती रहती हूँ।

"सबसे महान अनर्थ तो यह है सखि, कि मेरे तटवासियों के अन्न के प्राण छीन कर, मेरी ही छाती पर होकर, मानों उसपर मूँग दलते हुए, अब उन्हें देश विदेश भेजा जाता है, तब मैं सिर्फ टुकुर-टुकुर देखती रह जाती हूँ। हाड़ मांस या लकड़ी से मैं ज़ोर-आज़माई भी कर लूँ, किन्तु इस्पात पर मेरा क्या वश !

"अब तो एक ही काम रह गया है—रोऊँ अपनी लाचारी पर, बेबसी पर या अपने लोगों के भाग्य पर ! उत्साह उछाह, उमंग तरंग—अब इनका नाम मत लो सखि !"

फिर एक बार सन्नाटा। नदियाँ, लहरें, काश, आकाश, बादल, चाँद—सब स्तब्ध, निस्तब्ध !

तब सरयू बोली—

"यह व्यथा तुम्हारी ही नहीं है, सखि ! हम सब की ही एक हालत है ! तुम्हीं कहो न, कहाँ है मेरा राम, कहाँ है मेरी अयोध्या ? जब आज की हालत में उन दिनों की याद आती है, उफ्……

"किन्तु,……"

सरयू की वाणी में अब उल्लास था—

"किन्तु, मैं आज तुम्हें एक खुशखबरी सुनाने आई हूँ, सखि !"

गंगा बोली नहीं। वह उसी तरह उदास, अनमनी बनी रहीं !

सरयू ने अपना कहना जारी रखा। अब उल्लास में आह्लाद की पुट पड़ी हुई थी—

"हाँ, तो मैं जो खुशखबरी लाई, उसे सुनो ! यह रुदन, यह हाहाकार—सब सही। यह अत्याचार, यह उत्पीड़न—सब ठीक ! किन्तु, इन सब के ऊपर एक नई शक्ति का आविर्भाव हो रहा है, जिस शक्ति में भगीरथ की तपस्या……"

"क्या कहा ? भगीरथ की तपस्या ?"—गंगा अधीर हो उठीं, उनकी लहरों पर चंचलता खेलने-सी लगी।

"हाँ, भगीरथ की तपस्या, जिसके साथ राम की मर्यादा-पुरुषोत्तमता भी सन्निहित है। यह शक्ति भिन्न स्थानों में, भिन्न नामों से आविर्भूत हो रही है। अपनी तपस्या के बल से, अपने धनुषबाण की टंकार से यह नई शक्ति एक नई दुनिया बसाने जा रही है—नई दुनिया, सुनहली दुनिया।

"नई दुनिया—जिसमें हाहाकार न होगा, रुदन न होगा। जहाँ उल्लास होगा, अट्टहास होगा। अभाव के बदले जहाँ तृप्ति होगी, विषमता के बदले समानता। सब समान, सब भाई-भाई। सब सुन्दर, सब स्वस्थ, सब दीर्घायु। जो आयु को जीतेंगे, मृत्यु को जीतेंगे—अजर, अमर।"

"अजर, अमर ?"

"हाँ, हाँ, तभी तो यह भूमि देवभूमि होगी। देवभूमि, दिव्यभूमि।"

"वैसे दिन कब आयेंगे सखि ?"

"आ ही रहे हैं।" सरयू बोलती रही। "इस नई शक्ति के नये प्रतीकों में कई अवतरित हो चुके, कुछ अवतरित होनेवाले हैं। इस जगह, जहाँ हम-तुम मिलती हैं, उन्हीं में से एक प्रकाशपुंज प्रतीक का प्रादुर्भाव कल होने जा रहा है।"

"कल ?"

"हाँ, कल। क्योंकि कल विजयादशमी न है। जो इस नई शक्ति की विजय का भी प्रतीक होने जा रहा है, उसके जन्म के लिए इससे अच्छी तिथि कौन होगी ? और जिसे फिर एक बार भगीरथ की तपस्या और राम की मर्यादा-पुरुषोत्तमता का प्रतिनिधित्व करना है, उसकी जन्मभूमि के लिए मेरे-तुम्हारे संगम स्थान से बढ़ कर दूसरी भूमि भी कौन होगी ?"

"इस नई शक्ति की जय हो।"

"इस नये प्रकाशपुंज की जय हो।"

फिर हहहह-हहहह, कुलकुल-कलकल—

दोनों नदियाँ एक होकर बहती जा रही हैं। ऊपर का आधा चाँद अब पश्चिम क्षितिज को चूम रहा है। उसके पतले मेघखंड में उसकी शेष रश्मियाँ चमचम कर रही हैं। तटभूमि के कास में सनन-सनन करती हुई हवा प्रवाह की लहरों पर मस्ती बिखेर रही है और, उस सुदूर से, चकवा चकई के जोड़े के पर की फड़फड़ाहट सुनाई पड़ रही है।

पहला अध्याय : व्यक्तित्व का विकास

१—सिताब-दियारा

यह है सिताब-दियारा गाँव। जहाँ से गंगाजी ने बिहार में प्रवेश किया है, वहाँ से—बिहार के पश्चिमी छोर, शाहाबाद जिले से—जहाँ गंगाजी बंगाल से जा मिली हैं, वहाँ, पूर्णिया के पूर्वी छोर तक—जहाँ-तहाँ एक खास किस्म की भूमि बन गई है, जो दियारा कहलाती है।

यह भूमि गंगा के गर्भ में होती है, जैसे समुद्र के गर्भ में टापू! चारों ओर पानी-पानी, बीच-बीच में हरी-भरी आबादियाँ।

यह भूमि कुछ अजीब होती है और अजीब होते हैं इसके निवासी। चार पूरे महीनों तक यह भूमि बाढ़ की क्रीड़ाभूमि बनी रहती है। गंगाजी की उत्तुंग लहरें चारों ओर लहरा रही हैं। कभी इधर की जमीन कट कर धारा में बह गई, कभी उधर नई जमीन उग आई। जमीन कट रही है, खेत कट रहे हैं, गाँव कट रहे हैं, घर कट रहे हैं! घर कट कर गिर गये—छप्पर बहे जा रहे हैं! कभी आदमी और जानवर भी बह चले।

और, गंगा की इन विनाशकारी लहरों से अपने घर-बार को बचाने के लिए आदमी भी कम प्रयत्नशील नहीं। अपनी बलिष्ठ भुजाओं से लहरों को चीरता हुआ या अपनी नाव को उन लहरों पर नचाता हुआ, यह दो पैर का जानवर अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए संघर्ष की हद कर देता है। प्रकृति से की गई इस कशमकश के कारण उसके पुट्ठे ही मजबूत नहीं होते, उसके हृदय में भी निस्सीम साहस संकलित होता रहता है।

गंगाजी उतार पर आती हैं, बाढ़ खत्म होती है। बाढ़ के साथ ही खत्म हो जाती हैं खेतों की मेड़ें। इन मेड़ों को लेकर भी अक्सर संग्राम मचता है। जिन हाथों में पहले पतवार होते हैं, उन्हीं हाथों में तलवारें चमकने लगती हैं।

दियारे के लोग अपने दुस्साहस और दबंगपन के लिए बिहार में मशहूर ही नहीं, बदनाम भी हैं! बदनाम भी?—हाँ! अभी उस साल इस सिताब-दियारे में एक मुट्ठी सरपत के लिए क्या खून की नदी नहीं बह गई थी? गाँव के दो टोलों के दो दलों में, घास के लिए काटी गई एक पुलिया सरपत के लिए, खासी मारपीट मच गई—लाठियाँ चलीं, भाले चले और अन्त में गोलियाँ तक चल कर रहीं।

गंगा के उतार के बाद खेतों में गेहूँ, चने, मटर की फसलें जो लहराती हैं, वह देखने ही लायक! आबादी के बाद भी बहुत-सी जमीन यों ही पड़ी रहती है, जहाँ कास, सरपत आदि की घासें लहराती हैं, जिनमें भैंसें चरती रहती हैं। गेहूँ की रोटी और भैंस का दूध-दही खा-पीकर आदमी यहाँ सत्तरह-अठारह साल में ही गमरू जवान बन जाता है। बिहार की सुपुष्ट सुन्दर मानवता के नमूने देखने हों, तो आपको इन दियारों की सैर करनी चाहिये।

इन्हीं दियारों में एक प्रमुख दियारा है सिताब-दियारा। कहा जाता है, इसे राजा सिताबराय ने बसाया था, जो आखिरी मुसल्मानी जमाने में बिहार के गवर्नर थे। राजा सिताबराय बड़े ही योग्य और चतुर व्यक्ति थे। किन्तु, देश का दुर्भाग्य कहिए कि इन्होंने अँगरेजों का पक्ष लिया था और बिहार में अँगरेजों की हुकूमत की नींव मजबूत करने में उनका बड़ा हाथ था। ऐतिहासिक प्रतिशोध का यह भी एक उदाहरण है कि उसी सिताबराय के बसाये दियारे में एक ऐसा लड़का पैदा हुआ, जो अँगरेजी हुकूमत को आखिरी ईंट तक उखाड़ फेंकने में दत्तचित्त है।

अपनी ऐतिहासिकता के लिए ही नहीं, एक और स्थिति ने सिताब-दियारे को प्रमुखता और प्रसिद्धि दे रखी है। दो नदियों का संगम-स्थल हिन्दोस्तान में स्वभावतः ही तीर्थभूमि का सम्मान प्राप्त कर लेता है। जहाँ दो धारायें मिलकर एक हो जायँ—वह स्थल क्यों न पूत-पुण्य समझा जाय? सिताब-दियारे में उत्तरी भारत की दो प्रसिद्ध नदियों का संगम हुआ है। यहाँ सरयू (घाघरा) घहराती हुई आकर विशाल हृदया जाह्नवी (गंगा) से आ मिलती है।

सिताब-दियारा

दो प्रान्तों की सरहदें भी यहाँ आ मिली हैं, जिन्हें नदियों की ये दुहरी धारायें प्रायः मिटाने की कोशिश करती रहती हैं। लेकिन आदमी को शायद मेड़ों से मोह है। फलतः हम सिताब-दियारे की भूमि को कभी युक्तप्रान्त में और कभी बिहार में शुमार होते देखते हैं।

दो नदियों के संगम पर बसा, दो प्रान्तों के झूले पर झूलता यह गाँव एक छोटा-मोटा कस्बा ही है। बाईस टोले हैं इसके और जनसंख्या बाईस हजार से कम नहीं। बिहार की सभी प्रमुख जातियाँ यहाँ आकर बसी हैं और प्रायः अलग-अलग इनके टोले हैं।

उन्हीं टोलों में कायस्थों का एक टोला है, जो 'लाला टोली' के नाम से मशहूर है। किंतु, यहाँ के कायस्थों से आप उस मसि-जीवी जाति को न समझें जो शरीर-धन से सर्वथा क्षीण अपने मस्तिष्क की तीक्ष्णता के बल पर ही अपनी हस्ती कायम रखती है। नहीं, सिताब-दियारे के लाला लोगों को अपने तीक्ष्ण मस्तिष्क के साथ अपने उमड़े पुट्ठों पर भी कम नाज नहीं है।

उन्हीं लाला लोगों में, दो पुश्त पहले, एक सज्जन हुए, जिनका नाम था बाबू देवकीनन्दन लाल। वह सिताब-दियारे के लाला लोगों की उपर्युक्त परम्परा के योग्यतम प्रतिनिधि होने के साथ-साथ दियारे के दबंगपन और अक्खड़पन का भी सोलहो आना प्रतिनिधित्व करते थे। देवकीनन्दन लालजी ने अँगरेजी शिक्षा प्राप्त की और पुलिस-दारोगा हुए। भरे अंग, उमड़े पुट्ठे, चेहरे पर रोब, हाथ में हण्टर—यह घोड़े को पेंदाते हुए, देखिये, बाबू देवकीनन्दन लालजी आ रहे हैं। इनके डर से बड़े-बड़े अगड़धत्त जमीन्दार थर-थर काँपते हैं। इनके अफसरों पर भी इनका कम रोब नहीं है। अभी उस दिन अँगरेज पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट ने इनकी जरा-सी तौहीनी कर दी थी। बाबू देवकीनन्दन उसे कैसे बर्दाश्त करते? चेहरा लाल हो उठा, आँखों में खून उतर आया, खून का खप्पर राक्षस साहब-बहादुर के गोरे शरीर पर गिरने लगा! साहब हक्का बक्का! लेकिन, वह किससे कहे, कि एक काले नेटिव ने मुझे पीट दिया है। बेचारा पी गया, पचा गया।

हाँ, आज से पचास साल पहले जब गोरे साहब को गया जाता, लाल पगड़ी से ही लोग थर-थर काँपते थे, बाबू देवकीनन्दन लाल ने गोरे पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट को दफ्तर में घुसकर पीटा था।

बाबू देवकीनन्दन लालजी को कोई सन्तान नहीं थी। आप तो अपने दर्शनशास्त्र में मस्त। किंतु, उनकी धर्मपत्नी अपनी सूनी गोद पर हमेशा सिसकती रहतीं। कितने व्रत, कितनी मन्नतें! आखिर शाहाबाद के सुप्रसिद्ध हरसू-ब्रह्म की मन्नत पर उस सती-साध्वी ने एक पुत्ररत्न प्राप्त किया और उन्हीं की दया की स्मृति में उस पुत्र का नाम हरसूदयाल रखा। यही बाबू हरसूदयाल हमारे चरितनायक के भाग्यशाली पिता थे।

बाबू हरसूदयाल ने भी अँगरेजी शिक्षा प्राप्त की, किन्तु प्रकृतया वह अपने पिता के सर्वथा प्रतिकूल थे। अतः पुलिस-लाइन में न जाकर इन्होंने नहर-विभाग में मुलाजमत शुरू की और जिलेदार (डिस्ट्रिक्ट ऑफिसर) के पद से रेवन्यू-असिस्टेन्ट के पद पर पहुँचे। हरसूदयालजी के शील-सौजन्य को वे कभी भूल नहीं सकते, जो थोड़ी देर के लिए भी उनके सम्पर्क में आये। सादगी और सूफीपन के तो मानों अवतार ही थे। सरकारी मुलाज्मत के दुर्गुण उनमें छू नहीं गये थे। उनके देखने से ही उनपर श्रद्धा और भक्ति उमड़ आती थी। अपने परिवार से बहुत ही सज्जन, अपने बच्चों पर बहुत ही ममत्व रखते। बच्चों के मित्रों को भी अपने बच्चों की तरह ही मानते, दुलारते।

उनकी धर्मपत्नी का नाम था श्रीमती फूलरानी। दया-ममता की मूर्ति, पूरी गृहिणी। घर-गिरस्ती का सारा काम वही सम्हालतीं। खेती-बारी, लेन देन—सब का सूत्र उन्हीं के हाथ में और इन कामों को इस चतुरता से सहेजतीं कि देखनेवाले दंग रहते। बहुत ही कम बोलतीं—नौकरों-चाकरों से ऐसा व्यवहार रखतीं कि वे उन्हें देवी समझते।

इन्हीं श्रीमती फूलरानी की गोद में एक फूल खिला, वह जयप्रकाश के नाम से आज संसार में प्रकाश और सुवास बिखेर रहा है।

२ यह बूढ़ा लड़का !

बीसवीं सदी सारे एशिया में नया जागरण, नई किरणें बिखेरती हुई आई—चीन, जापान; मिश्र, तुर्की; अरब, ईरान—सब जगह एक गुनगुनाहट, एक हलचल।

हिन्दोस्तान में यह सदी साम्राज्यशाही की प्रतिमूर्ति में कालिख पोतती और गुलामी की छाती पर गोली चलाती हुई पधारी—हाँ, पूना में विक्टोरिया की प्रतिमा में जिन्होंने स्याही लगाई, या कलक्टर रैंड की छाती को जिन्होंने पिस्तौल से छेदा—वे नौजवान उपर्युक्त दो भावनाओं के ही प्रतीक थे।

यह इन्कलाबी सदी जब दो ही डग आगे रख सकी थी कि बिहार के एक घोर देहाती गाँव में, एक मध्यवित्त गृहस्थ के घर में, विजयादशमी की पवित्र-पावन तिथि को एक बच्चे का जन्म हुआ, जो आज हिन्दोस्तान के कोने-कोने में जयप्रकाश के नाम से प्रसिद्ध है—जो भारत के राजनीतिक आकाश की विजय-ज्योति का प्रतीक हो रहा है।

विजयादशमी की तिथि—समूचा सिताब-दियारा उत्साह और उमंग में डूबा। नये, रंगीन कपड़ों में लड़के मस्त; नौजवानों के लिए अपने पुट्ठों और हाथ के करतब दिखाने का सुनहला मौक़ा। ब्राह्मण गेहूँ के हरे सुनहले पौधों को यजमानों की शिखा से बाँधते हुए 'जयन्ती' के मंत्र पढ़ रहे। क्षत्रियों का तो यह विजय-दिवस था ही—आज उनकी बोटी-बोटी फड़क रही। लाला टोली के लोगों की मस्ती भी दर्शनीय—नौकरी पेशे, दूरदराज रहनेवाले लोग घरों को लौट आये थे। घर-आँगन गुलजार बना था—

और, उनमें सब से अधिक गुलजार था बाबू हरसूदयाल जी का आँगन, जहाँ फूलरानी की गोद में आज एक अनुपम, अद्भुत फूल खिला था।

यह सम्वत १९५९ की विजयादशमी, या १९०२ की ११वीं अक्टूबर की तिथि भारतीय इतिहास में चिरस्मरणीय होकर रहेगी, यह न तो बाबू हरसूदयालजी समझ सकते थे, न उनके आस-पड़ोस, गाँव-घर के लोग ही। बेचारी फूलरानी को इन बातों पर ध्यान देने की ही कहाँ फुर्सत थी—वह बेचारी तो अपनी गोद के अनुपम अद्भुत फूल को ही देखने में निमग्न थी।

यह अनुपम अद्भुत पूत—कितना सुघड़, कितना सुन्दर; मानों विधाता ने अपने हाथों गढ़ कर इसे भेजा है! फूलरानी अपने इस बेटे को देखकर फूली नहीं समाती।

दिन बीतते हैं, महीने आते और जाते हैं। फूलरानी की गोद का यह सुन्दर फूल दिन दिन खिलता निखरता जा रहा है। सुन्दर गोरे चेहरे पर घुँघराले और भूरे बालों के लट बिखर रहे; उभड़ी चौड़ी ललाट के नीचे दो हृदयबेधनी आँखें; लाल पतले होंठ, जो बहुत ही कम खुलते हैं, किन्तु जब उनपर मुस्कुराहट की रेखा खिंच जाती है, तो समूचा वातावरण उजला-सा हुआ दीखता है; बचपन में भी जो काफी लम्बी है, उन बाहों से अपने पैर के अँगूठे को पकड़ कर चूसता हुआ जब-कभी यह किलकारियाँ लेता है—माता के सुख सागर में तरंग-पर तरंग उठने लगती है। इसके इस फूल को कहीं नजर नहीं लग जाय—इसलिये फूलरानी ने दो दो डिठौने दे रखे हैं—ललाट पर, कपोल पर! ये डिठौने—मानहुँ चाँद बिम्ब के बैठे शालिग्राम!

महीने बीतते हैं, साल आते जाते हैं। गोद से पालने पर, पालने से आँगन में। पहले घुटनों के बल—फिर तायेई के सुर पर डग पर डग। लेकिन, यह अनुपम, अद्भुत बच्चा है न? दूसरे बच्चों की तरह न इसके अंग में चंचलता है, न वाणी में चटुलता। चलता है, जैसे पैरों को तोल-तोल कर, बोलने के लिये जिह्वा झुनझुनाती भी है, तो दाँतों का आसरा न पाकर वाणी बेमानी हो जाती है। अरे, इसके दाँत अबतक नहीं निकल पाये! क्या यह बउला है? 'बउल'—एक दिन फूलरानी के मुँह से यह निकला और आज जिसकी वाणी से हिन्दोस्तान का कोना कोना गूंज रहा है, वह अब भी अपने परिजन, पुरजन, मित्रजन का 'बउलजी' ही बना हुआ है।

हरसूदयालजी नहर विभाग में काम करते हैं। ज्यादातर शाहाबाद जिले में रहते हैं—सन् ५७ के विद्रोह के नेता बाबू कुँअर सिंह के शाहाबाद में। उनके साथ ही 'बउलजी' भी अपनी माँ के साथ रहते हैं। विद्रोह का वातावरण इस बच्चे की हड्डी में भले ही असर पैदा कर रहा हो, ऊपर-ऊपर कुछ नहीं दिखाई पड़ता। इतना शान्त कहीं लड़का होता है? उछल-कूद नहीं, ऊधम-फसाद नहीं, किलकारियाँ अट्टहास नहीं। यह खुद खिलौना सा

लगता है, किन्तु खिलौनों से जैसे उसको विरक्ति-सी है। हमेशा ध्यानस्थ अवस्था में—कुछ देख रहा है, कुछ घूर रहा है, जैसे दर्शनीय पदार्थ के भीतर घुसकर उसका रहस्य जानने के प्रयत्न में हो। बोलता है, कम, बहुत ही कम; किन्तु जब कभी मुँह खोलता है, ऐसी बात, इस ढंग से कहता है, मानों कोई बड़ा-बूढ़ा बोल रहा हो। बाबू हरसुदयालजी अपने इस प्यारे, लाड़ले, नन्हें बच्चे को गौर से देखते हैं और एक दिन अपने को जब्त नहीं कर पाते, कह बैठते हैं—'ई त बूढ़ लरिका हउअन!'

'यह तो बूढ़ा लड़का है!'—पिताजी के मुँह से निकला यह वाक्य 'बउलजी' के अकाल-वृद्धत्व का सूचक नहीं था, समय पाकर यही उनके ज्ञान-वृद्धत्व का सूचक सिद्ध हुआ। आज भी उनकी बातें सुनकर बहुत-से वयोवृद्ध नेता बुदबुदाते हैं, यह आज का छोकरा हमें सिखाने चला है, जैसे, हमारे बूढ़े बाबा हो!

अब, बउलजी पाँच साल के हुए, उन्हें स्कूल भेजना चाहिये—कायस्थ का बेटा जितना जल्द कलम पकड़े, उतना ही अच्छा। और, यह देखिये, बउलजी स्कूल भेजे जा रहे हैं। उन्हें आज नये-नये कपड़े मिले हैं—सिर पर जर की टोपी है, बदन में फूलदार अचकन है, पैर में चमचमाते जूते हैं। बगल में रंगीन बस्ता और तख्ती दबाये वह स्कूल ले जाये जा रहे हैं। घर में उत्सव हो रहा है, स्कूल में बताशे बँट रहे हैं। हरसुदयालजी खुश हैं, फूलरानी खुश हैं, सारा घर जैसे आनन्द का अखाड़ा बना हुआ है।

अ-आ, इ-ई, क-ख, ग-घ; पहाड़े सवैया, आना-छटांक। किताबें पढ़ी जा रही हैं, हिसाब बनाये जा रहे हैं। एक बार गुरुजी ने जो कह दिया, वह मानों जबान पर हमेशा के लिए लिख गया; एक बार गुरुजी ने तख्ती पर लकीरें खींच दीं, वे मानो दिमाग पर खिंच गईं। बउलजी? कौन कहता है बउल, 'बउलजी एक दिन पढ़ने-लिखने में नाम कर दिखायगा'—गुरुजी की यह वाणी सफल होकर रही।

सिताब-दियारे में अपर प्राइमरी स्कूल है। थोड़े दिन वहाँ; थोड़े दिन उन जगहों के स्कूलों में, जहाँ उनके पिताजी मुलाजमत करते थे। यों प्राइमरी की शिक्षा खतम होती है। अब बउलजी को कहाँ भेजा जाय? इधर-

जो कभी किसी दर्जे में द्वितीय हुए हों नहीं—सिर्फ पढ़ने-लिखने की बात ही आम, हां राजेन्द्र बाबू से भी ज्यादा प्रतिभाशील; पाण्डेय हरनन्दन थे, जिन्होंने पुरातत्व-विभाग में बहुत हो नाम किया; श्रीरामनवमी बाबू थे, जिन्होंने चम्पारण में महात्माजी का साथ दिया और जो जयप्रकाश के ऑफिशियल गार्जियन थे और शम्भु बाबू तो थे ही। अपनी मित्रमण्डली से मिलने श्रीबाबू (आज बिहार-सरकार के प्रधान मंत्री) भी यहाँ प्रायः आ जाया करते थे।

बिहार के ये सब के-सब नौनिहाल पढ़ने-लिखने में ही नामी नहीं थे, इन सबके हृदयों में देश-सेवा का बीज-वपन हो चुका था और देश की राजनीतिक जिन्दगी से दिलचस्पी लेना इन्होंने शुरू कर दिया था। जयप्रकाश की उम्र छोटी थी; किन्तु, बुजुर्ग लोग आपस में देश की समस्याओं को लेकर जो वादविवाद करते, सलाह-मशविरा करते, उनकी ओर इस बच्चे का ध्यान बरबस जाता और होते होते उसके हृदय में भी देशभक्ति की भावना प्रस्फुटित होने लगती है। अब वह सिर्फ स्कूली किताबों का कीड़ा नहीं है—वह उस समय की पत्र पत्रिकाओं को भी ध्यान से पढ़ता है और घटनाओं एवं व्यक्तियों के बारे में अपने निर्णय पर आने की भी चेष्टा करता है। इन बुजुर्गों के पास जो बाहरी किताबें हैं, उन्हें वह पढ़ता है और स्कूल की लाइब्रेरी का उपयोग भी वह कम नहीं करता।

जिस तरह प्रातःकाल का शीतल मंद समीर पाकर कमल का एक-एक दल विकसित, प्रस्फुटित होने लगता है, उसी तरह इस अनुकूल वातावरण में जयप्रकाश का व्यक्तित्व भी धीरे-धीरे विकास पाने लगा।

जयप्रकाश सरस्वती-भवन में ही रहते थे कि उनकी बड़ी बहन चन्द्रावतीजी का विवाह हुआ। जयप्रकाश के नये भाई साहब श्री ब्रजबिहारी सहाय जी पटना-हाईकोर्ट के आफिस में काम करने के सिलसिले में पटना आकर ही रहने लगे। तब से वह सरस्वती भवन छोड़कर ब्रजबिहारी बाबू के डेरे में आ गये और जब तक पटना में रहे, उन्हीं का साथ रहा और आज भी प्रायः उन्हींके साथ रहते हैं। ०

ब्रजबिहारी बाबू शान्त प्रकृति के बड़े ही निष्ठावान, चरित्रवान व्यक्ति हैं। उनकी संगति ने जयप्रकाश के चरित्र-निर्माण में और भी सहायता

स्वर्गीय बाबू हरसूदयाल (जयप्रकाश के पिता)

उधर नहीं भेजकर, पटना ही क्यों न भेज दिया जाय? पटना में ही तो शम्भु रहते हैं—शम्भु के साथ रहेगा, अच्छी संगत, अच्छी देखरेख! एक दिन, सिताब-दियारे ऐसे गाँव या नहर-विभाग के मुकामों के कस्बों में रहनेवाला लड़का, प्रान्त की राजधानी में भेज दिया गया।

अफसोस, आज शम्भु बाबू नहीं रहे! बाबू शम्भुशरण समय पाकर पटना के सुप्रसिद्ध वकील हुए। वह जयप्रकाशजी के भतीजे होते थे, नातेदारी में छोटे होते, पर उम्र में काफी बड़े। उस समय वह पटना में कौलेज की पढ़ाई समाप्त करने में लगे थे। वकालत शुरू करने के थोड़े दिनों बाद ही, भरी जवानी में, उनकी मृत्यु हुई। यदि वह जीवित होते, अपने इस छोटे चचाजी की उन्नति देखकर कितने प्रसन्न होते! किंतु, विधाता की प्रसन्नता तो सब से ऊपर है न!

३ सरस्वती-भवन में

उस दिन का पटना आज का पटना नहीं था।

पिच की सपाट सड़कों के स्थान पर उन दिनों ऊबड़ खाबड़ रोड़ों की भरमार थी, मोटर और बस को रेलपेल के बदले पटनिया टमटम झमझम करती चलती थी। पुरानी ढहती इमारतों के बीच यह उजड़ा हुआ शहर शाम-सुबह अपने प्राचीन गौरव के नाम पर सिसकियाँ भरता-सा दीखता था।

इस शहर के केन्द्र में पटना-कौलेजियट स्कूल था, जिसकी इमारत भी पुरानी थी। किन्तु पुरानी इमारत में बैठनेवाला यह स्कूल और उसीसे सलग्न पटना-कौलेज प्रान्त में नई रोशनी बिखरने के प्रयत्न में लगे हुए थे।

उन दिनों पटना-कौलेजियट का हेडमास्टर थे श्री अमजदअली खाँ। खाँ साहब बिहार के योग्यतम शिक्षकों में गिने जाते थे। बच्चों के मानसिक विकास के साथ ही उनके चरित्र-निर्माण पर वह काफी ध्यान देते थे। जयप्रकाश का यह सौभाग्य था कि शहर में आते ही ऐसे योग्य शिक्षक के तत्त्वावधान में उन्हें पढ़ने-लिखने सुअवसर मिला।

पटना कौलेजियट में जयप्रकाश का नाम सातवें दर्जे में लिखाया गया, जो आज का चौथा दर्जा है। इस नये वातावरण में थोड़े दिनों में ही

घुलमिल गया यह देहाती विद्यार्थी पटना-कौलेजियट में नियमित रूप से जानेवाले विद्यार्थियों में शुमार किया जाने लगता है!

सिर पर फेल्टकैप, शरीर में कमीज और कोट, कमर में धोती, पैर में अँगरेजी जूते—सकुचता, शरमाता, अपने-आपको छिपाता, किन्तु अपने रूप-रंग, चाल-ढाल की वजह से और भी नुमायाँ होता, यह जो १२-१३ वर्ष का लड़का पटना की ऊबड़ खाबड़ सड़क के रोड़ों पर आँखें गड़ाये आगे बढ़ता जा रहा है, पहचानिये, वह कौन है? अभी बचा है, किन्तु आप उसकी टोपी में तेल और गर्द का निशान नहीं पायेंगे, कपड़ों पर रोशनाई का कहीं दाग नहीं देखेंगे। किताबें, कापियाँ, पेंसिलें—सबसे उस बच्चे की सजगता और सावधानता चूई-सी पड़ती है।

यह अब क्लास के आधे दर्जन अच्छे लड़कों में शुमार किया जाता है। किंतु, न इसका घमंड है उसमें, न कुछ आडम्बर। चुपचाप आकर अपने दर्जे में बैठ जाता है; मास्टर जो पढ़ाते हैं, ध्यान से सुनता है; जो पूछते हैं, उसका सावधानी से जवाब देता है। दर्जे में तरह तरह के लड़के हैं, वे उसे अपने गिरोह में शामिल करने की कोशिश में रहते हैं; किन्तु, वह पद्मपत्रमिवाम्भसा का उदाहरण बन उनसे अलग-अलग ही रहा करता है। उसे कुछ अपनी ही धुन है, वह स्वयं किसी चीज की खोज में है—किन्तु उसे अभी मालूम नहीं, वह चीज क्या है; वह कस्तूरी मृग-सा आप अपनी गंध में विभोर है।

संयोग सदा उसका साथ देता रहेगा—यहाँ भी दिया। यह जिस होस्टल में रहता है, वहाँ का वातावरण उसके अन्दर उस छिपी हुई वस्तु के प्रगट होने में सहायक होता है।

आज के मिन्टो, जैक्सन, न्यूटन आदि नामों से अभिहित होस्टलों में रहनेवाले विद्यार्थी 'सरस्वती भवन' का नाम नहीं जानते होंगे। किन्तु, एक जमाना था, जब सरस्वती-भवन पटना के विद्यार्थियों का सबसे अधिक प्रसिद्ध और प्रभावशाली केन्द्र था। जिस समय जयप्रकाश पटना आये, सरस्वती-भवन बिहार की सर्वोत्तम प्रतिभाओं का अखाड़ा था। वहीं अनुग्रह बाबू थे, जो आज बिहार के अर्थमंत्री हैं; वहीं रामचरित्र सिंह जी थे, जो आज बिहार के बिजली और सिंचाई विभाग के मंत्री हैं; पण्डेय रघुनन्दन थे,

पहुँचाइए। ब्रजविहारी बाबू से पूछिये, उनकी किशोरावस्था के जीवन का वह बहुत ही मनोरंजक वर्णन देंगे। हाईकोर्ट क्वार्टर से कौलेजियट स्कूल दूर पर है। जयप्रकाश को रोज तीन आने पसे मिलते हैं--टमटमवाले को एक आना देकर वह स्कूल पहुँचते हैं; एक आने में टिफिन के वक्त जलपान करते हैं और एक आना फिर देकर टमटम पर वापस आते हैं। ब्रजविहारी बाबू के दोस्त आते हैं और उनके इस 'दुधोन' साले से तरह-तरह की दिल्लगियाँ करते हैं; किन्तु कहीं एक हाथ से ताली बजती है। दिल्लगी की जगह सम्मान-भावना ले लेती है--इस लड़के के शील सौजन्य के आगे उन्हें भी सर नगूँ होना पड़ता है! ब्रजविहारी बाबू बड़े निष्ठावान व्यक्ति हैं, या तो ब्राह्मण के हाथ का खायेंगे, या अपने घर के लोगों के हाथ का। ब्राह्मण बीमार पड़ गया, चन्द्राजी मायके हैं। ब्रजविहारी बाबू स्वयं रसोई बना रहे हैं। जयप्रकाश अकेले उन्हें क्यों चुल्हे के निकट झुलसने दें? उन्हें पूजा करने को भेज आप दाल छौंक रहे हैं, तरकारी बघार रहे हैं। रसोई बनाने की यह शिक्षा आगे चलकर अमेरिका में कितना काम देगी--आप पीछे देखेंगे।

कौलेजियेट के हेडमास्टर की जगह पर अब जनाब रास मसूद साहब आये हैं, जो पीछे चलकर निज़ाम हैदराबाद के शिक्षा-मंत्री हुए और 'सर' की उपाधि से आभूषित किये गये। इधर जयप्रकाश भी अब इन्ट्रेंस इम्तहान की तैयारियों में हैं। अँगरेज़ी उनकी अच्छी है, हिन्दी अच्छी है, संस्कृत अच्छी है। साहित्य की ओर दिलचस्पी भी कम नहीं। किन्तु, हृदय साहित्य की ओर है, मस्तिष्क विज्ञान की ओर। गणित भी कम अच्छा नहीं--१०० में ९८ अंक ले आना उनके लिए आसान है। अतिरिक्त विषयों में उन दिनों 'मैकेनिक्स' भी एक विषय था। इस विषय से आगे चलकर विज्ञान की पढ़ाई में मदद मिलेगी, इसलिए इसे ले रखा है। वह क्या जानते थे कि इसी विषय के चलते उनकी परीक्षा का फल मनोनुकूल नहीं हो सकेगा! यदि संस्कृत लिये होते, तो कहीं अच्छा फल होता। किन्तु, प्रारम्भ से ही जयप्रकाश फल की ओर देखनेवाले नहीं थे।

जनाब रास मसूद साहब की जगह विटमोर साहब कौलेजियट का हेडमास्टर होकर आये। अँगरेज़ होकर भी हिन्दोस्तानी विद्यार्थियों पर

बहुत ही स्नेह रखते। लेकिन इच्छा रखते हुए भी अपने को भारतीय भावनाओं के समझने में समर्थ नहीं बना सकते थे। एक दिन उनकी मुठभेड़ स्कूल के इस शान्त शिष्ट विद्यार्थी से हो ही जाती है। एक त्योहार के दिन में ही उन्होंने परीक्षा का दिन तय कर दिया है। साहब ने तय कर दिया, कौन जबान हिलाये? न शिक्षकों में ऐसा बल था, न विद्यार्थियों में ऐसा साहस। किन्तु, छः विद्यार्थियों का आपस में विचार हुआ और तय कर लिया गया, इसका विरोध किया जायगा। ये छ विद्यार्थी दर्जे के सर्वोत्तम विद्यार्थी हैं। परीक्षा के दिन सब विद्यार्थी परीक्षा-भवन में बैठे हैं; सभी शिक्षक 'पहरे' दे रहे हैं। किन्तु, ये छ. विद्यार्थी अपनी गैरहाज़िरी से ही वहां नुमायाँ हो रहे हैं। गोरा हेडमास्टर गुस्से से लाल हो रहा है। दूसरे दिन, जब ये स्कूल में आते हैं, वह इन्हें बुलाता है। इनमें, देखिये, यह जयप्रकाश भी हैं!

एक तरफ गुस्से से लाल बना, गोरा हेडमास्टर है, दूसरी ओर ये आधे दर्जन नन्हें विद्यार्थी। वह पूछता है, गरजता है,–तुम क्यों नहीं परीक्षा में बैठे? इनकी तरफ से कहा गया, कल त्योहार जो था! त्योहार? जो-हाँ! त्योहार—लगो हाथ, तुम्हें बेंत लगेंगे! बेंत? छः जोड़ी छोटी-छोटी हथेलियाँ निर्भीक आगे बढ़ती हैं। साहब उन्हें देखता है, इन नाजुक हथेलियों पर बेंत? किन्तु, प्रश्न है तो बात निकल गई है! हथेलियों पर बेंत पड़ते हैं, किन्तु फूल बनकर! यह थी छोटे-भारतीय बच्चों की गोरे साहब के हृदय पर विजय!

अन्ततः इन्ट्रेंस की परीक्षा होती है, जयप्रकाश उसमें बैठते हैं। जैसी उम्मीद की जाती थी, वैसा फल तो नहीं ही हुआ; किन्तु तौभी स्कालरशिप के साथ पास किया!

४ किशोरावस्था की आदर्शवादिता!

सरस्वती-भवन का वातावरण जो छाप दे चुका है, वह दिन-दिन स्पष्ट होता जा रहा है।

मेधावी, विनयी, परिश्रमी जयप्रकाश के अन्दर साधक जयप्रकाश का भी जन्म और विकास हो रहा है। बहुत दिनों तक जो अध्ययन और

मनन के रूप में दिखाई पड़ती थी, वह साधना अब जीवन के आभ्यंतर और बहिरंग पर भी प्रगट हो रही है।

अभी वह किशोर ही है; यही १५-१६ वर्षों का। किन्तु, जैसे वह अपने जीवन का एक क्रम तय कर चुका है और उसपर चलने के प्रयत्न में लीन है। वह बहुत ही सबेरे उठता है और दाँत हिलानेवाला जाड़ा ही क्यों न हो, सबेरे नहा लेता है, फिर पाठ पर बैठ जाता है। पाठ— गीतापाठ।

हाँ, गीता का वह अनन्य भक्त हो चला है। अभी उस दिन उसने सुना नहीं था कि बालक खुदीराम मुजफ्फरपुर में फाँसी के तख्ते पर झूलते समय भी गीता के श्लोक ही दुहराता रहा; अभी उसने सुना नहीं है, स्वामी विवेकानन्द गीता-ज्ञान के द्वारा ही अमेरिका में भारतीय श्रेष्ठता का डंका बजा सके थे।

वह घर पर ही गीता-पाठ नहीं करता; जब स्कूल में जाता है, गीता लिये जाता है और टिफिन के वक्त अपने संगी-साथियों को एकत्र कर गीता सुनाता और अपनी योग्यतानुसार उसकी व्याख्या करता है। यह गीता-प्रेम उसका इतना बढ़ता जायगा कि वह अपनी पत्नी को पहली भेंट, पहले उपहार के रूप में, गीता ही देगा और जब अमेरिका जाने लगेगा, गीता की एक प्रति अपने साथ लेता जायगा।

बिहार की राजनीति में उस समय दो धारायें काम कर रही थीं। एक ओर बंगाल के संसर्ग के कारण आतंकवादी कार्यों की ओर नौजवानों की प्रवृत्ति बढ़ रही थी। हिन्दोस्तान के इतिहास में पहला बम बिहार में ही फूटा था; पहली राजनीतिक डकैती बिहार में ही हुई थी। हाँ, दोनों के कर्त्ता बाहरी लोग थे। बम खुदीराम बोस ने मुजफ्फरपुर में चलाया था; डकैती अर्जुनलाल सेठी ने शाहाबाद में की थी। किन्तु, इन घटनाओं के असर से बिहार के युवक अछूते नहीं थे। बम-पिस्तौल का आकर्षण और शीघ्र अपने देश को मुक्त करने की उतावली उन्हें इस ओर प्रवृत्त करती थी।

दूसरी धारा थी गाँधीजी की। गाँधीजी ने चम्पारण में आकर और वहाँ पर एक अजीबोगरीब लड़ाई छेड़कर निलहे साहबों को जो परास्त किया,

उसका असर भी नौजवानों पर कम नहीं पड़ रहा था। गांधीजी की सादगी, उनके जीवन की सरलता, जनता के साथ उनकी एकात्मता नौजवानों की भावनाओं को उनकी ओर आकृष्ट करने के लिए कम नहीं थी। उस समय का नौजवान बिहार राजनीति की इन धाराओं में उतराता फिरता था; कभी वह एक धारा में बहता था, कभी दूसरी में। उसकी जिन्दगी एक झूले की-सी थी—इधर-उधर पेंग लेती, कहीं स्थिर नहीं।

जयप्रकाश भी इन दोनों धाराओं के गिर्दाब में थे। गांधीजी के लेखों, उनकी जीवनी आदि का इतना बड़ा असर हुआ कि उन्होंने अपने पूरे रहन-सहन को ही बदल दिया। बारीक, सुन्दर कपड़ों को उतार दिया; चमचमाते चर-मर करते जूते फेंक दिये। बाजार जाकर मोटी धोती ले आये और उसे घुटनों तक ही पहना। कमीज कोट की जगह मोटे कपड़े के कुर्त्ते ने लिया। एक देहाती चमार की दुकान पर गये और चमरौंधा जूते का जोड़ा कुछ आनों में खरीद लाये। किन्तु, उसे पहनें कैसे? कितना कड़ा, सख्त है यह। रेंड़ी का तेल रखकर उसे मुलायम बनाया, किन्तु, तोभी उसने पर तो काट ही दिये!

जो मुश्किलसे फिट हो रहे हैं, जिन्हें पहन कर ठीक चलना मुश्किल है, जिनकी शकल भद्दी है, तेल से चुपड़े होने के कारण जिनपर धूल जम गई है, उन जूतों को पैर में पहने; जिसके सूते मोटे हैं, जिसकी बुनाई ऊबड़-खाबड़ है, जो मुश्किल से घुटनों के नीचे पहुँच पाती है, उस धोती को कमर से लिपटे; और इस धोती को ही मैच करनेवाला भद्दा, खुरदरा कुर्त्ता पहने यह साधक जयप्रकाश जा रहा है। अपनी साधना पर ही इसे सन्तोष नहीं, यह अपने साथियों को भी अपने रंग में रँगना चाहता है। स्कूल में इसने एक समिति बना रखी है। उसके बाजाब्ता मेम्बर हैं। उसकी नियमित बैठकें होती हैं—टिफिन के वक्त स्कूल के किसी कोने में या फुर्सत के दिन यहाँ-वहाँ। गीता अब भी पढ़ी जाती है, किन्तु उसके साथ ही राजनीति, देशसेवा, समाजसुधार आदि बातों पर विचार-विमर्श भी होते हैं। स्वभावतः ही जो गम्भीर है, वह जयप्रकाश अपने चेहरे पर पूरी गम्भीरता लाकर इन बैठकों में जब 'प्रवचन' करने लगता है, तो मालूम होता है, आकाश-

गंगा में स्नान कर तुरत-तुरत कोई देवदूत इस धराधाम पर पधारा है और इन हमजोलियों को कुछ दिव्यसंदेश अपनी तोतली वाणी में सुना रहा है।

दूसरी धारा का आकर्षण भी उसे खींचता है। अभी उस दिन की बात है। भोर-भोर, धुँधलका भी दूर नहीं हुआ है कि सरस्वती-भवन में हलचल मच जाती है। सब जग गये हैं; सब दूर पर देख रहे हैं, घूर रहे हैं; किसी के मुँह से आवाज नहीं निकलती, किन्तु सबके चेहरे पर आश्चर्य और भय को छाया स्पष्ट है। यहाँ से कुछ दूर पर, वह प्रोफेसर यदुनाथ सरकार का डेरा है, (जो अब सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ सर यदुनाथ सरकार हैं)। उनके डेरे के चारों ओर पुलिस की लाल पगड़ियाँ हैं, जिनके रोब को अफसरों की भूरी पोशाक के चमकीले बटन और चौगुना बढ़ा देते हैं। प्रोफेसर सरकार के घर की खानातलाशी हो रही है। खानातलाशी—जी हाँ, वहाँ एक नौजवान रहता है, जो क्रांतिकारी-दल का है।

क्रांतिकारी-दल! उसका आकर्षण बढ़ता जाता है। वह अवश्य ही क्रांतिकारी-दल से सम्पर्क करेगा। उसे अब पता चल गया है, इस पटना शहर में क्रांतिकारियों का एक अड्डा है, जिसमें ज्यादातर बंगाली लड़के हैं। वह उनसे मिलेगा, उनकी बातें सुनेगा, उन्हें समझने की कोशिश करेगा—क्योंकि बिना समझे वह किसी ओर पैर बढ़ा नहीं सकता। जहाँ चाह, वहाँ राह। धीरे-धीरे उसकी आकांक्षा पूरी होती है। उनमें से एक से उसकी जान-पहचान होती है। आतंकवाद के साथ जो रोमांचकता लगी है, उसका जादू इस किशोर पर चलाया जाता है। कभी गंगा-किनारे, लोगों से दूर, उस निराले, नीरव घाट पर, भोर में मुँह अंधेरे ही, कभी उस उजड़े, सूने खंडहर में, हौले-हौले, झुटपुटे के वक्त! इतने हथियार हैं, इतने आदमी हैं। ज्यों ही वक्त आया, जितने गोरे अफसर हैं, उन्हें बम से उड़ा दिया जायगा—"गोरन को मार-मार बोरन में भरि हों!" और जितने सरकारी दफ्तर हैं, सब पर कब्जा कर लिया जायगा। बंगाल तैयार है, पंजाब तैयार है, महाराष्ट्र तैयार है। बिहार पीछे क्यों रहे? क्या यह शर्म की बात नहीं? तुम्हारे ऐसे विचारवान, निष्ठावान नौजवानों की खास जरूरत है। आओ, दीक्षा लो—क्रान्ति-सेना में नाम लिखाओ!

हृदय मथन होता है, वह क्या करे? वह आह्वान अनसुना कर देने लायक तो नहीं? किन्तु, उसका मन मानता नहीं है। वह शुरू से राजनीति में गोखले का हिमायती रहा है, गोखले के मरने पर उसने एक प्रशस्ति कविता भी लिखी थी, इस तरह शोक मनाया था, जैसे उसका कोई सगा-सम्बन्धी चल बसा हो। फिर गांधीजी के भारतीयता के अनुकूल सादे जीवन का असर उसपर हुआ था और उस आदर्श को अपने जीवन में उतारने की कोशिश भी उसने शुरू की है। किन्तु, यह नई पुकार भी तो ऐसी नहीं लगती जिसे वह सुनकर ही अनसुनी कर दे। मस्तिष्क पर इसका असर न हो, किन्तु उसके हृदय पर, उसकी धमनियों में इसका प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता। उसका हृदय उद्वेलित हो उठता है, उसका रक्त स्पंदशील बन जाता है।

वह कुछ निर्णय नहीं कर पाता, वह ऊहापोह में पड़ा है। किन्तु घटना उसकी मदद कर देती है। अचानक वह बंगाली नौजवान अन्तर्धान हो जाता है। वह उसकी खोज में निर्जन घाटों पर जाता है, सूने खंडहरों में जाता है। वह नहीं मिलता। मानो नाटक के एक अंक का ड्रापसीन हो जाता है! दर्शक अब नये अंक, नये दृश्य की प्रतीक्षा करें। क्योंकि यह किशोर नये दृश्यों, नये अंकों, नये नाटकों का सृजन करने के लिए ही पैदा हुआ है।

५ साहित्य बनाम विज्ञान

साधक जयप्रकाश के साथ-साथ साहित्यिक जयप्रकाश का भी विकास हो रहा है।

जब वह सरस्वती-मन्दिर में पहुँचा, उसने अपने एक बुजुर्ग के हाथ में एक पत्रिका देखी — ऊपर हँस वाहिनी, वीणावादिनी 'सरस्वती' की भव्य दिव्य मूर्ति थी; और भीतर नयनाभिराम छपाई में लेखों और कविताओं का मनोरम गुलदस्ता। वह उन दिनों उसके सब लेखों को समझ नहीं सकता था, किन्तु, कवितायें उसे सबसे अधिक भाती हैं। श्री मैथिलीशरणजी की कवितायें तो उसे सबसे अच्छी लगती हैं, क्योंकि वह उनमें अपनी रुचि के अनुरूप भावनायें प्राप्त करता है। वह देशभक्त बन चुका है; जो कविता देशभक्ति की भावना हृदयों में भरे, उसे वह सर्वोत्कृष्ट कविता उन दिनों, मानता है।

'सरस्वती' के बाद 'मर्यादा' !—'मर्यादा' में वह राजनीति अधिक पाता है, इसलिए खुश है। किन्तु, 'प्रभा' तो इन दोनों से अच्छी! राजनीति और साहित्य का कैसा सुन्दर सम्मिश्रण! उन दिनों 'प्रभा' के सम्पादक थे प० माखनलाल चतुर्वेदी और 'भारतीय आत्मा' के नाम से लिखी उनकी कवितायें नौजवानों को बहुत ही प्रोत्साहित करती थीं। साप्ताहिकों में 'प्रताप' उसे पसंद है, खास कर फौजी-प्रवासियों की करुण कथा, प० तोताराम सनाढ्य की लिखी, वह बड़ी उत्सुकता से पढ़ता है।

वह पुस्तकें भी पढ़ता है। 'भारतेन्दुजी' के नाटक उसे बहुत ही आकृष्ट करते हैं! भारतदुर्दशा, नीलदेवी आदि नाटक उसकी आँखों में कई बार आँसू ला चुके हैं! अब बाजार में 'भारत-भारती' और 'जयद्रथवध' की धूम मच जाती है, वह भी उन पुस्तकों के प्रशंसकों में हो रहता है। किन्तु, 'प्रियप्रवास' के आते ही उसकी रुचि बदल जाती है। 'प्रियप्रवास' की करुणा के प्रवाह में जैसे वह बह जाता है।

कुछ दिनों के बाद तुलसीदास का 'रामचरित-मानस' उसका प्रिय ग्रंथ हो जाता है और जब वह अमेरिका जाने लगता है तो दो बाहरी पुस्तकों में एक तुलसी बाबा की यह रामायण भी होती है।

होते-होते वह दिन आता है, जब वह सिर्फ साहित्य-रसिक ही नहीं रह जाता; वह स्वयं लेखक और कवि बनने का हौसला करने लगता है। अपनी लेखनी से मातृभूमि के उद्धारकार्य में सहायक बनूँगा, ऐसा सोच कर डरते-डरते एक दिन वह लेखनी पकड़ने की धृष्टता भी कर बैठता है!

किन्तु, वह लिखे क्या? यहाँ भारतेन्दुजी का असर सबसे ऊपर आ जाता है। वह नाटक लिखेगा! अंक, दृश्य आदि का ढाँचा बनाकर वह एक नाटक लिखना शुरू कर देता है!

और, 'प्रियप्रवास' की भाषा और छन्द के अनुसरण पर उन दिनों जो कवितायें उसने लिखीं, उनकी कुछ पंक्तियाँ, आज भी आप उससे सुन सकते हैं—बशर्ते कि आपके आग्रह में विनोद की भी पुट हो!

अपने लेखन की योग्यता को वह परीक्षा की कसौटी पर स्वयं एक बार कसना चाहता है। उन दिनों बिहारी-छात्र संघ की ओर से कई प्रतियोगितायें

हुआ करती थीं। एक प्रतियोगिता थी हिन्दी में लेख लिखने की, जिसमें स्कूल-कौलेज सबके छात्र सम्मिलित हो सकते थे। अभी वह स्कूल में ही था; वह क्या खाकर कौलेज के विद्यार्थियों के साथ आँखें मिलाने चले ? किन्तु, नहीं, नहीं ! वह संकोची है, विनयी है; किन्तु हीन-भावना उसमें नहीं है। लेख का विषय है—"बिहार में हिन्दी की अवस्था।" वह इस लेख के लिए तैयारी करने में जुट पड़ता है। इस सम्बन्ध का सारा साहित्य पढ़ जाता है, अधिकारी विद्वानों से पूछताछ भी करता है। अन्त में लेख तैयार हो जाता है और वह उसे परीक्षक के पास भेज देता है। परीक्षक कौन है ? प्रोफेसर बदरीनाथ वर्मा एम० ए० काव्यतीर्थ, जो आज आचार्य बदरीनाथ वर्मा के नाम से बिहार प्रान्त के शिक्षा-सचिव हैं ! बदरीबाबू ऐसे निष्पक्ष और कड़ा परीक्षक; तो भी जयप्रकाश का लेख सर्वश्रेष्ठता का सौभाग्य प्राप्त करता है। ओहो, स्कूल के एक विद्यार्थी ने कौलेज के सारे विद्यार्थियों को मात दे दी।

उसकी गद्य-लेखन शैली पर सरस्वती-सम्पादक प० महावीर प्रसाद द्विवेदी जी का छाप आज भी स्पष्ट दीख पड़ता है। वह विशुद्ध प्रांजल भाषा का हिमायती है, किन्तु विशुद्धता के नाम पर पंडिताऊ भारीभरकम बनावटी भाषा का वह कट्टर विरोधी है।

किन्तु, उन दिनों साहित्य से अधिक धूम थी विज्ञान की। हमारे देश की उन्नति क्यों रुकी रही, क्यों रुकी हुई है ? साधकों की, साहित्यिकों की तो हमारे देश में कमी नहीं। हममें ऐसे-ऐसे कविमनिषी हुए हैं, जिनके जोड़ के व्यक्ति संसार में मिलना कठिन ! हममें कालिदास हुए हैं, तुलसी-दास हुए हैं, इस युग में भी कवीन्द्र रवीन्द्र हैं, जिनकी काव्य-प्रतिभा के सामने संसार का सर झुक चुका है। किन्तु तोभी हमारा देश अन्य देशों से बहुत ही पिछड़ा हुआ है। क्यों ? यह युग विज्ञान का है, विज्ञान ने यूरोप की प्रतिभा में पंख लगा दिये हैं, वहाँ के निवासी आज आसमान की सैर कर रहे हैं। विज्ञान ने जापान की कायापलट कर दी है ; रूसी भालू को किस तरह पटक दिया इस पोले राष्ट्र ने ! भारत में भी आज सबसे अधिक आवश्यकता है वैज्ञानिकों की। दो उदाहरणों ने सिद्ध कर दिया है, हममें

वैज्ञानिक प्रतिमा की भी कमी नहीं। श्री जगदीशचन्द्र बोस और श्री प्रफुल्लचन्द्र राय ने इस क्षेत्र में कमाल कर दिखलाया है। आचार्य राय की ओर उसका अधिक आकर्षण है, क्योंकि इनके विज्ञान के साथ साधना भी मिली हुई है। अपना व्यक्तिगत स्वार्थ कुछ नहीं; भोग विलास से सर्वथा परे, विज्ञान की उन्नति में ही जिसने अपना पूरा जीवन उत्सर्ग कर रखा है, सादगी का अवतार, सरल जीवन का उदाहरण — तपस्वी राय उसके आदर्श के अधिक अनुरूप जंचते हैं।

किन्तु प्रश्न उठता है क्या विज्ञान को वह अपना सकता है? वैज्ञानिक प्रवृत्ति की सूचना देती है गणित की अभिरुचि। गणित में वह किसी से कम नहीं। उसे याद नहीं, कभी सौ में नब्बे से कम नम्बर उसने गणित में प्राप्त किये हों। 'मैकनिक्स' में उसे कुछ कम नम्बर आये, जरूर। किन्तु, यह तो 'चांस' का एक खेल था। इस विषय में भी 'थ्योरी' में उसे कम नम्बर नहीं आया, हाँ 'प्रैक्टिकल' जरा खराब हो गया—जो सोलहो आने चांस की आँखमिचौनी है।

मैं वैज्ञानिक बनूँगा—यह तय कर लेता है और कौलेज में सायस में ही नाम लिखाता है। अब उसकी मेज पर एक ओर भारत-भारती, प्रिय प्रवास, रामचरितमानस हैं, दूसरी ओर फिजिक्स और केमेस्ट्री के पाठ्य-ग्रन्थ। उसका हृदय साहित्य के नवरस के सतरंगी धनुष की रंगीनियों से ओतप्रोत है, किन्तु, उसका मस्तिष्क अब भौतिक विज्ञान के तत्वों और अणुओं के अनुसंधान एवं रसायन-शास्त्र की बारीकियों के अन्वेषण में लीन है। साहित्य और विज्ञान की यह गंगा जमुना की समानान्तर धारा उसके जीवन क्षेत्र में अनवरत प्रवाहित होती रहेगी। साहित्य उसके विज्ञान को सरस और सहृदय बनाता रहेगा, विज्ञान उसके साहित्य को विश्लेषणात्मक और विचारात्मक रूप देता रहेगा।

६. प्रभावतीजी से परिणय

"बटलजी, जरा चलिए, राजेन्द्र बाबू के डेरे पर ब्रजकिशोर बाबू के दर्शन कर आवें।"—शम्भू बाबू ने अपने छोटे चचाजी से साग्रह कहा।

ब्रजकिशोर बाबू—आदमी की याददाश्त कितनी छोटी होती है ? जिसने १९२१ से १९३३ तक बिहार की कांग्रेस पर एकछत्र राज्य किया, जो बिहार का, सही मानी में, सर्वप्रथम कांग्रेसी था; जो अपने ज़माने का सर्वश्रेष्ठ *जनसेवी और जनन-भक्त था; जिसने महात्मा गांधी को चम्पारण बुलाया और* निलहों की सारी शेखी धूल में मिला दी; जो इम्पीरियल कौंसिल में बिहार का सर्वप्रथम गैरसरकारी प्रतिनिधि था; जिसकी गिनती फख्र के साथ बिहार के निर्माताओं में की जायगी; दरभंगा में रह कर, कितने ही मौकों पर, जिसने प्रान्त के सब से बड़े धनीमानी व्यक्ति दरभंगा-नरेश के मनसूबों को चूर-चूर किया था—आज मालूम होता है, जैसे हम उसे भूल गये ! गठिया से परेशान, लाठी टेक कर चलते हुए, सदाकत आश्रम की राजनीति को जिसने एक युग तक संचालित किया—जो प्रान्तीय कांग्रेस कमिटी में अपने लिए एक साधारण *सदस्य की हैसियत रखता था, किन्तु, प्रान्त के सारे राजनीतिक सूत्र जिसकी* मुट्ठियों में रहते थे, जो घटनाओं की सृष्टि करनेवाला और उनका मनोनुकूल अंजाम देनेवाला एवं व्यक्तियों को बनाने और बिगाड़नेवाला था; जिसकी छत्रछाया में पल भर ही राजेन्द्र बाबू का व्यक्तित्व इतना विकसित हो सका; जिसके समक्ष राजेन्द्र बाबू विनयशील बच्चे की तरह व्यवहार करते थे,—उस ब्रजकिशोर बाबू को हम-आप भले भूल जायँ, बिहार का इतिहासकार भूल नहीं सकता।

इन्हीं बाबू ब्रजकिशोर प्रसाद जी के दर्शन करना और राजेन्द्र बाबू के डेरे पर ! क्योंकि तबतक सदाकत-आश्रम नहीं बन सका था; और राजेन्द्र बाबू कलकत्ता से पटना आकर पटना हाईकोर्ट में एक सफल वकील की जिन्दगी गुज़ार रहे थे। तब पटना हाईकोर्ट के वकीलों की सूची में सर अली इमाम थे, हसन इमाम थे, मिस्टर मानुक आदि के नाम थे, जिनके समक्ष वकालत करके सफल होना कोई छोटी बात नहीं थी। बिहार के सार्वजनिक जीवन में सरगर्मी से दिलचस्पी लेने एवं अपने सरल सादा जीवन के कारण भी राजेन्द्र बाबू की प्रसिद्धि प्रान्तव्यापी हो चुकी थी। कलकत्ता-विश्वविद्यालय की परीक्षाओं में कई बार लगातार सर्वश्रेष्ठ होने के कारण तो पढ़े-लिखे लोगों में उनका नाम विद्यार्थी-जीवन से ही प्रमुखता प्राप्त कर चुका था।

राजेन्द्र बाबू के डेरे पर ब्रजकिशोर बाबू के दर्शन करने जाने में बउलजी को क्या उज्र हो सकता था भला! यह तो एक सौभाग्यसूचक ही बात थी—यों भी, अपने किसी गुरुजन की आज्ञा पर उज्र-एतराज करना बउलजी का स्वभाव नहीं रहा है। एक प्रातःकाल हम इन दोनों चचा-भतीजे को पटना-गया-रोड पर जाते हुए देखते हैं और वे स्टेशन के नजदीक की मोड़ पर आकर (आज जहाँ 'सर्चलाइट' का मकान है उसके निकट के) एक मकान में घुसते हुए दीखते हैं।

वहाँ प्रान्त के दो दिग्गजों से इन दो नौजवानों की भेंट होती है। बउलजी को देखते ही ब्रजकिशोर बाबू खिल-से उठते हैं। उन्हें ऐसा लगता है, जैसे उनकी प्यारी बेटी प्रभावती के लिए ही इस नौजवान की सृष्टि हुई है! प्यारी बेटी—हाँ, प्रभा उनकी बहुत ही प्यारी बेटी है। बेटे की तरह ही उसका पालन पोसन किया है। बेटे की तरह ही—अभी परसाल तक प्रभा बेटों की ही पोशाक में रही है—कुर्ता, पाजामे में। उसके पढ़ाने-लिखाने में भी उन्होंने कमी नहीं की है। स्कूल नहीं भेजकर घर पर ही उसे बाकायदा शिक्षा दिलवाई है। कन्याविद्यालय, जालंधर का कोर्स वह पढ़ रही है। अभी वह तेरह चौदह साल की ही है। बिल्कुल बालिका—भोली-भाली, संसार से अनभिज्ञ! इतनी छोटी बच्ची की कहीं शादी होती है? किन्तु, बउलजी-ऐसा वर यहीं हाथ से निकल गया तो! नहीं, नहीं, यह शादी होनी ही है—प्रभावती, जयप्रकाश—प्रभा और प्रकाश का यह परिणय अवश्य ही दोनों परिवार के लिए, संसार के लिए मंगलप्रद होगा, वह बूढ़ा राजर्षि निर्णय कर लेता है!

कुछ मामूली-सी पूछताछ! क्योंकि विशेष ब्यौरे की बातें तो शम्भुबाबू से उन्हें पहले ही ज्ञात हो चुकी हैं। इतनी मामूली बात कि जयप्रकाश समझ भी नहीं पाते कि इसके भीतर विवाह सन्निहित है। उन्हें खुशी इसी बात की है कि उनके साथ इस तरह आत्मीयता का व्यवहार किया गया और इसी खुशी-खुशी में वह अपने बहनोई के घर लौटते हैं।

किन्तु, बातें छिपती नहीं; फिर शादी ब्याह की बातें, और वह भी ब्रजकिशोर बाबू-ऐसे व्यक्ति की बेटी के ब्याह की बात! जब बाबू हरसू-

दयाल के निकट ब्रजकिशोर बाबू की ओर से बाजाप्ता यह पैगाम पेश किया जाता है—जरा भी ननु-नच किये बगैर वह हाँ कह देते हैं। क्योंकि वह जानते हैं, उनका सुपुत्र भी इस सम्बन्ध के विषय में कोई विरोध नहीं करेगा। फूलरानी यह खबर सुनकर तो फूली नहीं समा रहीं। पराये घर की एक छोटी-सी किशोरी आकर उनके घर-आँगन को दिन-रात प्रभावित प्रकाशित करेगी, यह कल्पना-मात्र ही उन्हें आनन्द - विभोर करने के लिए काफी है।

विवाह तय हो जाता है, तिथि तय हो जाती है। फूलरानी अपने इस अठारह वर्ष के बेटे को, जो उस दिन भी ५ फीट ९ इंच का जवान बन चुका था, आज फिर एक बार बच्चा बनाने पर तुल गई हैं।

फिर आज उसके सर पर जर की टोपी है, फिर उसके बदन में फूल-दार अचकन है, फिर उसकी आँखों में काजल है; फिर उसके चन्दन-चर्चित कपाल के एक कोने पर डिठौना है। जिसके ऊपर हल्की पतली मसें भींग रही हैं, उन लाल-लाल होठों की लालिमा ताम्बूल-राग से और भी रक्ताक्त हो रही है। हाथ में रेशमी रुमाल लिये, नौशाह बना, हर गुरुजन का *आशीर्वाद प्राप्त करता हुआ, फूलरानी का यह फूल आज गुलस्तान फूल बना* हुआ है—गुलाब का एक गुच्छा जैसे जमीन पर टहल घूम रहा हो।

गीतों के कलरव में, बाजेगाजे और जनरव में, जो बरात सिताबदियारे से दिन को जगमग करती बाबू हरसूदयाल के दरवाजे से रवाना होती है, वह श्रीनगर की शाम को उजाला करती, रंगीन बनाती बाबू ब्रजकिशोरप्रसादजी के दरवाजे से जा लगती है। प्रभावती के योग्य ही यह वर मिला—परि-जन पुरजन सबके मुँह से यह निकल पड़ता है। सास अपने इस सुन्दर-सजीले दामाद को देखकर कृतकृत्य हैं; गाँव की स्त्रियाँ इस दुल्हे पर निछा-वर हो रही हैं। प्रभावतीजी की सखियाँ दौड़ी-दौड़ी जाती हैं और जहाँ वह पीली साड़ी पहने, जो सिन्दूर से अभी लाल बनेगी उस केश-राशि को खोले, अज्ञात आकुल आकांक्षा से चेहरा लाल बनाये बैठी थीं, वहाँ पहुँचती हैं, और उसे गुदगुदा कर, हँसा कर, उसके इस हृदयेश का नखशिख वर्णन सुना करके ही दम लेती हैं।

शादी सानन्द समाप्त होती है। यह कहना व्यर्थ है कि इस शादी में तिलक दहेज की घिनौनी प्रथा का सर्वथा बहिष्कार किया गया था। क्योंकि, ब्रजकिशोर बाबू देशभक्त ही नहीं थे, समाजसुधारक भी थे। हाँ, समाज-सुधार के नाम पर शादी-ब्याह को मुर्दनी रूप देने की जो प्रथा चल पड़ी है, उसके कायल वह नहीं थे और बाबू हरसुदयाल के लिए भी अपने इस दुलारे बेटे की शादी में अपने उत्साह-उमंग को रोक रखना कठिन था। सात्विक, शुद्ध उत्सव और आनन्द के बीच यह मङ्गल कार्य सम्पन्न हुआ।

प्रभावतीजी से जयप्रकाशजी का विवाह कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ। एक तो इस विवाह के द्वारा प्रान्त की राजनीति से उनका रक्त-सम्बन्ध सा हो गया। बाबू ब्रजकिशोर का दामाद होना ही बिहार की राजनीति में उच्चातिउच्च पद पर पहुँचने का लाइसेंस प्राप्त कर लेना था। यदि जयप्रकाशजी ने वामपक्षी राजनीति नहीं अपनाई होती, तो अमेरिका से शिक्षा प्राप्त कर लेने के बाद, उन्हें राजनीति में वे सब पद सुलभ हो गये होते जिनके लिए लोग जमीन-आसमान एक किये रहते हैं। ब्रजकिशोर बाबू के साथ ही राजेन्द्र बाबू से भी उनका रक्त सम्बन्ध सा हो गया, खासकर जब ब्रजकिशोर बाबू की छोटी लड़की, प्रभावतीजी की बहन, से राजेन्द्र बाबू के बड़े लड़के श्री मृत्युञ्जय प्रसादजी का विवाह हुआ। किन्तु इन दोनों सम्बन्धों से महत्वपूर्ण तो महात्मा गांधीजी से उनका सम्बन्ध हो जाना हुआ। जब जयप्रकाशजी अमेरिका गये, ब्रजकिशोर बाबू ने प्रभाजी को महात्माजी के साबरमती-आश्रम में भेज दिया। वहाँ जाकर प्रभाजी ने महात्माजी एवं पूजनीया 'बा' का वह स्नेह प्राप्त किया, जो पुत्री को ही प्राप्य है। उनकी नजरों में प्रभावतीजी क्या हैं, उसकी यथार्थ सूचना तब मिली, जब माता कस्तूर बा आगाखाँ-महल में बीमार पड़ीं। सरकार ने जब पूजनीया-बा की सेवा के लिए एक व्यक्ति बाहर से बुला लेने की इजाजत दी, तो अपनी पुतोहुओं एवं दूसरी निकट-सम्बन्धी महिलाओं को छोड़कर उन्होंने प्रभावतीजी को ही बुला देने का आग्रह किया। प्रभावतीजी उस समय भागलपुर जेल में थीं—बुलाने में दिक्कतें भी हुईं। पू० बा की मृत्युशय्या के निकट बैठने और उनकी अन्तिम सेवा करने का यह सौभाग्य पाना कोई

छोटी बात नहीं थी। उसी प्रभावतीजी के पति के प्रति महात्माजी के हृदय में कौन-सी आत्मीय भावना काम करती होगी, इसकी कल्पना ही की जा सकती है। हाँ, जब-तब इसका प्रत्यक्ष प्रदर्शन भी हम देख पाते हैं।

प्रभावतीजी स्वयं भी एक सुशिक्षित, सुसंस्कृत व्यक्तित्व रखती हैं और महात्माजी के आदर्शों में अपने को सर्वथा लीन कर उन्हीं के बताये पथ पर देश और समाज की सेवा में अनवरत लगी रहती हैं। प्रभावतीजी ऐसी आदर्शवादिनी, कर्त्तव्यपरायणा पत्नी पाना भी कम सौभाग्य की बात नहीं— फिर उनके चलते जो राजनीतिक सम्बन्ध जयप्रकाशजी को अनायास ही प्राप्त हो गये, उससे इस परिणय का महत्त्व तो कई गुना बढ़ ही जाता है।

७. असहयोग की पुकार पर

ज्यों-ज्यों जयप्रकाश किशोरावस्था की सीमा को अतिक्रमण कर युवावस्था की ओर पैर बढ़ा रहे हैं, त्यों-त्यों देश का वायुमंडल गरम से गरम होता जाता है।

प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति के साथ ही भारत के राजनीतिक आकाश में तूफान के लक्षण दिखाई देने लगे। जिस तरह कांग्रेस के श्रीगणेश की तह में एक अँगरेज भद्रजन का हाथ था; उसी प्रकार युद्धोत्तर जागृति का प्रतीक एक अँगरेज महिला बनी। श्रीमती एनीबिसेंट ने होमरूल का वह हंगामा मचाया कि सरकारी अधिकारी भी भयभीत हो गये। उन्होंने श्रीमती बिसेंट को नजरबन्द किया, उनके अखबार को जब्त किया। किन्तु यह लहर इन दमनात्मक कार्रवाइयों से दबनेवाली नहीं थी; वह और उमड़ी और उमड़ती ही गई। जयप्रकाश का देशभक्त हृदय इस लहर से अछूता नहीं रह सका। वह सिर्फ मौखिक सहानुभूति रख कर सन्तोष करनेवाले नहीं थे; होमरूल-सम्बन्धी आन्दोलन में उन्होंने क्रियात्मक रूप से भाग लिया। उसकी पुस्तिका, बैज आदि के वितरण में वह सरगर्मी से काम करते रहे।

उसी समय लोकमान्य तिलक अपनी छः साल की सजा काटकर मांडले जेल से छूटे। गीता के कर्मयोग-रहस्य-भाष्यकार की ओर गीता के इस युवाप्रेमी का ध्यान आकृष्ट होना स्वाभाविक ही था। लोकमान्य तिलक का

"स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है" का महामन्त्र सिर्फ उसकी जिह्वा पर ही नहीं था, उसके रोम-रोम में वह व्याप्त हो चुका था।

उसके बाद ही घटनायें विद्युत्-वेग से करवटें लेने लगती हैं। रौलट कमीशन बैठती है; रौलट ऐक्ट पास होता है; समूचा देश उसके विरोध में शोर करने लगता है; इस विरोध का नेतृत्व गाँधीजी के हाथों में आता है; सत्याग्रह के प्रतिज्ञापत्र पर हस्ताक्षर होने लगते हैं; फिर १३ अप्रील को सारा देश उसके विरोध में उपवास करता है और इसे रद्द करा कर ही दम लेने की प्रतिज्ञा करता है; इस भयानक उथल-पुथल के समय ही पंजाब में जालियाँवालाबाग का कुकांड हो जाता है, निहत्थे लोगों—जिसमें बच्चे और औरतें भी थीं—पर जनरल डायर मशीनगनों से गोलियाँ चलाता है; इस कुकांड से सारा पंजाब खौलउठा उठता है; लोग बृटिशसत्ता को उखाड़ फेंकने को उद्यत हो जाते हैं; उन्हें दबाने के लिए गोलियों की बौछारों पर बौछारें होने लगती हैं; फौजी कानून जारी होता है; नागरिकों को नंगा करके कोड़े लगाये जाते हैं; उन्हें छाती के बल रेंगकर गलियाँ पार करने को लाचार किया जाता है; इधर पंजाब का यह हत्याकांड होता है, उधर टर्की के साथ अँगरेज बदसलूकी करते हैं; मुसलमानों में खिलाफत के प्रश्न को लेकर उत्तेजना फैल जाती है; पंजाबकांड और खिलाफत के सवाल को एक-सूत्र में गूँथ कर गाँधीजी असहयोग आन्दोलन का सूत्रपात करते हैं और उसे धीरे-धीरे उस ऊँचाई पर पहुँचा देते हैं, जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती थी; समूचा देश एक जलती भट्ठी बन जाता है—चारों ओर धुआँधुआँ, आग-आग, ज्वाला-ज्वाला!

जयप्रकाश भी इस धुएँ के घेरे में पड़ जाते हैं। डेढ़ साल तक वह कौलेज में विज्ञान पढ़ चुके हैं। प्रयोगशाला में उन्होंने तत्वों और उसके सम्मिश्रणों के करिश्मे देखे हैं, आजमाये हैं। प्रयोगशाला की यह प्रवृत्ति उन्हें घटनाओं के विश्लेषण की ओर स्वतः प्रवृत्त करती है। देश के वायुमंडल में जो विद्युत्प्रवाह जारी है, उसका अनुभव वह करते हैं; किन्तु, अपने अन्य समवयस्कों की तरह उस प्रवाह में प्रवाहित होने के पहले वह उसके तत्वों को जान लेना चाहते हैं। वह स्वभावतः ही गम्भीर हैं।

कॉलेज के अपने साथियों में विचारशीलता और गम्भीरता के लिए वह प्रसिद्ध हैं। उनके साथियों में कुछ ऐसे भी मेधावी विद्यार्थी हैं, जिनकी मेधा के आगे वह सर झुकाने में जरा भी झिझक नहीं अनुभव करते; किन्तु वे साथी भी नेतृत्व के लिए उन्हीं की तरफ देखते हैं। अभी उस दिन की बात है। क्लास में राजनीति की ऊँचे दरजे की बहस चल रही थी—बड़ी गरमागरमी थी; उस समय की शिक्षा में ठंडी बहसों के लिए जगह नहीं थी! बहस की गरमागरमी आखिरी छोर छूने जा रही थी कि एक साथी की नजर उधर पड़ी, जो सिर झुकाये, कुछ सोचते, क्लास-रूम की तरफ आ रहे थे। वह साथी क्लास के सर्वोत्तम विद्यार्थियों में हैं। किन्तु, उन्हें देखते ही वह चिल्ला पड़ता है—"बस, बहस बन्द! देखिये, हमलोगों के राजेन्द्र प्रसादजी आ रहे हैं; जो यह कह दें, हम सबको मान्य!"

हमलोगों के राजेन्द्रप्रसाद! इसमें व्यंग नहीं था; श्रद्धा का, विश्वास का, नेतृत्व के स्वीकार का भाव भरा था। और, इसी भाव ने जयप्रकाश में जिम्मेवारी की भावना भर दी है। वह जिस ओर बढ़ेगा, एक जमात बढ़ेगी! ऐरी-गैरी जमात नहीं, प्रान्त के सुन्दरतम पुष्पों की श्रेणी! इसलिए, यह लाजिमी है कि वह जो पैर उठाये, सोच कर; वह जो करे, समझ कर!

और, पैर उठाना ही है; कुछ करना जरूरी हो है। अब तो गांधीजी ने सीधी पुकार दे दी है—विद्यार्थियो स्कूल-कॉलेज छोड़ो! छोड़ो इन विद्यालयों को, ये विद्यालय नहीं हैं, गुलामखाने हैं—गुलामखाने, जहाँ गुलाम ढलते हैं, विदेशियों के गुलाम, अँगरेजों के गुलाम!

यद्यपि गांधीजी का असहयोग का कार्यक्रम कलकत्ता के विशेष अधिवेशन में ही कांग्रेस ने स्वीकार कर लिया था, किन्तु, विद्यार्थियों के स्कूल-कॉलेज छोड़ने पर नेताओं में कुछ मतभेद था। पर नागपुर-कांग्रेस ने असहयोग के पूरे कार्य-क्रम पर स्वीकृति देकर अब इसमें हिचक या आगापीछा करने का कोई आधार ही नहीं छोड़ा। सिर्फ विद्यार्थियों से ही नहीं, देश के हर तबके के लोगों से पुकार की गई थी—उपाधियाँ छोड़ी जा रही थीं; वकालत छोड़ी जा रही थी; नौकरियाँ छोड़ी जा रही थीं। कवीन्द्र रवीन्द्र ने 'सर' की उपाधि

छोड़ दी थी ; देशबन्धु चितरंजन दास और त्यागमूर्ति पं० मोतीलाल नेहरू ने वकालत छोड़ दी थी। पटना में मौलाना मजहरुल हक साहब ने वकालत छोड़ी थी ; राजेन्द्र बाबू ने वकालत छोड़ी थी। चारों ओर असहयोग की धूम थी। अभी या कभी नहीं—चीजें इस जगह पर पहुँच चुकी थीं।

अब जयप्रकाश के लिए भी ननु-नच करने का कोई कारण नहीं रह गया था। हिचक की हिलती दीवार के लिए भावावेश का एक छोटा-सा धक्का चाहिये था। उसे मौलाना अबुल कलाम आजाद साहब के भाषण ने मुहैया कर दिया। डाकबंगले के सामने, आज जहाँ रिजर्व है, वहीं मौलाना मजहरुल हक साहब की कोठी थी। कोठी के बड़े हाते में आजाद साहब का भाषण हुआ। आजाद साहब का भाषण सुनने को अपने मित्रों के साथ जयप्रकाश भी गये थे। मौलाना साहब का, ओजस्विनी भाषा में, वह तर्क-पूर्ण धाराप्रवाह भाषण—इस धारा में शक-शुबहा, सोच-सन्देह के पैर खड़े रह नहीं सकते थे। कौलेज के नौजवान छात्रों के हृदयों को उस धारा ने प्लावित किया, पूरा निमग्न कर दिया। वहीं मन-ही-मन कुछ तय कर लिया गया और दूसरे दिन समूचे पटना में शोर मच गया कि पटना-कौलेज के सर्वोत्तम छात्रों ने कौलेज छोड़ दिया।

जयप्रकाश ने कौलेज छोड़ दिया—यूनिवर्सिटी की फीस दाखिल हो चुकी थी; पढ़ाई की पूरी तैयारी हो चुकी थी ; अब परीक्षा में कुल तीन सप्ताह की देर थी कि जयप्रकाश ने कौलेज छोड़ दिया। जयप्रकाश ने कौलेज छोड़ दिया, क्योंकि अब सारी चीजें वहाँ पहुँच चुकी थीं, जहाँ 'अभी या कभी नहीं' का प्रश्न उत्तर की प्रतीक्षा में आमने-सामने खड़ा होता है। जयप्रकाश ऐसे मौकों पर सही जवाब देने में कभी नहीं चूकेंगे, यह आप आगे-आगे भी देखा करेंगे।

जयप्रकाश के साथ ही पटना-कौलेज के सर्वोत्तम विद्यार्थियों के एक बहुत बड़े गिरोह ने कौलेज छोड़ दिया। उनमें सिद्धेश्वर बाबू थे, जो आज रायबहादुर सिद्धेश्वरप्रसाद सिंह के रूप में बिहार-सरकार के रेवन्यू सेक्रेटरी हैं; बाबू कृष्णवल्लभ सहाय थे, जो आज रेवन्यू-मिनिस्टर हैं ; श्री पुष्कर ठाकुर थे, जो अब डिप्टी मैजिस्ट्रेट हैं ; श्री फूलनप्रसाद वर्मा थे, जो आज भी

कॉलेज के अपने साथियों में विचारशीलता और गम्भीरता के लिए वह प्रसिद्ध हैं। उनके साथियों में कुछ ऐसे भी मेधावी विद्यार्थी हैं, जिनकी मेधा के आगे वह सर झुकाने में जरा भी हिचक नहीं अनुभव करते; किन्तु वे सभी भी नेतृत्व के लिए उन्हीं की तरफ देखते हैं। अभी उस दिन की बात है। क्लास में राजनीति को लेकर बहस चल रही थी—बड़ी सरगर्मी से; उस समय की फिज़ा में ठंढी बहसों के लिए जगह कहाँ थी! बहस की सरगर्मी आखिरी छोर छूने जा रही थी कि एक साथी की नजर उधर पड़ी, जो सिर झुकाये, कुछ सोचते, क्लास-रूम की तरफ आ रहे थे। वह साथी क्लास के सर्वोत्तम विद्यार्थियों में है। किन्तु, उन्हें देखते ही वह चिल्ला पड़ता है—"बस, बहस बन्द! देखिये, हमलोगों के राजेन्द्र प्रसादजी आ रहे हैं; जो वह कह दें, हम सबको मान्य!"

हमलोगों के राजेन्द्रप्रसाद! इसमें व्यंग नहीं था; श्रद्धा था, विश्वास था, नेतृत्व के स्वीकार का भाव भरा था। और, इसी भाव ने जयप्रकाश में जिम्मेवारी की भावना भर दी है। वह जिस ओर बढ़ेगा, एक जमात बढ़ेगी! ऐसी-वैसी जमात नहीं, *प्रान्त के सुन्दरतम पुष्पों की श्रेणी!* इस-लिए, यह लाजिमी है कि वह जो पैर उठाये, सोच कर; वह जो करे, समझ कर!

और, पैर उठाना ही है; कुछ करना जरूरी हो है। अब तो गांधीजी ने सीधी पुकार दे दी है—विद्यार्थियो स्कूल-कॉलेज छोड़ो! छोड़ो इन *विद्यालयों को, ये विद्यालय नहीं हैं, गुलामखाने हैं—गुलामखाने, जहाँ* गुलाम ढलते हैं, विदेशियों के गुलाम, अँगरेजों के गुलाम!

यद्यपि गांधीजी का असहयोग का कार्यक्रम कलकत्ता के विशेष अधिवेशन में ही कांग्रेस ने स्वीकार कर लिया था; किन्तु, विद्यार्थियों के स्कूल-कॉलेज छोड़ने पर नेताओं में कुछ मतभेद था। पर नागपुर-कांग्रेस ने असहयोग के पूरे कार्य-क्रम पर स्वीकृति देकर अब इसमें हिचक या आगापीछा करने का कोई आधार ही नहीं छोड़ा। सिर्फ विद्यार्थियों से ही नहीं, देश के हर तबके के लोगों से पुकार की गई थी—उपाधियाँ छोड़ी जा रही थीं; वकालत छोड़ी जा रही थी; नौकरियाँ छोड़ी जा रही थीं। कवीन्द्र रवीन्द्र ने 'सर' की उपाधि

१. अमेरिका की ओर

सारे देश के जीवन के हर पहलू की नींव को झकझोरता, कुछ दिनों तक आँधी-सा वायुमंडल को व्याकुल बनाता और फिर, आँधी की तरह ही, एक शून्य निस्तब्धता छोड़ता हुआ असहयोग-आन्दोलन शान्त, प्रशान्त हो गया।

बड़े-बड़े नेता जेलों में ठूँसे गये। जेल से निकल कर उनमें से कुछ ने असेम्बलियों और कौंसिलों पर कब्जा करने की ओर ध्यान दिया; कुछ ने चर्खे-करघे को अपनाया। बहुत-से वकीलों ने फिर चोगे को कंधे पर रख कचहरियाँ जाना शुरू किया; बहुत-से विद्यार्थी एक-दो वर्ष गाँवों और गलियों में नारे लगाने के बाद फिर बगल में किताबें दबाये स्कूल-कौलेजों में जाते-आते दीख पड़ने लगे।

असहयोग करने के दूसरे ही दिन जयप्रकाश अपना बिस्तर बाँध कर तैयार हो गए थे साबरमती-आश्रम जाने को : किन्तु, ब्रजकिशोर बाबू के आग्रह पर वहाँ जाना उन्होंने स्थगित कर दिया। तब तक सदाकत-आश्रम की नींव मौलाना मजहरुल हक साहब ने दे रखी थी और वहीं पर बिहार-विद्यापीठ कायम हो चुका था, जिसके प्रधान आचार्य राजेन्द्र बाबू थे। विद्यापीठ के लिए झरिया से एक काफी रकम महात्माजी ने वसूल की थी और उसे एक आदर्श शिक्षालय बनाने के प्रयत्न हो रहे थे। जयप्रकाश ने इन्टरमिडियट साइंस की परीक्षा बिहार-विद्यापीठ से ही दी और सम्मान के साथ उत्तीर्ण हुए। बी०एस सी० की पढ़ाई का कोई प्रबंध विद्यापीठ में

राजनीति में उनके सच्चे साथी सिद्ध हो रहे हैं; बाबू विश्वेश्वरदयाल थे, जो बड़े प्रतिभाशील वकील निकले। इन लोगों के कौलेज से निकलते ही पटना कौलेज में जैसे भगदड़ मच गई—मालूम होता था, जैसे यह कौलेज अब हमेशा के लिए बन्द होने जा रहा है!

सामने देखिये, यह असहयोगी जयप्रकाश आ रहे हैं। सिर पर गाँधी टोपी चढ़ी है, जो जिन्दगी भर उतरनेवाली नहीं। बदन में बन्डाबन्ड खादी का कुर्त्ता, जिसकी लम्बाई बढ़ती जायगी, खुबराई बढ़ती जायगी और जिसके गले में थोड़ा इजाफा करके जिसे यह जयप्रकाश-कुर्त्ता के नाम से मशहूर कर देंगे। लम्बे कद में खादी की धोती भी क्या फबती है! और, पैर में चप्पल, जो अभी चमड़े की एक लबड़धोंधों चीज सी मालूम पड़ती है, किन्तु जो समय पाकर उसके पैरों की खूबसूरती चौगुना बढ़ा देगी। यह साधक जयप्रकाश, यह साहित्यिक जयप्रकाश, यह वैज्ञानिक जयप्रकाश, और यह असहयोगी जयप्रकाश—किन्तु, इन सभी रूपों में एकात्मता पैदा करती है, आकर्षण पैदा करती है, उसकी प्रशान्त मुद्रा! उसकी साधना में दिखावट नहीं, उसकी साहित्यिकता में भोंड़ापन नहीं, उसकी वैज्ञानिकता में रूक्षता नहीं और आज असहयोग करने के बाद भी उसमें त्याग का अहंकार नहीं!

००

पढ़ते थे, अमेरिका जाने के लिए मदद की उमीद में ब्रजकिशोर बाबू के पास आये। जयप्रकाश से उनकी भेंट हुई और पहली मुलाकात में ही दोनों दोस्त बन गये। जयप्रकाश ने भोलादत्त पंत के साथ ही अमेरिका जाना तय कर लिया। और कलकत्ता जाकर पासपोर्ट आदि का प्रबन्ध भी कर लिया गया। इसी कलकत्ता यात्रा में जयप्रकाश ने पहले-पहल ट्राम देखा, जिसकी चर्चा यूसुफ मेहरअली ने बड़े मनोरंजक ढंग से की है। किन्तु, उसी समय अखबारों में निकला कि अमेरिका में जो भारतीय विद्यार्थी हैं, उन्हें बहुत कष्ट उठाने पड़ रहे हैं; मंदी की वजह से वहाँ कोई काम भी नहीं मिलता, आदि आदि। अखबार का यह अवतरण दिखला कर जयप्रकाश को रोक ही दिया गया। किन्तु भोलादत्त पंत अमेरिका गये ही। अमेरिका पहुँच कर उन्होंने जयप्रकाश को लिखा कि अखबार की वह बात अतिशयोक्ति-मात्र है, तुम आप ही क्या, अपनी पत्नी के साथ भी आ सकते हो! यह पत्र जयप्रकाश ने प्रभावतीजी को दिखलाया और फिर पति-पत्नी में गुपचुप का षड्यन्त्र हुआ। जयप्रकाश अब सीधे कलकत्ता पहुँचे और सारा प्रबंध करके लौटे, तब घरवालों को सूचना की कि अमुक तिथि को मैं जा रहा हूँ। सब चकित हुए। प्रभावतीजी मायके में थीं। ब्रजकिशोर बाबू ने जब पूछा कि तुम्हें यह सब मालूम था, तो वह नाहीं नहीं कह सकीं।

जयप्रकाश इस समय बीस वर्ष के हैं। इस उम्र के नौजवान से जिस ज्ञान और अनुभव की आशा की जा सकती है, वे सब उनमें पूर्णतः पाये जाते हैं। शील और सौजन्य के तो मानो अवतार हैं। आचार और व्यवहार ऐसा कि हर नौजवान के लिए अनुकरणीय। बचपन में कुछ दिनों तक वह मलेरिया से बुरी तरह पीड़ित रहे थे, किन्तु अब उनका स्वास्थ्य बहुत ही अच्छा है। मध्यवित्त कायस्थ-कुल में जन्म लेने के कारण कभी शारीरिक परिश्रम करने का मौका नहीं मिला है, किन्तु शुरू से ही अपने को साधना की कसौटी में कसने का प्रयत्न करते रहने के कारण उन्हें पूरी आशा है कि शारीरिक परिश्रम में भी वह किसी विद्यार्थी से पीछे नहीं रहेंगे। उनका चरित्र इतना बेदाग, निष्कलंक, निर्मल और प्रोज्वल है कि उनके घर-वाले या उनके किसी परिचित व्यक्ति के मन में कभी कोई कुभावना या

नहीं था, अतः वह बनारस चले गये और वहाँ प्रोफेसर फूलदेव सहाय वर्मा (आजकल हिन्दू विश्वविद्यालय के रसायन-विभाग के प्रधान) के साथ रह कर उनकी देख-रेख में विज्ञान का अध्ययन करते रहे। वहाँ रहते हुए प्रोफेसर वर्मा के लेबोरेटरी का भी वह उपयोग करते। जब असहयोग-आन्दोलन शान्त हुआ, तो गुरुजनों का आग्रह हुआ कि हिन्दू विश्वविद्यालय में ही नाम लिखा कर वह विज्ञान का अध्ययन करें। किन्तु, जयप्रकाश इसके लिए राजी नहीं हो सके। जिस सरकार को एक वर्ष पहले शैतानी सरकार कहा जाता था, क्या अब वह शैतानी सरकार नहीं रह गई कि उसकी मदद लेकर चलनेवाली किसी यूनिवर्सिटी में अध्ययन किया जाय? अपनी सहूलियत के लिए सिद्धान्त का तोड़मरोड़ करना जयप्रकाश का स्वभाव नहीं रहा है।

इधर ज्ञान की पिपासा भी प्रबल थी। तो, कहाँ विदेश चलकर विज्ञान का अध्ययन किया जाय? असहयोग के पहले बिहार प्रान्त में स्वामी सत्यदेव के व्याख्यानों की धूम थी और उनकी अमेरिका-सम्बन्धी पुस्तकें विद्यार्थियों में बड़े चाव से पढ़ी जाती थीं। जयप्रकाश भी उन व्याख्यानों और पुस्तकों से प्रभावित हुए थे और जब विदेश जाने की बात उठी, तो स्वभावतः ही *उन्होंने अमेरिका जाना ही पसन्द किया। अमेरिका में विद्यार्थी स्वावलम्बन के* आधार पर शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं, यह बात उन्हें सबसे अधिक पसद थी। अपने घरवालों पर जरा भी आर्थिक बोझ दिये और किसी धनी-मानी का अहसान लिये बगैर अपनी भुजा के बल पर यदि शिक्षा का उपाय हो सके, तो यह सर्वोत्तम! और यह सर्वोत्तम मार्ग शीघ्रातिशीघ्र चुन लिया गया और इस सम्बन्ध में दौड़धूप शुरू की गई।

किन्तु, इसमें प्रारम्भ से ही विघ्न शुरू हुए। सबसे पहले घर से ही— बाबू हरसूदयाल जी अपने इस प्यारे बेटे को इतनी दूर भेजने की चर्चा से ही सिहर उठे तो फूलरानी ने आँसुओं से घर-आँगन को भर दिया। ब्रजकिशोर बाबू विद्यार्थियों को विदेश भेजे जाने में प्रोत्साहन देते आये थे, बहुत से लोगों की मदद भी की थी। किन्तु, वह भी अभी उनके अमेरिका जाने के पक्ष में नहीं थे। शंभू बाबू की भी यही हालत थी। उस समय श्री भोलादत्त पंत नामक एक गढ़वाली विद्यार्थी, जो हिन्दू यूनिवर्सिटी में

पढ़ते थे, अमेरिका जाने के लिए मदद की उमीद में ब्रजकिशोर बाबू के पास आये। जयप्रकाश से उनकी भेंट हुई और पहली मुलाकात में ही दोनों दोस्त बन गये। जयप्रकाश ने भोलादत्त पंत के साथ ही अमेरिका जाना तय कर लिया। और कलकत्ता जाकर पासपोर्ट आदि का प्रबन्ध भी कर लिया गया। इसी कलकत्ता यात्रा में जयप्रकाश ने पहले-पहल ट्राम देखा, जिसकी चर्चा यूसुफ मेहरअली ने बड़े मनोरञ्जक ढंग से की है। किन्तु, उसी समय अखबारों में निकला कि अमेरिका में जो भारतीय विद्यार्थी हैं, उन्हें बहुत कष्ट उठाने पड़ रहे हैं; मंदी की वजह से वहाँ कोई काम भी नहीं मिलता, आदि आदि। अखबार का यह अवतरण दिखला कर जयप्रकाश को रोक ही दिया गया। किन्तु भोलादत्त पंत अमेरिका गये ही। अमेरिका पहुँच कर उन्होंने जयप्रकाश को लिखा कि अखबार की यह बात अतिशयोक्ति-मात्र है, तुम आप ही क्या, अपनी पत्नी के साथ भी आ सकते हो। यह पत्र जयप्रकाश ने प्रभावतीजी को दिखलाया और फिर पति-पत्नी में गुपचुप का षड्यन्त्र हुआ। जयप्रकाश अब सीधे कलकत्ता पहुँचे और सारा प्रबंध करके लौटे, तब घरवालों को सूचना की कि अमुक तिथि को मैं जा रहा हूँ। सब चकित हुए। प्रभावतीजी मायके में थीं। ब्रजकिशोर बाबू ने जब पूछा कि तुम्हें यह सब मालूम था, तो वह नाहीं नहीं कह सकीं।

जयप्रकाश इस समय बीस वर्ष के हैं। इस उम्र के नौजवान से जिस ज्ञान और अनुभव की आशा की जा सकती है, वे सब उनमें पूर्णतः पाये जाते हैं। शील और सौजन्य के तो मानो अवतार हैं। आचार और व्यवहार ऐसा कि हर नौजवान के लिए अनुकरणीय। बचपन में कुछ दिनों तक वह मलेरिया से बुरी तरह पीड़ित रहे थे, किन्तु अब उनका स्वास्थ्य बहुत ही अच्छा है। मध्यवित्त कायस्थ-कुल में जन्म लेने के कारण कभी शारीरिक परिश्रम करने का मौका नहीं मिला है, किन्तु शुरू से ही अपने को साधना की कसौटी में कसने का प्रयत्न करते रहने के कारण उन्हें पूरी आशा है कि शारीरिक परिश्रम में भी वह किसी विद्यार्थी से पीछे नहीं रहेंगे। उनका चरित्र इतना बेदाग, निष्कलंक, निर्मल और प्रोज्वल है कि उनके घर-वाले या उनके किसी परिचित व्यक्ति के मन में कभी कोई कुभावना या

दुर्भावना आ नहीं सकती थी। इस सम्बन्ध में उनके किसी गुरुजन को कोई उपदेश देने की आवश्यकता नहीं थी, उनके पिता या माता को उनसे कोई शपथ लेने की कल्पना भी नहीं हो सकती थी। सब लोग समझते थे, बउलजी अमेरिका से *शत-प्रतिशत सफलता प्राप्त करके लौटेंगे।*

जाने के पहले दो व्यक्तियों का प्रबोध कर जाना उनका कर्तव्य है—ऐसा वह समझते थे। एक तो उनकी नवोढ़ा पत्नी, प्रभावतीजी थीं, जो अभी कुल पन्द्रह-सोलह साल की वयो-मात्र थीं। किन्तु, इस उम्र में ही प्रभावतीजी ने बता दिया था कि वह किस धातु की बनी हुई हैं। जब पहली बार अमेरिका जाने की चर्चा हुई, तभी उनका गौना हो चुका था और ससुराल आने पर उनसे कहा गया कि वह जयप्रकाश को अभी कुछ दिनों रुक जाने को कहें। किन्तु प्रभावतीजी ने ऐसा कहने से अस्वीकार कर दिया। "यदि वह अध्ययन करने के लिए कहीं जाना चाहते हैं, तो मैं बीच में बाधक नहीं बन सकती!"—उन्होंने साफ-साफ कह दिया। जयप्रकाश को अपनी इस नवोढ़ा पत्नी पर इतना विश्वास है, कि भोलादत्त पंत का पत्र उसे दिखा चुके हैं और उनकी स्वीकृति लेकर ही आगे बढ़े हैं। इसलिए, इस ओर ज्यादा कुछ कहना-सुनना नहीं रह गया है। मैं शीघ्र ही आऊँगा, घबराना मत; तुम भी यहाँ तब-तक लिखो-पढ़ो और गीता पढ़ना और चरखा *चलाना नहीं भूलना—ऐसी ही कुछ मामूली बातें कह कर सन्तोष कर लिया* गया। चरखा चलाना? अभी उस दिन प्रभावतीजी ने हँसते-हँसते कहा था—"पूछिए इनसे, मुझे चरखा चलाने के लिए किसने प्रेरित किया? अफसोस उस समय के इनके खत नहीं मिल रहे हैं, नहीं तो उन्हें छपवा कर मैं दुनिया को बता सकती कि यह कहाँ से शुरू करके अब कहाँ चले गये हैं!" जिस साबरमती-*आश्रम में वह जाते जाते रुक गये, यदि प्रभावतीजी* वहाँ इस अवधि के लिए चली जायँ, तो उन्हें आनन्द ही हो और अन्त में यही हुआ भी। जयप्रकाशजी अमेरिका गये, प्रभाजी साबरमती। एक पक्के सामाजवादी बने, दूसरी कट्टर गाँधीवादिनी! किन्तु, अपनी माताजी को वह क्या कह कर समझायें। यों तो पिता का प्रेम भी उनपर अगाध है; किन्तु वह चिपके रहे हैं माताजी से ही! उनके निकटतम व्यक्ति जानते हैं कि

जयप्रकाश मुख्यतः 'माँ के बेटे' हैं—आकृति-प्रकृति आदि का ज्यादा छाप उनपर माताजी का पड़ा है। माताजी इस कल्पना से ही अधीर हो उठी हैं कि उनका लाड़ला आधे युग के लिए उनसे बिछुड़ कर सात समुन्दर पार जा रहा है। छुट्टियाँ नहीं मिलने के कारण यदि लगातार दो महीने भी अपने इस बेटे को नहीं देखतीं तो, जो घबरा उठतीं, व्याकुल बन जातीं; वही किसी तरह चार या छः वर्ष तक अपने इस 'बउल' को देखे बिना रह सकेंगी? बउलजी के लिए सब से बड़ी कठिनाई तो यह है कि वह उनके नजदीक बैठ कर उन्हें समझा-बुझा भी नहीं सकते। उनके निकट जाते ही आज भी वह 'बउल' बन जाते हैं। किन्तु बेटे के रोम-रोम से विदेश जाकर शिक्षा प्राप्त करने की जो उत्सुकता और आकांक्षा प्रतिपल प्रगट होती रहती है, उसका प्रभाव माता पर पड़े बिना नहीं रहता! मौन-मौन में ही स्वीकृति के अंश-पर-अंश मिलते जाते हैं और इधर बिदाई की तिथि दिन-पर-दिन निकट होती जाती है।

और, एक दिन बन्धु-बान्धवों की शुभकामना और माता-पिता के शुभाशीर्वाद के बीच जयप्रकाश अमेरिका के लिए रवाना हो जाते हैं। जयप्रकाश ने फूलरानी के चरण छुए, उन्होंने झपट कर उन्हें गले से लगा लिया और मंगल-आँसुओं से अभिषिक्त कर उन्हें घर से बिदा दी। जयप्रकाश ज्योंही घर से निकले, उनकी आँखों से आँसुओं की धारा फूट निकली, इधर आँगन से फूलरानी की क्रन्दन-ध्वनि निकल कर वातावरण को करुण बनाने लगी। जयप्रकाश के कान उस करुण-ध्वनि की ओर तब तक लगे रहे, जब तक दूरी ने उन दोनों के बीच पर्दा नहीं डाल दिया।

२. भारत से जापान तक

१६ मई, १९२२। कलकत्ता शहर, संध्या समय। सूरज की अन्तिम किरणें इस जादूपुरी के जादू को और भी जगा रही हैं। अपनी प्रखरता, विशालता, स्वच्छता, शुद्धता, उज्ज्वलता और दिव्यता को जैसे बहुत पीछे ही छोड़ कर गंगामैया हुगली के रूप में, यहाँ, इस नगरी के वेश में खड़ी उस सभ्यता को निहार रही हैं, जो यहाँ की उनकी धारा की तरह ही संकीर्ण,

गतिहीन शोर मचो है। और, हुगली की छाती पर निद्वंन्द्व भाव से बड़े ये छोटे-बड़े जहाज धुआँ उगल कर उस सभ्यता की तरह ही हँसी कालिमा की भी नुमायी कर रहे हैं। उन्हीं जहाजों में यह जो एक जहाज खड़ा है, जरा सावधानी से उसका नाम पढ़िये—'जेनश'।

जेनश—यह जहाज आज ही रात को जापान के लिए रवाना होनेवाला है। अभी से उसपर यात्रियों की आवाजाही लगी है। तरह-तरह के चेहरे, तरह तरह की बोली। जेटी पर मिलनेवालों का स्नेह-प्रदर्शन—आलिंगन, चुम्बन, शेकहैंड, रूमाल हिलाना। भूरी, काली या सुफेद पोशाकों के अन्दर जो रोमांच हो रहे हैं, दिल धड़क रहे हैं, नाड़ियाँ तेजी से चल रही हैं, उन्हें कौन देखे, अनुभव करे? हाँ, गोरे, गेहुएँ, काले चेहरों पर पल-पल परिवर्तित होनेवाले भाव आप देख सकते हैं, और यदि आप सहृदय हैं तन *भावों के साथ कम-से-कम कुछ देर के लिए तदात्मता अनुभव कर सकते हैं।*

ऊपर, सेकेण्ड क्लास के डेक पर, एक नौजवान आकर खड़ा है। उससे मिलनेवाले, अभी अभी, उसे भावना स्रोत में गोते खाते छोड़कर चले गये हैं। *गोरा भभूका चेहरा* आन्तरिक उद्वेलन के कारण, *लाल बना हुआ है।* रूमाल से बार-बार पोंछ कर उसने कपोलों और *नयन-कोरकों को सूखा बना* रखा है जरूर; किन्तु पपनियों की आर्द्रता को वह किस तरह सुखा पाये? बिल्कुल साहबी पोशाक में है वह—सिर पर हैट है, जिसे उतार कर उसने बगल से दबा रखा है; रेशमी टाई हिल-डुल कर, उसके सूट के भीतर छिपे हृदय की गति को प्रगट कर रही है; जब कभी वह रेलिंग पकड़ कर खड़ा होता या डेक-चेयर पर बैठता है, अनायास उसके एक पाँव का जूता हिलने *लगता है; वह भीगी आँखों से कभी इस मायापुरी की अट्टालिकाओं को* देखता है, कभी घाट पर खड़े लोगों को घूरता है, कभी नदी में डगमग चलनेवाली डोंगियों और उनके मल्लाहों को निहारते रह जाता है; और, अन्त में जैसे थक कर, अपने केबिन में जा लेटता है! क्या आपने पहचाना, यह कौन है? आपका जयप्रकाश आज इस जेनश जहाज से अमेरिका जा रहा है! अपने प्यारे देश को, अपने पूज्य पिता को, अपनी प्यारी माँ को और अपनी प्रेयसी प्रभा को कितने वर्षों के लिए छोड़ कर ज्ञान की खोज में, विज्ञान के

जयप्रकाश की माता स्वर्गीया श्रीमती फूलरानी (मृत्यु के थोड़े दिन पहले)

अन्वेषण में साधक जयप्रकाश आज फिर साधना के पथ पर अग्रसर हो रहा है।

वह केबिन में चला जाता है, धीरे-धीरे रात गम्भीर होती जाती है, किन्तु क्या उसे नींद आ रही है? कितनी ही भूली हुई बातें, कितनी ही विस्मृत कथायें, कितने ही प्यारे चेहरे, कितनी ही प्रेमल आँखें आज उसके सामने आ रहीं और उसके भावना प्रवण हृदय में तूफान की सृष्टि कर रही हैं। फिर, एक अपरिचित देश में, परिमित सम्बल लेकर, अकेले-अकेले जाने का दुस्साहस जो वह कर बैठा है, उसकी भली-बुरी सम्भावनायें भी उसे कम बेचैन नहीं कर रही हैं। उत्तेजनाओं से थकी स्नायुराशियाँ कब शिथिल पड़तीं हैं; कब आँखें झिपतीं और कल्पनायें स्वप्न का रूप धारण करती हैं—वह जान नहीं पाता है; हाँ, जब वह जगता है, तो पाता है, उसका जहाज मन्थर गति से गंगासागर को पार कर रहा है।

गंगा-सागर! जहाँ गंगा के रूप में भारत की सभ्यता-धारा निस्सीम में विलीन होने को सागर से जा मिली है; जहाँ एक अविरल प्रवाह एक अनन्त विशालता की गोद में सदा के लिए जा सोया है; जहाँ भगीरथ की तपस्या अपनी पूर्णता को प्राप्त कर चिर समाधि लेती है। वन गमन को जाते हुए राम ने गंगा पार करते समय जिस तरह उन्हें भक्ति-भावपूर्ण हृदय से प्रणाम किया था, क्या प्रवास के लिए प्रस्थित जयप्रकाश ने उसी तरह गंगामैया के इस अन्तिम रूप को सादर सभक्ति नमस्कार नहीं किया? उसके होठों पर किसी मंत्र की बुदबुदाहट थी, उसके हृदय में किसी वरदान की कामना थी?—अफसोस, ये बड़े लोग बचपन में ही अपने बड़प्पन का डंका तो पीटते नहीं; फलतः उनके जीवन की कितनी ही मार्मिक घटनाएँ योंही अलिखित, अचिन्तित रह जाती हैं।

अब भारत की तटभूमि बहुत पीछे छूट चुकी है। ज्यों-ज्यों देश की सीमा से अलग होने की कल्पना करता है, त्यों-त्यों वह अधिक-से-अधिक एकाकीपन का अनुभव करने लगता है। यह एकाकीपन टूटना ही चाहिये। देखना चाहिए, इस 'जेनस' पर कोई ऐसा आदमी है या नहीं जो अधिक-से-अधिक दूर तक उसका साथ दे सके। इस बारे में उसे ज्यादा खोज-ढूँढ़

करने की जरूरत नहीं पड़ती। इस जहाज के सेकेण्ड क्लास के केबिनों में ही उसे दो युवक मिल जाते हैं, जो उसी की तरह ज्ञानान्वेषण में अमेरिका जा रहे हैं। दोनों विद्यार्थी हैं, दोनों उसके समवयस्क हैं, दोनों उसीकी तरह स्वावलम्बन के पुजारी हैं। वे दोनों हैदराबाद राज्य से आये हैं, उनमें से एक का नाम है सीताराम गोपाल रेड्डी और दूसरे का हरिश्चन्द्र रामराव प्रधान। रेड्डी और प्रधान थोड़ी देर में ही उसके प्रिय सखा बन जाते हैं। जो थोड़ी देर पहले एकाकीपन का अनुभव कर रहा था, अब वह त्रिमूर्ति में एक हो चला है। तीनों साथ बैठते हैं, बातें करते हैं, खाते पीते हैं। 'सुबह होती है, शाम होती है।' और, इसी हँसी-खुशी में सफर की दूरी 'तमाम होती है।'

किन्तु, ज्यों ही जहाज बंगाल की खाड़ी के भीतर घुसता है, तीनों मित्रों की हालत खराब होने लगती है। तीनों का यह पहला जहाजी सफर था। तीनों के सर चक्कर काटने लगे, तीनों की उबकाई शुरू हुई और तीनों ही कै की सामुद्रिक बीमारी के शिकार बन गये। बड़ी बुरी हालत थी। न बैठा जाय, न सोया जाय। खड़े होने की तो बात ही दूर। न कुछ खा सकते हैं, न पी सकते हैं। अभी तो यह यात्रा का आरम्भ है, श्रीगणेश है; यदि यही हालत रही, तो खुदा ही हाफिज। तीन दिनों के बाद राम राम करके रंगून पहुँचते हैं। बरमा की इस सुन्दर राजधानी—सोने के पगोडावाली नगरी, अनन्त यौवना बरमी-नारियों की नगरी—को देखने-सुनने की उन्हें फुर्सत कहाँ थी? वहाँ पहुँचते ही प्रधान ने सवाल उठाया, हमलोग क्यों नहीं अपने देश को वापस चलें? हमलोगों की प्रकृति ऐसी नहीं कि सामुद्रिक यात्रा को हम बर्दाश्त कर सकें। आगे बढ़ने पर और भी झंझटें बढ़ सकती हैं और तब लौट कर अपनी ज्यादा भद् कराने से क्या फायदा? मालूम होता है, अमेरिका की शिक्षा-दीक्षा हमें बदी नहीं है। किन्तु जयप्रकाश पर ऐसी दलीलों का क्या कुछ असर हो सकता है? वह भी काफी परेशान हुआ है। उसका चेहरा पीला पड़ गया है, मुरझा गया है—किन्तु, जब वह अपनी जीवन-नैया संसार-सागर में डाल चुका, तो भले ही पतवार छूट जाय, पाल उड़ जाय; वह लंगर डाल नहीं सकता। संयोग, रेड्डी भी उसका साथ देता

है। बहुमत जाने के पक्ष में है—प्रधान भी अपने साथियों की बात मान लेता है। 'जेनस' रंगून से प्रस्थान का भोंपू बजाता है—उसके डेक पर हम इन तीनों भारतीय युवकों को पहले-सा ही उत्साह और उमंग में देखते हैं। जैसे बीच में कुछ हुआ हो नहीं।

जहाज बढ़ता जाता है, ऊपर नीला आकाश, नीचा नीला समुद्र। बगल में यह मलाया की हरीभरी भूमि! भारतीयों के लिए स्वर्णद्वीप, मलयद्वीप कोई नई चीज नहीं। बिहार के कितने ही युवकों ने आज से दो-ढाई हजार साल पहले इस रास्ते से प्रयाण किया होगा—नई भूमियों के अनुसंधान में, जहाँ वे सभ्यता के नये सन्देश दे सकें। उस समय साधनों की कमी थी, ऐसे जहाज तक नहीं थे; किन्तु, तोभी उनके हृदयों में वह असीम साहस था, जो असम्भव को सम्भव कर लेता है। उन शत-सहस्र साहसी बिहारी युवकों की आत्मायें क्या बिहार के इस नौजवान को शुभाशीष नहीं दे रही होंगी, जो आज शान्त मुद्रा लिये विदेश को जा रहा है, किन्तु नियति जिसके भविष्य में कितने ही दुस्साहसिक कार्यों की टेढ़ी-मेढ़ी रेखायें खींच चुकी है।

'जेन्स' पिनांग पहुँचता है और वहाँ से सिंगापुर के लिए प्रस्थान करता है। अब देखिये, वह सिंगापुर पहुँच भी चुका। सिंगापुर को अँगरेजी साम्राज्यशाही जो संसार का एक अद्वितीय जहाजी अड्डा बनाने जा रहा है, इसकी झलक तो दिखाई पड़ती थी; किन्तु, उन दिनों क्या यह कल्पना भी की जा सकती थी कि यह विशाल जहाजी अड्डा ताश का घर साबित होगा, जापान का एक ही हमला इसे नेस्तनाबूद कर देगा; इसपर जापानी झंडा उड़ेगा, इसका नाम तक बदल जायगा और सबसे बड़ा आश्चर्य तो यह होगा कि यहीं पर पहली आजाद-हिन्द-फौज का संगठन जेनरल मोहन सिंह के नायकत्व में होगा, जिस फौज के कारनामे से भारत में एक अभूतपूर्व जागृति की लहर दौड़ जायगी! नहीं, उन दिनों यह कल्पना असम्भव थी और जिस तरह थोड़ा विश्राम लेकर यह जहाज आगे के लिए चलता है, सिंगापुर भी, बिना कोई स्थायी प्रभाव मस्तिष्क पर छोड़े, आँखों से दूर हो जाता है।

सिंगापुर के बाद हौंगकौंग—और हौंगकौंग का मानी है चीन। भारतीय युवकों के मन में चीन के प्रति हमेशा एक आकर्षण रहा है। चीन के राष्ट्रीय संग्राम की कहानियों ने भारतीय युवकों को कम अनुप्राणित नहीं किया है। किन्तु जयप्रकाश का ध्यान तो अब जापान की ओर लगा है, जो उस समय भारतीय युवकों को, अपनी अभूतपूर्व उन्नति के कारण, बहुत ही आकृष्ट करता था।

हौंगकौंग से 'जेनस' हँसी-खुशी में ही रवाना होता है, किन्तु, ज्योंही जहाज बीच समुद्र में आता है, तूफान के लक्षण दिखाई देने लगते हैं। पहले समझा जाता है, यह भी कोई मौसमी तूफान है, किन्तु, धीरे-धीरे प्रगट होता है कि जहाज यथार्थतः संकट में फँस गया है। यह तो वह तूफान है, जिसे अँगरेजी नाविक 'चाइनीज टाइफून' कहते हैं, और जिसकी कल्पना से ही वे काँप उठते हैं। धीरे-धीरे समूचा समुद्र खौलता कड़ाह बन जाता है। चारों ओर उत्ताल तरंगें हैं, जिनपर यह जहाज कभी इधर, कभी उधर फिका फिंका फिरता है। तरंगें जहाज से टकराती हैं, उसे इस तरह झकझोरती हैं कि धुर्रे-धुर्रे उड़ा कर छोड़ेंगी; फिर सारे डेक को भिगो-भुँगो कर हट जाती हैं। जहाज की हर चीज इधर उधर लुढ़क रही है, बर्तनों के टन-टन, हड़-हड़ कानों को परीशान कर रहे हैं! बड़े बड़े साहसी नाविकों का भी धीरज छूट रहा है। वह देखिये, सेकेण्ड क्लास के केबिन के सामने वह कौन नौजवान खड़ा है? वही चिर परिचित शान्त शिष्ट मुद्रा—आँखें इन तरंगों को देखने, कान हाहाहूहू सुनने में लगे हैं; किन्तु, चेहरे पर कभी आश्चर्य, कभी आशंका, कभी भय के भाव! क्या 'जेनस' की चीन-समुद्र में सदा के लिए जल-समाधि होनी है? क्या हमारे भाग्य में यही बदा था कि हमारी हड्डियाँ भी हमारे देश को नसीब न हों! किन्तु, यह स्थिति अधिक देर तक नहीं रहती। धीरे-धीरे तरंग छोटी पड़ती जाती हैं, जहाज का हिलडुल कम होता जाता है। विशेषज्ञों के चेहरे खिल पड़ते हैं; वे कहते हैं—ओहो, अब बच गये! हम टाइफून के बीच में नहीं पड़े थे; सिर्फ उसकी दुम की चपेट में आ गये थे।

सलाम चाइनीज टाइफून—बार-बार सलाम आपको दुम को! फिर कभी आपके, आपकी दुम के दर्शनों का सौभाग्य नहीं हो!

अब फिर साफ आसमान है, प्रशान्त सागर है। 'जिनस' शान से बढ़ रहा है—बढ़ रहा है! अरे, यह क्या? समुद्र में ये क्या उड़ रहे हैं? पछी? नहीं, नहीं; ये पछी तो नहीं मालूम पड़ते! तो, तो यह क्या? देखो, उनमें से एक जहाज पर आ रहा। देखें तो इसे? अरे, यह तो मछली है! उड़नेवाली मछली—पुस्तकों में जिनके बारे में पढ़ा था, उन्हीं उड़नेवाली मछलियों का यह उड़ान देखने में जयप्रकाश की सौन्दर्यपारखी आँखें थकती नहीं हैं।

और लीजिये, पूरे तीस दिनों तक समुद्र की तरगों के थपेड़े खाने के बाद, हाँगकाँग से यह जहाज कोबे पहुँचा। कोबे—जापान!

जापान!—क्या यह वही छोटा सा देश है, जिसके बहादुर सुपूतों ने रूसी रीछ को पछाड़ कर यूरोप के गोरे प्रमाद के गाल पर थप्पड़ रसीद की थी? क्या उगते हुए सूरज का आराधक यह वही देश है जिसने पचास साल के अन्दर अपनी कायापलट कर अपने उद्योगधधे, वाणिज्य-व्यापार सबकी धाक सारे ससार पर जमा दी है?

जयप्रकाश को जापान बहुत भाया। छोटे छोटे साफ सुथरे मकान, आँगनों में फूलों के झाड़, सादगी में सजी हुई रमणियाँ, चुस्त फुर्तीले नौजवान। घरों में फरनीचरों की रेलपेल नहीं, सादी फर्श या कालीन। अतिथियों को झुककर अभिवादन, विनय और श्रद्धा से सत्कार, कभी उन्हें पीठ नहीं देखने देंगे, लौटेंगे तो पीछे हटते हुए, दूर जाने पर ही मुड़ेंगे। क्या अपने देश को इतना ही सुन्दर, साफ, सुसभ्य और सुसस्कृत नहीं बनाया जा सकता?

कोबे से जयप्रकाश ओसाका जाते हैं, जहाँ उनकी भेंट श्री महादेवलाल शर्राफ से होती है। शर्राफ भी अमेरिका पढ़ने जा रहे थे और यहाँ कुछ पैसे कमाने की धुन में ठहर गये थे। मीनी-चो नामक एक जापानी अखबार के अँगरेजी विभाग में प्रूफ रीडर का काम वह कर रहे थे।

ओसाका से ट्रेन से योकोहामा। स्टेशन पर डब्बे में चावल बिक रहा—साफ, सुफेद चमचम चावल! सूखी मछली भी। एक डब्बा चावल खरीदिये, कुछ सूखी मछली और चावल के साथ ही जो बाँस का चमच मिलता है,

उपाये खड़ाये इन्हें! किन्तु, जयप्रकाश तो निरामिष-भोजी हैं, वह मछली की ओर ताकेंगे भी क्यों?

योकोहामा से ही अमेरिका के लिए जहाज मिलना है। किन्तु, जहाज मिलने में दिक्कत हो रही है। क्या किया जाय? यहाँ कुछ भारतीय सौदागर रहते हैं। उनसे मिला जाता है। वे दौड़धूप करते हैं, जहाज पर जगह मिल जाती है।

यह जहाज! नाम है तैयो-मारू। तैयो=सूरज, मारू=जहाज। जापानी जहाज है यह। किन्तु यह मूलतः एक जर्मन जहाज है, जो पिछली लड़ाई में जर्मनी से छीन कर जापान को दिया गया था। जापानियों ने सिर्फ उसका नया नामकरण ही नहीं किया है, उसे पूरी जापानी सूरत-शक्ल दे रखी है!

दस दिनों तक जापान में रह कर, तैयोमारू पर, अमेरिका के लिए प्रस्थान होता है—अमेरिका के लिए, नई दुनिया के लिए!

३. नई दुनिया की सरजमीन पर

प्रशान्त सागर होकर तैयोमारू चला जा रहा है। ज्यों-ज्यों अमेरिका निकट आता जाता है, जयप्रकाश की उत्सुकता और कुतूहल बढ़ते जाते हैं। अमेरिका के बारे में वह काफी पढ़ चुके हैं, सुन चुके हैं। किन्तु, उन्हें मालूम होता है, जैसे वह सारी बातें भूल गये। एक बिल्कुल अपरिचित देश में जा रहे हैं—कैसी होगी वह भूमि, कैसे होंगे उसके निवासी, किस तरह वह अपने को इस बिल्कुल नवीन वातावरण में ढाल सकेंगे?

इसी उधेड़बुन में बीच में हवाई-द्वीप आता है। हवाई-द्वीप—मानो यह छोटा-सा टापू आसमान की ओर देख कर चुनौती देता है: "अगर फिर-दौस बर रुए जमीनस्त—हमीनस्तो हमीनस्तो हमीनस्त!" हाँ, हाँ, अगर कहीं स्वर्ग है, तो यहीं है, यहीं है, यहीं है! जयप्रकाश इस 'प्रशान्त सागर के स्वर्ग' को देख कर निहाल हो उठे। एक दिन तक रह कर यहाँ के स्वच्छ नीलाभ आकाश, रंग-बिरंगे फूलों से जगमग पृथ्वी, सुगन्ध और संगीतमय वातावरण और उन्मुक्त अनावृत यौवन का सौन्दर्य देखते फिरे।

याकोहामा से चलने के १८ वें दिन तैयोमारू सान्फ्रांसिस्को पहुँचा। स्वर्ग पहुँचने के पहले वैतरणी पार करनी पड़ती है। वह सेकेण्ड क्लास के यात्री थे, अतः उन्हें एक टापू में उतारा गया और क्वारेंटाइन में रख कर डाक्टरी जाँच की गई। नंगा करके, असभ्य की तरह जाँच करना, फिजूल परेशानियों में रखा जाना—जयप्रकाश को बहुत बुरा लगा। किन्तु, चारा क्या था? सान्फ्रांसिस्को में जहाज से उतर कर एक टैक्सीवाले के निकट पहुँचे और उससे किसी होटल में पहुँचाने को कहा। टैक्सीवाले ने उन्हें एक हब्शी होटल में दाखिल कर दिया। नई दुनिया के सरजमीन पर पैर रखते ही रंग-भेद का यह नज्जारा जयप्रकाश को जरूर ही नापसद आया। किन्तु, जो एक उद्देश्य लेकर आया हो, उसके लिए छोटी बातों में उलझना क्या ठीक होगा?

तुरत ही पता लगाया गया, यहाँ कालिफोर्निया-यूनिवर्सिटी में पढ़ना होगा, जो बर्कली नामक स्थान में है। यहाँ और भी भारतीय विद्यार्थी हैं, जिन्होंने अपना एक केन्द्र बना रखा है, जिसे वे "नालदा-क्लब" कहते हैं। कालिफोर्निया में नालदा-क्लब! नालदा—प्राचीन भारत का सर्वश्रेष्ठ विश्व-विद्यालय, जहाँ दस हजार विद्यार्थी, निःशुल्क, होस्टलों में रह कर विद्याध्ययन करते थे और ये विद्यार्थी सिर्फ भारत के कोने-कोने से ही नहीं आते थे, बल्कि पूरब में जापान, कोरिया, चीन, स्याम, जावा, सुमात्रा आदि देशों और द्वीपों से एव पश्चिम में मध्यएशिया तक से आते थे। एक हजार वर्षों तक अपनी गरिमा दिखा कर जो आज एक हजार वर्ष पहले नष्टभ्रष्ट हो गया, उसीकी यादगार को सात समुद्र पार आकर भारतीय विद्यार्थी इस क्लब के रूप में जिन्दा रखे हुए हैं! नालदा बिहार में था, जयप्रकाश के अपने प्रान्त में—फिर वह क्यों नहीं नालदा-क्लब को अपना घर-सा ही मान ले।

जयप्रकाश नालदा-क्लब में आ गये और स्थानाभाव के कारण डाक्टर के० बी० मेनन के कमरे में रहे, जो उस समय विश्वविद्यालय के चौथे वर्ष में अध्ययन कर रहे थे और वहाँ से डाक्टरेट लेकर जब भारत लौटे, तो सार्वजनिक कार्यों में ही अपने को उत्सर्ग किया। पहले वह पं० नेहरू द्वारा आयोजित सिविल लिबर्टीज यूनियन के मंत्री थे और आजकल देशीराज्य

प्रजापरिषद के प्रधान मंत्री हैं। पिछली आगस्त-क्रांति में मेनन साहब को दस साल सख्त कद की सजा हुई थी और अब वह कांग्रेस सोशलिस्ट-पार्टी के सदस्य भी बन गये हैं। मेनन साहब की जन्मभूमि केरल प्रान्त है।

जयप्रकाश ने १६ मई को भारत का तट छोड़ा था और ८ अक्तूबर को उन्होंने अमेरिका की सरजमीन पर पैर रखा। किन्तु यूनिवर्सिटी का टर्म अगस्त से ही शुरू हो जाता था, इसलिए अभी तुरत उनकी भर्ती यूनिवर्सिटी में हो नहीं सकती थी। अब नया टर्म फिर जनवरी से शुरू होगा, अतः बीच के दो ढाई महीने किस तरह काटे जायँ, इसपर विचार-विमर्श हुआ। क्यों नहीं इसके अन्दर मजदूरी करके कुछ पैसे जमा किये जायँ? जयप्रकाश भी तो यही चाहते थे। अब मजदूरी की तलाश शुरू हुई।

कालिफोर्निया यूनिवर्सिटी से सम्बद्ध यगमैन्स क्रिश्चियन एसोसियेशन की तरफ से एक काम दिलानेवाला ब्यूरो था, जो विद्यार्थियों के लिए काम की खोजढूंढ किया करता और यों उनकी सहायता में लगा रहता था। इस ब्यूरो को खबर की गई; किन्तु प्रतीक्षा करने के बावजूद, मालूम हुआ कि इसके द्वारा अभी तुरत कोई काम मिलना सम्भव नहीं है। तब कुछ पंजाबियों ने बताया कि मेरिसविले (Marys Ville) या 'मेरी का गाँव, नामक एक स्थान कालिफोर्निया में है, जहाँ हिन्दोस्तानी फोरमैन मजदूरों को भर्ती करने आया-जाया करते हैं और प्रायः हर गैंग में एक-दो विद्यार्थी भी ले लेते हैं। जयप्रकाश अपने साथ रेड्डी को लेकर 'मेरी के गाँव' में आये। वहाँ एक होटल में दोनों ठहरे और शाम-सुबह हिन्दोस्तानी फोरमैनों के अड्डों पर जाकर दरियाफ्त करते। जयप्रकाश ने पाया, अपने देश से इतनी दूर रहने पर भी ये हिन्दोस्तानी अपनी मातृभूमि को भूले नहीं हैं। वे इन दोनों नौजवानों से बड़े तपाक से मिलते, बहुत भाई-चारा दिखाते, 'वतन' की हालत पूछते, खास कर, असहयोग के बारे ब्योरे की बातें जानना चाहते, जिसकी खबर तो उन्हें थी किन्तु जिस सम्बन्ध की पूरी जानकारी उन तक नहीं पहुँच पाई थी। ऐसे ही वतनपरस्त फोरमैनों में एक फोरमैन थे शेर खाँ पठान। शेर खाँ—सात फुट लम्बा, तगड़ा, जो अपने सूबाई भाई सरहदी गांधी को भी अपनी लम्बाई में मात कर दें। शेर खाँ इन दोनों नौजवानों

मिल कर बहुत खुश हुआ और उन्हें अपने गैंग में ले लिया। जयप्रकाश आज भी शेर खाँ की चर्चा करते हुए कृतज्ञता के बोझ से झुक जाते हैं। इस पठान ने इन्हें काम ही नहीं दिया, वह आराम दिया, जो घर पर ही मिल सकता है। पराये देश में हैं, पराये लोगों में हैं, उन्हें यह बोध होने भी नहीं दिया। जब तक वे लोग उसके गैंग में रहे, शेर खाँ ने अपने रसोई घर में कभी गो-मांस नहीं बनने दिया -- वह इन हिन्दू नौजवानों की भावनाओं पर इतना अधिक ध्यान देता था।

शेर खाँ का गैंग यूबा-सिटी में मिस्टर सी० बी० हार्टर की अंगूर की खेती पर काम कर रहा था, जो 'रंच' कहलाती है। हजारों एकड़ में एक-एक रंच फैली होती है। मुख्यतः अंगूर की ही खेती होती है, किन्तु उसके साथ बादाम, खूबानी, नाशपाती आदि फल भी वहाँ पैदा किये जाते हैं। अंगूर को सुखा कर किशमिश बनाते हैं। यार्ड में लम्बे-लम्बे तख्ते पड़े होते हैं, जिनपर अंगूर को सूखने के लिए रख दिया जाता है। लकड़ी की खुरपी होती है, जिससे उसे उलट-पुलट करते रहते हैं। इस उलट-पुलट के सिलसिले में सड़े अंगूरों को चुन कर फेंक दिया जाता है। अंगूर सूख जाने पर फिर उसकी पैकिंग वगैरह की जाती है। अंगूर की फसल खतम होने पर बादाम चुनने, खूबानियाँ तोड़ने आदि का काम शुरू होता है। प्रतिदिन नौ घंटे के हिसाब से काम करना पड़ता था, जिसमें बीच में एक घंटे की छुट्टी जलपान और आराम के लिए दी जाती थी। फी घंटा ४० सेण्ट के हिसाब से मजदूरी मिलती थी, जो चार डालर रोजाना आ पड़ती थी। उस जमाने में चार डालर हिन्दोस्तान के १७) के लगभग होते थे।

यह देखिये, यह मि० हार्टर की रंच है! चारों ओर अंगूर की लतायें, जिनमें गुच्छे-के-गुच्छे अंगूर लटक रहे! जहाँ-तहाँ बादाम, खूबानी और नाशपाती के छोटे छोटे पेड़—फलों से लदे हैं! रंच के बीच में यह लम्बा-चौड़ा यार्ड—तख्तों पर जहाँ अंगूर के दाने बिखरे हैं! और, उनके बीच यह कौन खड़ा हुआ है? आपको पहचानने में दिक्कत हो रही है? होनी ही चाहिए। सिर पर हैट, बदन में कमीज, कमर में पतलून—किन्तु, इन सबको ढक-सा रखा है, ओवरऑल ने, जो गर्दन से घुटने के नीचे तक

लबादा-सा लटक रहा है। यह पोशाक पहने, हाथ में लकड़ी की खुरपी लिए, यह कितनी फुर्ती से इस तल्ले से उस तल्ले तक जाता है और किस चुस्ती से अपना सारा काम पूरा करता है। यह जानता है, फोरमैन लोग विद्यार्थियों को रियायत करके काम पर लेते हैं। किन्तु यह दिखला देना चाहता है कि यह रियायत पसंद नहीं करता। यह जिस हिसाब से पैसे पाता है, उस पैसे की भरपाई काम के रूप में यह पूरा-पूरा कर देना चाहता है। जयप्रकाश की रचना साधारण मिट्टी से नहीं हुई है—शेर खाँ और उसके सारे मजदूर थोड़े ही दिनों में ही यह महसूस करने लगते हैं।

नवम्बर खत्म हुई, काम भी खत्म हुआ। जयप्रकाश के पास अब उतने पैसे हैं कि वह एक टर्म निश्चिन्त होकर पढ़ सकें। यह बर्कली आते हैं, यूनिवर्सिटी में दाखिल होने को दरख्वास्त करते हैं। उसके पास बिहार विद्यापीठ का सार्टिफिकेट है कि उन्होंने आई० एस-सी० पास किया है; यूनिवर्सिटी के प्रोफेसरों के प्रशंसापत्र हैं, जिनमें कहा गया है कि उनमें इण्टरमीडियट की पूरी योग्यता है। फलतः उनका नाम वहाँ सेकण्ड इयर में लिख लिया जाता है।

यह कालिफोर्निया यूनिवर्सिटी। कालिफोर्निया को अमेरिकन लोग 'संसार का बगीचा' कहते हैं—समुद्र के किनारे होने से न तो यहाँ ज्यादा बर्फ गिरती है, न यहाँ गरमी अधिक पड़ती है। खूब हराभरा प्रदेश—फलों और फूलों से लदा-सा! कालिफोर्निया के अनुरूप ही यहाँ की यह यूनिवर्सिटी है, जिसे देख कर ही जयप्रकाश भौंचक में पड़ जाते हैं। बीस हजार विद्यार्थी यहाँ पढ़ते हैं। मीलों तक फैले लम्बा-चौड़ा, खूबसूरत घेरा है इसका, जो कैम्पस कहलाता है। मकान भी बहुत ही भव्य और सुन्दर। विद्यार्थियों में लड़कियों की तायदाद काफी—जो लड़कों के साथ ही पढ़तीं, खेलतीं और होस्टलों में साथ ही रहतीं। प्रोफेसर भी बहुत ही अच्छे, प्रयोगशाला भी बहुत ही अच्छी। विद्यार्थियों और प्रोफेसरों में वैसा भाईचारापन, जिसकी भारत में कल्पना भी नहीं हो सकती। जयप्रकाश को पहले इन प्रोफेसरों के लेक्चर समझने में दिक्कत होती है, क्योंकि उनके उच्चारण में विभिन्नता है। तो भी टर्म के अन्त में जब परीक्षा होती है, तो प्रयोगशाला के प्रैक्टिकल

को छोड़ कर 'ए' ग्रेड का नम्बर उसे प्राप्त होता है, जिसका मानी होता है सौ में नब्बे स ज्यादा नम्बर लाना।

४. श्रमिक जीवन के खट्टे-मीठे अनुभव

कालिफोर्निया-युनिवर्सिटी में एक टर्म तक ही पढ़ पाये थे कि वहाँ की फीस के दुर्वह बोझ का अनुभव जयप्रकाश को होने लगा। पहले भी कड़ी फीस थी, फिर उसका इजाफा होने जा रहा था। एक टर्म—आधा साल—की फीस डेढ़ सौ डालर हो गई, जिसका मानी था करीब सौ रुपये माहवार! इतनी कड़ी फीस देकर स्वावलम्बन के आधार पर अध्ययन करना असम्भव नहीं तो कठिनतम अवश्य था।

जयप्रकाश के पुराने परिचित और अन्तरंग मित्र भोलादत्त पंत उन दिनों इयोवा (Iowa) यूनिवर्सिटी में पढ़ रहे थे, जहाँ सुप्रसिद्ध भारतीय विद्वान डा० सुधीन्द्र बोस प्रोफेसर थे। इस यूनिवर्सिटी में फीस कम थी, फिर पंत की संगति का सुख। जयप्रकाश कालिफोर्निया छोड़ इयोवा जाने की तैयारी करने लगे।

जाने के पहले फिर क्यों नहीं कुछ पैसे कमा लिये जायँ? जयप्रकाश ने फिर रंच की राह पकड़ी। इस बार वह सिक्खों के गैंग में पहले गये; किन्तु, उनका आचार-व्यवहार कुछ ऐसा था कि जयप्रकाश उनके साथ एक दिन से ज्यादा नहीं टिक सके। काम भी बहुत सख्त था। उसके बाद वह फलों की पैकिंग करने के काम में लगे। आड़ू, नाक (नाशपाती किस्म का एक फल) खूबानी, चेरी इत्यादि फलों को पहले भाफ से पकाया जाता था। यह अच्छी तरह देखना पड़ता था कि ये फल पक गये—न कच्चे रहे, न ज्यादा पके। फिर उन्हें सिरप में रख दिया जाता था, तब उन्हें पैकिंग-टिन के डब्बों में भर दिया जाता। टिन में रखने का काम ज्यादातर लड़कियाँ करतीं, मर्दों का काम उन्हें टिन का बर्तन पहुँचाना, बर्तनों में भरे जाने के बाद बक्स में उन्हें पैक करना, आदि था। टिन के बर्तनों और बक्सों को दुरुस्त करना, उनको फायदारो का यकीन कर लेना, आदि काम भी मर्द ही करते। कुछ दिनों तक इस मजदूरी से काफी पैसे कमा कर जयप्रकाश इयोवा के लिए रवाना हो गये।

इयोवा में हिन्दोस्तानी विद्यार्थियों का एक गिरोह पहले से था, जिसमें बंगाली थे, पंजाबी थे, कुछ दूसरे सूबों के विद्यार्थी भी थे। जयप्रकाश पंत के ही साथ ठहरे। दोनों एक ही कमरे में रहते; एक ही बिछावन पर सोते। निस्सन्देह ही अमेरिका में जयप्रकाश का सबसे घनिष्ठ मित्र भोलादत्त पंत ही थे।

इयोवा में जयप्रकाश दो टर्म—एक साल—तक रहे। पाँच-छः विद्यार्थियों का एक ही साथ खाना पकाना होता। खाना खुद ही पकाया जाता। रविवार को जो छुट्टियाँ होतीं, उन्हें गपशप में नहीं बिताया जाता। रविवार को जयप्रकाश भलेमानसों के मुहल्लों में निकल जाते और उनके फर्नीचरों को साफ करते, उनमें वार्निश लगाते। खिड़कियों और आलमारियों के शीशों की भी सफाई की जाती। जब कभी बर्फ पड़ी, कुदाल लेकर घर से निकले और किसी भलेमानस के आँगन की बर्फ काट कर, हटा कर उसे फिर पूर्व-सा साफ-सुथरा बना दिया। इन छोटे-छोटे कामों से भी काफी पैसे मिल जाते।

इयोवा में और विषयों के साथ जयप्रकाश ने केमिकल इञ्जीनियरिंग भी ले रखा था और इस सम्बन्ध में ड्राइङ्ग भी एक विषय था। जयप्रकाश आज भी हल्की मुस्कान के बीच बताते हैं कि जिन्दगी भर में यही (ड्राइङ्ग) एक विषय है, जिसमें उन्होंने फेल किया!

इयोवा के बाद जयप्रकाश शिकागो आये—शिकागो, अमेरिका का दूसरा सर्वश्रेष्ठ नगर! उस जमाने में भी उसकी आबादी ३५ लाख की थी। जयप्रकाश सबसे अधिक दिनों तक शिकागो में ही रहे, लगभग ढाई साल तक। इयोवा से आने के बाद तो यहाँ रहे ही; यहाँ से विस्कौंसिन गये और वहाँ से लौट कर फिर यहाँ बहुत दिनों तक रहे। शिकागो में जितने खट्टे-मीठे अनुभव जयप्रकाश ने प्राप्त किये, उतने अमेरिका के किसी शहर में नहीं—यद्यपि ओहायो में भी लगभग इतने दिनों, या इससे कुछ ही कम दिनों तक, रहे।

शिकागो में तरह-तरह की मजदूरियाँ उन्हें करनी पड़ीं। मुसीबतें भी तरह तरह की उठानी पड़ीं। पन्द्रह दिनों तक उन्हें एक होटल में पाखाना साफ करने का काम—मेहतर का काम—भी करना पड़ा, इसीसे आप अन्दा

लगा सकते हैं, शिकागो में जयप्रकाश को क्या क्या भुगतने पड़े, क्या-क्या करने पड़े।

कुछ दिनों तक उन्होंने मांस की फैक्टरी में काम किया। मांस की फैक्टरी—उफ, जहाँ छोटे-बड़े खाद्य-पशुओं की वह निर्मम हत्या होती है कि कल्पना से ही आदमी के रोंगटे खड़े हो जायँ। अभी आपके सामने जो बैल, जो गायें, जो सूअर, जो बकड़े खड़े हैं—पलक मारते ही वे कहाँ चले जायँगे और कुछ मिनटों में ही उनके मांस किस तरह डब्बों में बन्द होकर देश विदेश भेजे जाने लगेंगे, यह दृश्य आप-हम नहीं देखें, वही अच्छा। जयप्रकाश निरामिषभोजी, पक्का शाकहारी। किन्तु, पैसे की दिक्कत जो न कराये! पर वह भीतर कारखाने में तो किसी तरह काम नहीं कर सकते। उसके पावर हाउस में काम करते हैं।

कुछ दिनों तक मिट्टी के बर्तनों के कारखाने में भी अपने हाथ को आजमाइश करते हैं। यहाँ इस कारखाने में विशेषत मकानों की आभूषण-सामग्रियाँ बनती हैं। कोनों, कोर्निशों में रखने के लिए तरह तरह की मूर्तियाँ, गमले, आदि तैयार किये जाते हैं। ढाँचे में मिट्टी रख कर उन्हें ढाला जाता है, फिर ढलाई के भद्देपन और रुखड़ेपन को पालिश से साफ कर दिया जाता है, अन्त में सुन्दर-सुडौल बना कर रँग-रँगाकर ग्राहकों के हाथ ये मिट्टी की चीजें सोने की कीमत में बेची जाती हैं।

लोहे के कारखाने में भी। इस कारखाने में स्क्रू, नट, बोल्ट, आदि छोटे-छोटे जोड़ने के सामान तैयार किये जाते हैं। लोहे के ढोके ढलाई घर में भट्ठी की गरमी पाकर पानी-सा पतला बन जाते हैं, उन्हें ढाँचों होकर गुजरना पड़ता है और जब वे सामने आते हैं, स्क्रू, नट, बोल्ट, आदि भिन्न भिन्न रूपों में। ठोक ठाक कर इनकी पायदारी देखिये, आकार प्रकार के अनुसार इन्हें अलग-अलग छाँट कर रखिये, जिनमें कुछ नुक्स रह गया है उन्हें फिर ढलाई-घर में गलने-ढलने को भेज दीजिये।

किन्तु, क्या ये काम रोज-रोज मिलते हैं? जाड़े के दिनों में प्राय ही दिक्कत होती है। उस समय कारखानों में जल्द काम नहीं मिलता। फिर अमेरिका-भर में रंग भेद का जो बाजार गर्म रहता है। प्राय. ही कारखानों

के दरवाजे पर लिखा रहता है, यहाँ 'रंगीन जातियों'—हब्शियों और एशियाई मुल्कों के लोगों—के लिए जगह नहीं। विद्यार्थियों के साथ कुछ रियायत जरूर की जाती है, किन्तु हर रियायत की भी कोई सीमा है न।

आजकल जयप्रकाश बड़ी मुसीबत में हैं। पैसों की सख्त कमी है। बाजार से एक डब्बा चावल और एक डब्बा सेम के बीज खरीद लाते हैं। उन्हें आप ही उबालते हैं। उबलने पर यह दो आदमी का पूरा भोजन हो जाता है। उसमें से आधा भोर में खाकर, ऊपर से एक कप काफी पी लेते हैं, जो कभी मकान-मालकिन दे देती है और जिसमें कभी पैसे लग जाते हैं, और फिर काम की तलाश में चल देते हैं। कितने कारखानों के दरवाजे पर 'जरूरत नहीं' की तख्तियाँ पढ़ते या कितने दफ्तरों की झिड़कियाँ खाते दिन चढ़े लौटते हैं। जवानी की हड्डियाँ हरारत खोजती हैं, जवानी का दिमाग खुराक माँगता है। कभी रैकेट लेकर शिकागो के दो बड़े पार्कों में से एक में चले जाते हैं, जो दो महान राष्ट्रपतियों के स्मारक हैं—लिंकन पार्क और जेक्सन पार्क। यहाँ टेनिस के कोर्ट हैं, जहाँ आप मुफ्त खेल सकते हैं। एक घंटे तक खूब खेलकूद कर थकथका कर वह लौटते हैं। अब क्या किया जाय? तब पुस्तकों पर टूटते हैं।

साहित्य में अब पूरी अभिरुचि जग चुकी है। यूरोप के बड़े-बड़े कलाकारों की सम्पूर्ण कृतियों के भाग-पर-भाग खतम किये जा रहे हैं। अनातोले फ्रांस, इब्सन, क्नूट हम्सन (नोबेल पुरस्कार विजेता—नौर्वेजियन उपन्याससम्राट) गोर्की आदि की पुस्तकें छान डाली जाती हैं। अनातोले फ्रांस उन्हें सबसे अधिक पसंद आया है, इब्सन उसके बाद। साहित्यिक समालोचना में मदाम द० स्तेल नामक फ्रांसीसी महिला की ग्रन्थावली के छः भागों को वह एक-एक कर पढ़ डालते हैं। इस ग्रन्थ से यूरोप की साहित्यिक प्रगति और पद्धति का उन्हें पूरा परिचय प्राप्त हो जाता है।

किन्तु, हालत दिन-दिन खराब ही होती जाती है। उस समय जयप्रकाश एक पेशा अख्तियार करते हैं, जो उनकी रुचि के अनुकूल न होकर भी लाचारी में जिसे उन्हें स्वीकार करना ही पड़ता है। भारतीय विद्यार्थी तरह-तरह के सेंट, क्रीम, हेयरलोशन वगैरह तैयार करते हैं, जिनमें वे 'हिमालय की

बूटियाँ'—Himalayan Herbs—भी रखते हैं। इन बूटियों के रखने से इनके गुण में अजीब परिवर्तन हो जाते हैं, काले चेहरे को गोरे कर देते हैं, भेंड़ के ऊन की तरह के हब्शी बालों को ये लम्बे घुँघराले बना डालते हैं। हब्शी और मलाट औरतें इन चीजों के पीछे पागल बनी रहती हैं, खास कर मलाट औरतें, जो हब्शियों और गोरों की वर्णसङ्करता से पैदा होती हैं, चेहरा गोरा होने पर भी जिनके बाल भद्दे और भयावने, हब्शियों के से, होते हैं। केमेस्ट्री का यह मेधावी छात्र भी हिमालय की कल्पित 'बूटियों' को धारण लेने को लाचार होता है और अब हम उसे फेरीवालों के रूप में हब्शी और मलाट महल्लों में घूमते हुए देखते हैं। इसकी चीजें अच्छी होती हैं, बिक्री भी अच्छी हो रही है। किन्तु, एक दिन यह क्या हो जाता है कि वह इस पेशे को हमेशा के लिए नमस्कार कर लेता है।

वह फेरी की चीजों को लेकर मलाटों के महल्ले में गया। एक मलाट युवती ने उससे चीजें लीं, काफी चीजें। वह खुश हुआ, आज अच्छा सौदा पटा। चीजें देखकर जब वह बिल देने लगा, उसने कहा—घर का मालिक बाहर है, थोड़ी देर बाद आना। यही सही। थोड़ी देर बाद पहुँचने पर वह घर में ले गई, कहा, बैठो, काफी पिओ। अच्छा यह भी सही। एक महिला का आग्रह क्यों टाले! काफी भी खतम, लेकिन न मालिक लौट रहा है, न पैसे मिल रहे हैं! मुझे देर हो रही है, कोई इन्तजाम कीजिये, फुर्सत दीजिये। पैसे चाहिये? सिर्फ पैसे? एक भीषण मुस्कुराहट! जयप्रकाश जी वहाँ से भागते हैं, तो यह भी होश नहीं रहता कि अपनी फेरी की क्या क्या चीजें जल्दी में वहीं छोड़ आये!

शिकागो में भारतीय अहमदिया मुसलमानों की एक मस्जिद है—हब्सी लोगों के मुहल्ले में। कितने हब्सी मुसलमान हुए इसका हिसाब वहाँ के मुल्ला साहब ही जानें, जयप्रकाश और उसके साथियों के लिए यह मस्जिद जयारत की चीज इसलिए है कि यहाँ पर इन भुक्खरों—भारतीय नौजवानों—को जबतब बढ़िया पुलाव खाने को मिल जाया करता है। इनकी सूखी जीभें इस पुलाव को पाकर प्राय चिल्लाई हैं—इस्लाम की जय, भारतीय मुसलमानों की जय।

शिकागो में बहुत दिनों तक बंगाली छात्रों के साथ भी जयप्रकाश को रहने का मौका मिला और उन्होंने यहीं बँगला बोलना और पढ़ना सीखा।

५. समाजवादी विचारधारा—मास्को चलो

शिकागो से विस्कौंसिन विश्वविद्यालय की ओर

विस्कौंसिन का राज्य उन दिनों अमेरिका के सबसे प्रगतिशील राज्यों में गिना जाता था। यहाँ की यूनिवर्सिटी बहुत ही सुन्दर थी। यूनिवर्सिटी के जो सभापति थे, वे तो करीब-करीब समाजवादी ही थे। जयप्रकाश अपना बोरिया-बँधना लेकर इस विश्वविद्यालय में पहुँचे और विज्ञान का अध्ययन प्रारम्भ किया।

छुट्टियों में यहाँ भी तरह-तरह की मजदूरियाँ की जाती हैं—जलपान घरों में तश्तरियाँ साफ की जाती हैं, मेज पर खाना परोसना पड़ता है; घरों में फर्श बुहारना, कोयला जला देना, पानी गरम करना, आदि काम करने पड़ते हैं। जूता साफ करना, हजामत-घरों में काम करना—मालूम होता है, जैसे कोई काम भी बाकी नहीं छोड़ा जायगा।

विस्कौंसिन में आने पर जयप्रकाश की जान-पहचान विद्यार्थियों की एक अजीब मण्डली से होती है। इस मण्डली में अमेरिकन ही विद्यार्थी नहीं हैं—रूसी हैं, पोलैंड-निवासी हैं, जर्मन हैं, डच हैं, फ्रांसीसी हैं। अजीब लोग हैं ये, अजीब है इनकी भेष-भूषा। सबने मानों सभी प्रचलित रीति-नीति और परम्पराओं को तोड़ने की शपथ खा ली हो। इनके कपड़े निराले, इनके बाल निराले। विचारों की स्वाधीनता उच्छृङ्खलता की पराकाष्ठा तक पहुँची हुई है। ये लोग समय समय पर एकत्र होते हैं, विचार-विमर्श करते हैं, वाद-विवाद करते हैं। संसार का कोई ऐसा विषय नहीं, जिन्हें इन्होंने अछूता रहने दिया हो।

जयप्रकाश उनकी बैठकों में शामिल होते हैं, उनमें से कुछ व्यक्तियों से उनकी घनिष्ठता बढ़ती है। उन्हीं में से एक नौजवान है ऐब्राम लैंडो—वह पोलैंडनिवासी यहूदी है। इस विश्वविद्यालय का वह छात्र है, ऊपर के वर्ग का वह छात्र है और नीचे के वर्गों में पढ़ाता भी है—सहायक प्रोफेसर है।

वह अजीब प्रतिभाशील व्यक्ति है। विश्वविद्यालय की पढ़ाई में उसका नाम तो था ही; मार्क्सवादी साहित्य का अध्ययन भी उसने बड़ी गहराई तक किया था। जयप्रकाश उसकी ओर आकृष्ट होते हैं, वह इनकी ओर। साधारण परिचय घनिष्ठता में परिवर्तित होता है और घनिष्ठता अन्ततः मैत्री में। वह जयप्रकाश को पुस्तकें देता है, उनसे बहस करता है, उन्हें अपने विचारों के समीप लाना चाहता है। कुछ दिनों के बाद पता चलता है, वह कम्युनिस्ट पार्टी का सदस्य है, यहाँ भी कम्युनिस्टों का एक 'सेल' है। जयप्रकाश उनके सेल में जाना शुरू करते हैं और अन्ततः उनकी विचारधारा को स्वीकार कर लेते हैं। उन्हीं दिनों उन्होंने श्री एम० एन० राय की किताबें पढ़ीं—राय साहब उन दिनों कम्युनिस्ट थे, रूस में रहते थे, कोमिण्टर्न के प्रसिद्ध नेताओं में से थे। उनकी दो पुस्तकें—Aftermath of Non-co-operation और India in Transition—जयप्रकाश को बहुत प्रभावित करती हैं। राय द्वारा सम्पादित एक पत्र निकलता था—New Masses। इस पत्र के भी वह नियमित पाठक बन जाते हैं। अमेरिका की कम्युनिस्ट पार्टी के विविध साहित्य का अध्ययन भी करते हैं। अमेरिका की कम्युनिस्ट पार्टी के पूर्वीय विभाग के इन्चार्ज थे श्री मैनुअल गोमेज। यह मैक्सिको के निवासी थे। जयप्रकाश गोमेज से भी मिलते हैं और जब अमेरिकन मजदूरों की हड़ताल उनके नेतृत्व में होती है, उसमें क्रियात्मक सहायता पहुँचाते हैं।

अपनी आज तक की अध्ययन-शृङ्खला की ओर भी जयप्रकाश आलोचनात्मक दृष्टि डालते हैं। आज तक वह विज्ञान पढ़ते रहे। विज्ञान पढ़ने का एक ही उद्देश्य था कि स्वदेश लौट कर अपने वैज्ञानिक अनुसंधानों द्वारा देश को लाभ पहुँचायें; और, यदि सम्भव हो सके, तो कुछ पूँजी एकत्र कर आचार्य राय की तरह बेंगाल केमिकल की तरह का कोई कारखाना खोलें। किन्तु, अब वह सोचने लगते हैं, जब तक समाज का वर्तमान आधार कायम रहेगा, वैज्ञानिक अनुसंधान या उनकी नींव पर खड़े किये गये कलकारखाने देश के लिए, देश की जनता के लिए, कितने फायदे के हो सकते हैं? इन अनुसंधानों, इन कारखानों से फायदे होंगे, तो कुछ लोगों को, एक मुट्ठी लोगों को। एक मुट्ठी लोगों की तिजोरियाँ भरेंगी, उनके लिए

सुन्दर भवन बनेंगे। हो सकता है, कुछ मेहनतकशों के लिए भी काम मिल जाय—किन्तु, क्या इससे देश की गरीबी और बेकारी का मसला हल हो सकेगा? नहीं, जब तक समाज का नया निर्माण नहीं होता, नई नींव पर बिल्कुल नये सिरे से निर्माण नहीं होता, तब तक विज्ञान और अनुसंधान व्यर्थ हैं। वह अपने को इसी नव-निर्माण कार्य के लिए न्योछावर करेंगे।

इस नव निर्माण का एक चित्र उन्हें लैंडो द्वारा दिये गये साहित्य में मिल चुका है और वह उससे सहमत भी हो चले हैं। किन्तु, वह तो सिक्के का एक रुख है, वह दूसरे रुख को भी क्यों न देख लें? जहाँ, विस्कौंसिन में, वह पढ़ रहे हैं, वहाँ समाजशास्त्र के दो प्रकांड विद्वान हैं—प्रोफेसर रौस और प्रोफेसर यंग। प्रोफेसर रौस अमेरिका में समाजशास्त्र के पिताओं में गिने जाते हैं—कितने ही प्रामाणिक ग्रन्थों के प्रणेता, अमेरिका के आधे दर्जन विद्वानों में एक। और, प्रोफेसर यंग भी सामाजिक मनोविज्ञान के आचार्य हैं। जयप्रकाश निर्णय कर लेते हैं, वह विज्ञान का अध्ययन छोड़ देंगे, अब समाजशास्त्र का अध्ययन प्रारम्भ करेंगे। जिसने विज्ञान के अध्ययन में पाँच वर्ष लगाये—दो वर्ष हिन्दोस्तान में, तीन वर्ष अमेरिका में—वह ग्रेजुएट होने के पहले ही उसे छोड़कर समाजशास्त्र की ओर मुड़ पड़ता है! जयप्रकाश डिग्रियों के भूखे नहीं हैं, वह तो ज्ञान के भूखे हैं।

लेकिन, थोड़े दिनों तक समाजशास्त्र पढ़ने के बाद लैंडो की प्रेरणा और गोमेज के प्रोत्साहन पर जयप्रकाश रूस जाने को तैयार हो जाते हैं। ठीक तो, एक बार रूस जाकर वहाँ, अपनी आँखों, समाज के नवनिर्माण के उस भगीरथ प्रयत्न को क्यों न देख लें? वहाँ, मास्को में, एक पूर्वीय विश्वविद्यालय है, जहाँ चीन, भारत आदि के विद्यार्थी अध्ययन करते हैं। उस विश्वविद्यालय में वह समाजशास्त्र का भी अध्ययन करेंगे। मास्को चलो—उनके कान यह आह्वान अनायास सुनते हैं।

विस्कौंसिन को सलाम कर वह फिर शिकागो आ जाते हैं। शिकागो में वह पैसे कमाना चाहते हैं, जिसमें तुरत से तुरत वह रूस जाने के योग्य अपने को बना सकें। शिकागो में एक भारतीय भद्रपुरुष रहते हैं—नाम है चन्द्रा सिंह। श्री चन्द्रा सिंह के पूर्वज भारत से वेस्ट इण्डीज गये थे, ग्रेनाडा-टापू में।

वहाँ वे शर्तबंद कुली की हैसियत से गये थे, लेकिन धीरे-धीरे कुछ पैसे जमा कर स्वतंत्र नागरिक बन चुके थे। श्री चन्द्रा सिंह के पूर्वज किस जिले से गये, कौन जाति के वे थे, चन्द्रा सिंह तक को अब उसका पता नहीं चलता। चन्द्रा सिंह ने शिकागो में अपना मकान कर लिया है और अपनी धर्मपत्नी के साथ वहीं रहते हैं। उनका मकान भारतीय विद्यार्थियों की शरण-स्थली है। जयप्रकाश आकर यहीं ठहरते हैं। किन्तु, जैसी उन्हें उमीद थी, यहाँ आकर तुरत पैसे कमाना तो मुहाल—यहाँ रहना भी मुश्किल हो रहा है। मंदी का जमाना है, जाड़े का मौसम। जैसा पीछे वर्णन हो चुका है—वही एक डब्बा चावल, एक डब्बा सेम के बीज। एक प्याला कॉफी कभी-कभी चन्द्रा सिंह की बीवी दे दिया करती हैं, जिन्हें वह 'मदर' (माँ) कहते हैं। भोजन की कमी, कपड़ों की कमी, फिर, दिन भर की दौड़धूप, बीमारी उन्हें घर दबोचती है। पहले कुछ खाँसी होती है, टौन्सिल की शिकायत। किन्तु धीरे-धीरे वह भयानक रूप धारण करती जाती है।

आह! देखिये, यह कौन खाट पर पड़ा है? गले में दर्द, फिर जोड़ों में दर्द। वह बोल नहीं सकता, खा नहीं सकता। शरीर गल रहा है, चेहरा मुरझा रहा है। रूस का सपना तो जैसे सदा के लिए हवा हो गया—अब वह फिर अपने देश को भी देख पायगा, इसमें भी सन्देह हो रहा है। उसकी आँखें किसीको खोज रही हैं। कभी शून्य में वह ताकता रह जाता है, कभी आँखें मूँद किसीकी कल्पनामूर्त्ति को घूरता रह जाता है। वह कौन-सी कल्पनामूर्ति है? माँ—फूलरानी! आज जैसे उसके अणु-अणु से ध्वनि-प्रतिध्वनि निकल रही है—माँ, माँ! किन्तु, बेचारी माँ को यह खबर कहाँ कि उसका 'बउल' आजकल रोगशय्या पर पड़ा उसकी याद में तड़प रहा है, बिसूर रहा है। उस बेचारी को सिर्फ इतनी चिन्ता है कि 'बउल' ने कोई पत्र इधर क्यों नहीं भेजा—क्या बात है, क्यों चुप हो गया है, क्या हमलोगों को भूल गया, क्या हमलोगों से नाराज हो गया? नाराज—यह तो हो नहीं सकता। भूल गया—यह भी असम्भव! तो फिर मामला क्या है? मनौतें मानी जा रही हैं, पूजावत हो रहे हैं। उधर, उसका 'बउल' अपनी पीड़ाओं को आप ही पीता हुआ, अपनी अंतर्व्यथा किसी

पर प्रगट तक नहीं होने देता—पर लिखने और खबर देने की कौन-सी बात!

बेचारे चन्द्रा सिंह हैं, उनकी धर्मपत्नी हैं; वहाँ उनके और भी साथी हैं, रेड्डी हैं, प्रधान हैं—यात्रा के प्रथम दिन के ही साथी। और भी कई नये लोग हैं—सब-के-सब उनकी सेवा में लगे हैं। पैसे उनके पास नहीं थे; किन्तु साथियों, के पास जो कुछ है, उसे अपने इस प्यारे 'नारायन' के लिए खर्च करने में क्या वे जरा भी आनाकानी कर सकते हैं! फिर चन्द्रा सिंह जो हैं! डाक्टर बुलाये जाते हैं, उन्हें दिखाया जाता है। गले का आपरेशन होता है, जोड़ों के दर्द के लिए दवाएँ दी जा रही हैं। डाक्टरों का कहना है, अमेरिका की जलवायु को देखते हुए मांस नहीं खाना उनके लिए हानिप्रद हुआ है—उन्हें थोड़ा गोश्त जरूर ही लेना चाहिये। पाँच महीने तक बीमार रहने के बाद जयप्रकाश अच्छे होते हैं—खाट छोड़ते हैं, चलते-फिरते हैं। तब कहीं वह घर पर खत भेजते हैं कि मैं बीमार पड़ गया था; अब अच्छा हूँ। बीमारी में कुछ रुपये कर्ज हो गये हैं—कृपया रुपये भेजिये। बउजी बीमार थे, परिवार में सनसनी फैल जाती है। बाबू हरसूदयालजी जमीन रेहन रखकर, कर्ज लेकर, तुरत रुपया अमेरिका भेजते हैं।

घरवालों को यह भी खबर होती है, वह रूस जाना चाहते थे, जाना चाहते हैं—अतः सिर्फ स्वयं ही मनाही की चिट्ठी नहीं लिखते; श्री ब्रजकिशोर बाबू से, श्रीराजेंद्र बाबू से चिट्ठियाँ लिखवाते हैं। राजेन्द्र बाबू ने लिखा है—आप उधर से रूस नहीं जायँ; भारत लौटें और यदि आपका आग्रह ही रहा, तो लौट आने के बाद यहीं से रूस जाने का प्रबन्ध करने की कोशिश की जायगी। यह बीमारी; यह मनाही। रूस जाना स्थगित ही कर दिया जाता है।

६. उपाधि और अध्यापन!

रूस का जाना रुक गया और अभी स्वदेश भी नहीं लौट सकते थे। इतनी सख्त बीमारी के बाद अपने लोगोंको देखने को प्रवृत्ति स्वाभाविक होती है, किन्तु, अधूरा काम छोड़ना जयप्रकाश का स्वभाव नहीं था।

यह फिर विस्कौंसिन लौटते हैं और समाजशास्त्र का अध्ययन जारी हो जाता है। समाजशास्त्र में समाज के विकास का अध्ययन उन्हें बहुत ही पसंद है—समाज किस तरह सग्रथित होता है, किस तरह उसमें परिवर्तन होते जाते हैं उन परिवर्तनों के क्या नियम हैं, आदि की खोजढूँढ़ उन्हें भौतिक विज्ञान के अनुसंधानों से भी ज्यादा दिलचस्प मालूम होती है।

विस्कौंसिन में एक ही टर्म पढ़ पाते हैं कि लैंडो ओहायो (Ohio) विश्वविद्यालय में स्थान पा जाता है और वहीं चला जाता है। जयप्रकाश भी विस्कौंसिन से ओहायो के लिए प्रस्थान कर देते हैं और अमेरिका के शेष जीवन वहीं व्यतीत करते हैं।

ओहायो की यूनिवर्सिटी भी उन्हें भाती है। वहाँ लैंडो तो गया ही है, वहाँ प्रोफेसर मिलर हैं, विकासवाद पर जिनके अनुसंधानों ने वैज्ञानिक जगत में धूम मचा दी है। जब वह अमेरिका से लौटेंगे, गर्व के साथ मिलर के शिष्य के रूप में अपने को पेश करेंगे। मिलर से पढ़ना मात्र हो जैसे ज्ञान अनुसंधान का प्रमाणपत्र हो! प्रोफेसर लुमाले के भी वह बड़े प्रिय शिष्य थे।

ओहायो में आकर ही जयप्रकाश ने बी० ए० किया—ग्रेजुएट हुए। उन्होंने यूनिवर्सिटी में अच्छा स्थान भी प्राप्त किया, जिसके चलते उन्हें ३० डालर की स्कालरशिप मिली। इस स्कालरशिप के चलते जयप्रकाश को मजदूरी करने से फुर्सत मिल गई। फिर, एम० ए० में एक ही टर्म पढ़ सके थे कि वह सहायक प्रोफेसर बना दिये गये—आप एम० ए० में पढ़ते भी थे और इधर नीचे के वर्गों के विद्यार्थियों को पढ़ाते भी थे। इस अध्यापन कार्य से ८० डालर प्रतिमास प्राप्त हो जाते हैं, जो उनके ऐसे मितव्ययी व्यक्ति के लिए अमेरिका में भी काफी हो जाता है। इस ८० डालर के बदले उन्हें हफ्ते में चार क्लास करने पड़ते थे।

यहाँ अमेरिकन यूनिवर्सिटियों की अध्ययन प्रणाली पर भी दो-चार शब्द लिख देना आवश्यक है। अमेरिकन विश्वविद्यालयों में ग्रेजुएट होने के लिए चार साल लगते हैं, किन्तु यदि लगातार पढ़ा जाय और परिश्रम किया जाय, तो ढाई साल में भी विद्यार्थी बी० ए० कर जा सकता है। ग्रेजुएट

होने के लिए कुल मिलाकर कुछ खास नम्बर परीक्षा में लाना आवश्यक है। विद्यार्थियों के पास यूनिवर्सिटी के कार्ड होते हैं, हर टर्म में वह जितना नम्बर ला सकेगा, वे उसके कार्ड पर अङ्कित कर दिये जायँगे। अगर बीच में, किसी कारण से, वह एक टर्म छोड़ भी दे, जैसा जयप्रकाश कमाने के लिए प्रायः करते थे, तो इससे कोई हानि नहीं। अगले टर्म में जो नम्बर प्राप्त किये जाते हैं, उन्हें कार्ड पर चढ़ा दिया जाता है। यदि बीच में एक यूनिवर्सिटी छोड़ कर दूसरी यूनिवर्सिटी में चले गये, तो भी कोई हर्ज नहीं। वह कार्ड कायम समझा जाता है और नई यूनिवर्सिटी अपने यहाँ के नम्बर उसपर अंकित करती जाती है। पास करने के लिए वहाँ सैकड़े पचहत्तर नम्बर लाना आवश्यक है। एक विशेषता यह है कि साइंसवालों को भी कुछ आर्ट्स के पर्चे लेने होते हैं और आर्ट्सवालों को भी कुछ साइंस के पर्चे। इससे साइंस वाले थोड़ा अतिरिक्त परिश्रम अपने ऊपर उठाकर आर्ट्स में चले जा सकते हैं और आर्ट्स वाले साइंस में। इसलिए जयप्रकाश ने जब साइंस छोड़ कर आर्ट्स लिया, तो उन्हें ज्यादा तरद्दुद नहीं करनी पड़ी। नये-नये विषयों को लेना और बदलते रहना जयप्रकाश का स्वभाव भी था। वह अपने समय का पूरा उपयोग करना चाहते थे, फलतः नये-नये विषयों को लेकर उनका ज्ञान प्राप्त करना अपना स्वभाव-सा बना रखा था।

ओहायो से ही जयप्रकाश ने एम० ए० किया—एम० ए० की थिसिस उन्होंने प्रोफेसर लुमले के संरक्षण में तैयार की थी। उनकी थिसिस का विषय था—Social Variation. डारविन ने अपने विकासवाद में बताया था कि किस तरह जीवों में नई-नई किस्म की नस्लें बनती हैं और उनमें से कुछ तो बच पाती, बाकी परिस्थिति प्रतिकूल होने के कारण नष्ट हो जाती हैं। डारविन के इसी सिद्धांत को समाज पर लागू करने का श्रेय है येल-यूनिवर्सिटी के प्रोफेसर केलर को। जयप्रकाश ने अपनी इस थिसिस में केलर के सिद्धांत को विकसित किया था और बताया था कि क्यों और किस तरह समाज में नये-नये रीत-रिवाज आदि पैदा होते और उनमें से कुछ बच जाते, बाकी नष्ट हो जाते हैं। उनकी यह थिसिस उस साल की उस विषय की यूनिवर्सिटी की सर्वश्रेष्ठ थिसिस थी और इसके लिए जयप्रकाश की बड़ी प्रशंसा हुई थी।

विज्ञान और समाजशास्त्र के अध्ययन के सिलसिले में जयप्रकाश ने अन्य कितने ही विषयों का गम्भीर अध्ययन किया। गणित उनका प्यारा विषय रहा है; गणित की ऊँची-से-ऊँची पढ़ाई में वह शामिल होते रहे। 'हायर कलकुलस' (Higher Calculas) के अलावे 'गणित की सम्भावनायें' (Mathematical Probabilities) और 'व्यापारिक भविष्यवाणी' (Business Forecast) के शास्त्रों का भी अध्ययन करते हैं। जब विज्ञान छोड़ा, तब भी उन्होंने गणित का परित्याग नहीं किया। कीटाणु शास्त्र (Bacteriology) उस समय का बिल्कुल नया शास्त्र था, जयप्रकाश ने इसके अध्ययन में भी अपना काफी समय लगाया। अर्थशास्त्र, मनोविज्ञान, इतिहास, शरीर-विज्ञान, मानववंश शास्त्र (Anthropology), अंक-तालिका-शास्त्र (Statistics) आदि में भी जयप्रकाश ने काफी समय लगाया और उनमें व्युत्पन्नता प्राप्त की। आज क्या यह मजे में नहीं कहा जा सकता है कि भारतीय नेताओं में ऐसा कोई नहीं है, जिसने उनकी तरह विविध शास्त्रों का यथाविधि अध्ययन किया हो और फलतः उनकी तरह बहुज्ञ हो? यह जयप्रकाश की विनयशीलता है कि वह अपनी विद्या को अपने निकटतम व्यक्तियों से भी छुपाये रहते हैं। यही नहीं, अमेरिका के अपने जीवन में पाखाना साफ करने से लेकर प्रोफेसरी तक की भिन्न-भिन्न जीविकाओं का जो अनुभव उन्होंने प्राप्त किया, इसको भी वह अपने अध्ययन का एक बहुत बड़ा जबर्दस्त हिस्सा मानते हैं, किन्तु, इन बातों को भी वह इस तरह छुपाये रहते हैं, जिससे मालूम होता है, अमेरिका का उनका अध्ययन साधारण विद्यार्थियों का अध्ययन रहा है। यह तो मजे में कहा जा सकता है कि श्रमिक जीवन के ये खट्टे-मीठे अनुभव नहीं होते, तो आप जयप्रकाश को किसी यूनिवर्सिटी के किसी विभाग का 'हेड' देख सकते थे, भारतीय राजनीति में भी कोई उज्ज्वलतम पद पर उन्हें पा सकते थे, किन्तु, आज जो जयप्रकाश जनता के नेता हैं, गरीबों के नेता हैं, किसानों के नेता हैं, मजदूरों के नेता हैं—उस जयप्रकाश को हम आप देख नहीं सकते थे, पा नहीं सकते थे!

एम० ए० करने के बाद जयप्रकाश पी-एच० डी० की तैयारी करते हैं। बस अब एक-सवा वर्ष की देर है। वह सोचते हैं, इस अर्से में पी-एच०

डी० करके वह अपनी जन्मभूमि के लिए प्रस्थान कर देंगे। किन्तु, शायद उनको एक असिल पा को अपूर्ण रखा जाना ही नियति ने तय कर रखा था। उन्हें अचानक खबर मिलती है, उनकी माँ बीमार हैं! माँ—फूलरानी! बीमार हैं, मृत्युशय्या पर हैं! मृत्युशय्या पर—मृत्युशय्या क्या चीज है, यह देख चुके हैं, उस समय की भावनाओं का अनुभव कर चुके हैं। फूलरानी अपने 'बउल' के लिए उस शय्या पर किस तरह बेचैन होंगी, वह महसूस करते हैं। उन्होंने जो खत लिखा है, उससे माँ के हृदय की व्यथा का अंदाजा लगाया जा सकता है। वह व्यथा उनके हृदय को मथ देती है, व्याकुल कर देती है और वह तय कर लेते हैं, जहन्नुम जाय यह पी एच० डी०, डाक्टर न कहलाये, क्या बिगड़ गया? वह अपनी माँ के दर्शन उनकी मृत्युशय्या पर जरूर करेंगे, करके रहेंगे।

७. सलाम, चचा शाम!

माँ बीमार हैं, घर लौटना है। किन्तु लौटा जाय कैसे? क्या इसके लिए घर से पैसे मँगाये जायँ? इतने पैसे आयेंगे कहाँ से? इन पैसों के चलते क्या माँ की दवादारू में कमी नहीं हो जायगी? तब? फिर, वही मजदूरी की धुन। ओहायो के विश्वविद्यालय को सलाम किया जाता है, प्रोफेसरों को सलाम किया जाता है, मित्रों को सलाम किया जाता है और 'चचा शाम' को आखिरी सलाम देने के ख्याल से न्यूयार्क के लिए प्रस्थान कर दिया जाता है।

न्यूयार्क—अमेरिका की राजधानी! संसार की सर्वोत्तम और सर्वश्रेष्ठ ऐश्वर्यशाली नगरी! जहाँ यथार्थ में गगनचुम्बी इमारतें हैं, जैसी ऊँची इमारतें संसार में बनी नहीं।

इसी न्यूयार्क में जयप्रकाश के प्यारे सखा रेड्डी पहले से जमे हुए थे और मुर्गियों का व्यापार कर रहे थे। भोलादत्त पंत भी थे। यहाँ आकर जयप्रकाश ने होटल और कारखाने में काम करना शुरू किया। कारखानों में पैसे अधिक मिलते; होटलों में पैसों के अलावा खाने को भी मिल जाता। न्यूयार्क के होटलों की विलासिता, निर्लज्जता और नग्नता के दृश्य जयप्रकाश के हृदय पर

जयप्रकाश : अमेरिका का सभ्य छात्र

पूँजीवादी सभ्यता के खिलाफ आखिरी लकीर खींच देती है। आह! जहाँ आदमी कुत्ते-सा निरीह जीव समझा जाता है—जिसके सामने नग्न वासना के विविध दर्शन करते ये विलासिता के पुतले लज्जा का भी अनुभव नहीं करते!

कारखाने और होटल से जब कभी फुर्सत मिलती है, रौकफेलर के बनाये इण्टरनेशनल हाउस में मित्रमंडली जुटती है और दो घड़ी का मनबहलाव हो जाता है। एक दिन शाम का वक्त। जयप्रकाश इण्टरनेशनल हाउस में आकर एक बेंच पर बैठ गये। सामने समुद्र लहरा रहा है; जिसके पानी को जहाजों की रोशनी जगमग बना रही है। उसके पीछे न्यूयार्क का परीस्तान है, जहाँ का शोर उसके कानों से आकर टकरा रहा है। उसके कान शोर सुन रहे हैं, उसकी आँखें झिलमिल तरंगों को देख रही हैं। किन्तु, उसका मन कहाँ और है। कहाँ?—सात समुद्र पार, किसी घोर देहात के खपरैल के भीतर, जहाँ खाट पर पड़ी उसकी माँ 'बउल' 'बउल' कह रही होगी। वह क्या करे? जल्द पैसे पूरे हो नहीं रहे। उसका शरीर जितनी मेहनत कर सकता है, वह कर रहा है। किन्तु क्या सदा श्रम के अनुपात में ही पारिश्रमिक मिलता है?

"हलो, नारायण!"—पीछे से पीठ पर लगी एक हल्की धौल के अट्टहास के साथ वह यह शब्द सुनता है। मुड़कर देखता है, उसका पुराना मराठा साथी औरंगाबादकर है! "अच्छा, तुम"—जयप्रकाश के मुँह से निकलता है कि औरंगाबादकर जैसे चिढ़ कर कहता है!—"तुम? और तुम थे कहाँ हजरत? मैं तलाश करते-करते थक गया! सोचा था, तुम्हारे साथ ही देश को लौटेंगे—अपनी मोटर भी लिये चलेंगे और यूरोप से मोटर द्वारा ही सैर-सपाटा करते हिन्दोस्तान पहुँचेंगे। तुमने तो सब गुड़गोबर कर दिया! खैर, बताओ, देश चलते हो न?"

"जाने की ख्वाहिश तो है, लेकिन थोड़े दिनों बाद?"

"रहने दो, रहने दो, मैं समझ गया! तुम्हारे पास पैसे नहीं हैं, यही न? जानता हूँ, तुम छिपाओगे! लेकिन, मैं मानूँगा नहीं। कल ही के जहाज से चलना है और इंगलैण्ड तक का खर्च मेरा रहा।"

अभी-अभी देखिये, यह भारतीय नौजवानों की मंडली जुटी है। मराठे हैं, मद्रासी हैं, पंजाबी हैं, युक्तप्रान्ती हैं—और बीच में यह एक बिहारी है। इसी बिहारी की बिदाई के लिए तो तुरत-तुरत यह समारोह एकत्र हुआ है। यह सब का प्यारा साथी रहा है, सबने इसे स्नेह दिया है, श्रद्धा दी है। हाँ, श्रद्धा भी। जिसने अमेरिका के इस जीवनमय, यौवनमय वातावरण में सात सालों तक रह कर भी न शराब छुई, न सिगरेट छुआ; जिसका चरित सदा शरद की गंगा की तरह निर्मल, पवित्र रहा है; जिसने अमेरिकन विद्यार्थियों और प्रोफेसरों के हृदयों पर भारतीय प्रतिभा का सिक्का जमाया—वह उनका श्रद्धाभाजन क्यों न हो! आज वह जा रहा है। उसका अभाव वे किस तरह कितना अनुभव करेंगे! सबके हृदय में एक उदासी-सी छाई है, किन्तु, सभी हँस-हँस कर बिदा कर रहे हैं। जाओ दोस्त, जाओ! सुख से जाओ, आनन्द से जाओ और अपने देश को, समाज को, परिवार को अपनी उपस्थिति, योग्यता और सेवा से कृतकृत्य करो!

"लेकिन, नारायण, चलते-चलते तुम्हें एक काम तो करना ही होगा।" भोला पंत ने यह बोलते हुए अपना सिगरेट केस निकाला और उसमें से एक सिगरेट जयप्रकाश को देते हुए कहा—"लो, आखिरी बार हमलोगों के नाम पर जरा धुआँ भी तो उड़ा लो।" और जब सिगरेट जला, तो फरमाइश हुई—"अच्छा, जरा 'रिंग' तो बनाओ।" और यह देखिये, जयप्रकाश के होठों से धुएँ का वृत्त निकल कर हवा में फैलता बढ़ता जा रहा है और मित्रों की तालियों की गड़गड़ाहट से वातावरण विक्षुब्ध बन रहा है।

१९२२ के अक्टूबर में, सिर्फ २० वर्ष की उम्र में जिस नौजवान ने अमेरिका की सरजमीन पर पैर रखा था, वह सितम्बर १९२९ में उसकी तटभूमि को नमस्कार कर स्वदेश के लिए चल देता है। अब वह २७ वर्ष का प्रौढ़ युवक है। उसने नये ज्ञान प्राप्त किये हैं, नये-नये अनुभव प्राप्त किये हैं। जब वह आया था, कच्चा नौसिखुआ जवान था, अब वह प्रौढ़ परिपक्व विद्वान होकर लौट रहा है। अमेरिका का अहसान वह कभी भूल नहीं सकता। इस भूमि ने उसे जो कुछ दिया है, उसे ही सम्बल बनाकर उसे अपनी जीवनयात्रा पूरी करनी होगी। अमेरिका को 'चचा साम' कह कर

पुकारा जाता है—लम्बे, अधेड़ किन्तु तने हुए, खुश्की दाढ़ीवाले, वात्सल्य से सने चचा के रूप में अमेरिका को चित्रित किया जाता है। चचा शाम ने सचमुच वत्सल्यपूर्ण प्रेमल चचा का व्यवहार जयप्रकाश से किया है। वह मन-ही-मन हजारों बार अपने 'चचा शाम' को सलाम करता पल-क्षण उससे दूर होता जा रहा है।

अमेरिका से यह जहाज इंगलैंड आया। इंगलैंड आकर औरंगबादकर तो देश को रवाना हो गये, किन्तु, जयप्रकाश ने वहीं ठहर कर घर को रुपये भेजने के लिए खबर की। रुपये आने में २८ दिन की देर हुई। इन २८ दिनों में जयप्रकाश ने लंदन को देखने-समझने की कोशिश की—हाँ, बीच में एक बार, रुपयों के अभाव के बावजूद, औक्सफोर्ड देखने का लोभ वह सम्वरण नहीं कर सके। औक्सफोर्ड में उन्हें सर राधाकृष्णन् से मिलना भी था, जो उस समय वहाँ भारतीय दर्शन के प्रोफेसर थे। १९१४—१८ के महायुद्ध के बाद, संसार में सद्भाव और शान्ति की स्थापना के लिए एक संस्था कायम करने का विचार उस समय हो रहा था, जिसके द्वारा योग्य नौजवानों को नैतिक नेतृत्व की नींव डालने के लिए सुशिक्षित कर उन्हें देश-देश में भेजा जाय। जयप्रकाश इस संस्था में सम्मिलित होना चाहते थे और इसके लिए उन्होंने अमेरिका से ही एक खत सर राधाकृष्णन् के पास भेजा था, जो उस संस्था के प्रवर्तकों में से थे। इस भेंट के बाद जयप्रकाश को पता चल गया कि इस संस्था का भविष्य क्या है—फलतः वह स्वदेश को ही कर्मक्षेत्र बनाने का निश्चय करके इंगलैंड से चल पड़े।

घर से जो पैसे आये, उससे थर्ड क्लास का टिकट कटा कर, वह एक औस्ट्रेलियन जहाज से भारत के लिए रवाना हुए। थर्ड क्लास की यात्रा की तकलीफें अब उनके लिए असहनीय नहीं रह गई थीं। सात साल की अमेरिकन जिन्दगी में जो-जो भुगत चुके थे, उसे देखते, ये तकलीफें तो आराम ही-सी लगती थीं। यह औस्ट्रेलियन जहाज कोलम्बो होकर अपने देश को जाता था। जयप्रकाश कोलम्बो में उससे उतर गये और फिर दूसरे जहाज से कलकत्ता के लिए चल पड़े। कोलम्बो से मद्रास और मद्रास से कलकत्ता!

और, कलकत्ता से पटना। वही पटना, जिसे सात साल पहले छोड़ा था। इन सात वर्षों में दोनों तरफ तब्दीलियाँ हुई हैं। पटना की सूरत-शक्ल बदल गई है; जयप्रकाश की सूरत-शक्ल भी पुरानी नहीं है। पुराने पटना में फिर से जवानी की अँगड़ाई दीख पड़ती है; जवान जयप्रकाश में प्रौढ़ता के लक्षण फूटे पड़ते हैं। दोनों एक दूसरे को देखते हैं, ललचते हैं, लपकते हैं। दोनों कुछ निर्णय कर लेते हैं—किन्तु, अभी गंगा में कुछ और पानी बह जाना है।

पटना से सिताब-दियारा—'जन्मभूमि मम पुरी सुहावनि'। वही स्वच्छ, नील आकाश; वही हरीभरी भूमि। भूमि पर कहीं-कहीं काश, आकाश में यत्रतत्र शुभ्र बादल। फूस और खपरैलोंवाला यह गाँव—परिचित चेहरे, परिचित घर—जिन्हें सात वर्ष के प्रवास ने तब्दीलियाँ लाकर और मनोरम बना रखा है। किन्तु जयप्रकाश को इनके देखने की फुर्सत कहाँ! वह बेतहाशा दौड़ते हैं अपनी माँ की शय्या की ओर। और, यह, माँ बेटा मिल रहे हैं। माँ बेटे का यह मिलन। कौशल्या ने चौदह वर्ष के बनवास के बाद अपने 'रामू' को पाया—फूलरानी ने सात वर्ष के प्रवास के बाद अपने 'बउल' को पाया। कहाँ अधिक आँसू बहे? किस ओर से अधिक आँसू बहे? साक्षिणी सरयू!—इतिहास एक दिन तुम्हीं से पूछेगा; जरा सावधानी से देख रखो।

तीसरा अध्याय : भारत के राजनीतिक मंच पर

१. स्वराज्य-भवन में

जयप्रकाश हिन्दोस्तान लौट कर देखते हैं, जिस हिन्दोस्तान को छोड़ कर वह गये थे, वह हिन्दोस्तान अब नहीं रहा। इन सात सालों ने उसकी पूरी कायापलट कर रखी है।

यह नया हिन्दोस्तान—यौवन और जीवन का हिन्दोस्तान ; उत्साह और उमंग का हिन्दोस्तान; उत्सर्ग और बलिदान का हिन्दोस्तान !

हिन्दोस्तान के कोने-कोने में जवानी, जैसे, अँगड़ाई ले रही है। जगह-जगह नौजवानों की सभायें कायम हो रही हैं। तरुणों के जयघोष ने देश के वायुमंडल में विद्युत का संचार कर रखा है। नई भावना, नये आदर्श से प्रेरित हो वे अपने को बलिदान करने के लिए, जैसे, पागल-से दिखाई पड़ रहे हैं। उनके इस जोश ने बुड्ढों की हड्डियों के खून को भी गरमा दिया है। अब कहीं निराशा का नाम नहीं है। मर्दानगी ने मुर्दानगी पर विजय प्राप्त कर ली है।

इसकी एक झलक जयप्रकाश को अपने घर में आते ही देखने को मिल जाती है।

उनके आने के थोड़े दिनों के बाद ही मुंगेर में प्रान्तीय राजनीतिक सम्मेलन हुआ। सम्मेलन बड़े धूमधाम से किया गया। सम्मेलन के सभापति श्री राजेन्द्र बाबू थे। सरदार पटेल भी उसमें पधारे थे—बारडोली की विजय ने जिनके व्यक्तित्व को बाँसों उछाल दिया था। उस सम्मेलन में प्रान्त की तरुण-शक्ति से इन बड़े-बूढ़ों की मुठभेड़ सी हो गई। पूर्ण स्वतंत्रता बनाम औप-

निर्वेविक स्वराज्य—यह उस समय का अहम सवाल था। नौजवानों ने पूर्ण स्वतंत्रता का प्रस्ताव किया; नेताओं ने उसका विरोध किया। प्रान्त के सभी नेताओं के अतिरिक्त सरदार पटेल ने भी उस प्रस्ताव के खिलाफ व्याख्यान किया। स्वामी सहजानन्द सरस्वती और पं० प्रजापतिमिश्र (जो युवक सम्मेलन के सभापति चुने गये थे) ने उन नेताओं का साथ देकर एक अजीब परिस्थिति पैदा कर दी। उस समय व्याख्यानमंच की शोभा देखने ही लायक थी। एक तरफ से बड़े-बड़े नेता आते और अपनी सारी गम्भीरता के साथ नौजवानों को समझाते, डाँटते, चेतावनी देते। दूसरी तरफ से नौजवान कार्यकर्ता शब्दों में अपने सारे जोशखरोश भर कर जनता पर उड़ेलने की कोशिश करते। कई घंटों तक विवाद चला, अंत में जब वोट लिये गये—नेता हार चुके थे, नौजवानों की जीत हो चुकी थी।

इस जीत ने जयप्रकाश पर क्या असर किया होगा, आप कल्पना कर सकते हैं। जयप्रकाश—जो यहाँ आकर अलग-अलग से दो शक्तियों की इस जोरआजमाई को देख रहे, तौल रहे थे।

किन्तु, जयप्रकाश के निर्णय के लिए इतना ही काफी नहीं है।

मुंगेर से लौटने के बाद वह वर्धा जाते हैं, जहाँ उन दिनों, गांधीजी थे। प्रभावतीजी ने सात साल तक गांधीजी के साथ रहकर अपने लिए 'बापू की बेटी' का जो रुतबा हासिल कर लिया था, उसका तकाजा था कि हिन्दोस्तान में आने के बाद तुरत-से-तुरत जयप्रकाश गांधीजी की सेवा में उपस्थित हों। सिर्फ इस व्यक्तिगत सम्बन्ध के कारण से ही नहीं, अपने को किसी काम में लगाने के पहले वह देश के इस सर्वश्रेष्ठ पुरुष के चरणों में अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करना भी आवश्यक समझते थे। गांधीजी ने जिस वात्सल्य और प्रेम से उनका स्वागत किया, वह आश्चर्य-चकित रह गये। जिसके जीवन का एक एक क्षण अमूल्य है, वह अपने आदमियों की छोटी-छोटी सहूलियतों की निगरानी के लिए भी यों समय निकाल पाता है, यह सचमुच अद्भुत है, अनुपम है।

वर्धा से गांधीजी के ही साथ लाहौर!—जहाँ पं० जवाहरलाल नेहरू के सभापतित्व में कांग्रेस होने जा रही थी।

लाहौर के रावी-तट पर के वे दृश्य ! सब कुछ सपने-से लगते हैं, सपने-से। लाख-लाख नरनारियों के वे झुंड-पर-झुंड ! उनके चेहरों से फूटती हुई बलिभावना की वे चकाचौंध करनेवाली किरणें ! उनके मुँह से निकलनेवाले 'इनक़लाब जिन्दाबाद' के ये गगनभेदी नारे ! सबके हाथ उठे हुए, सब की छातियाँ फूली हुईं। किसी के पैर जमीन पर नहीं—मानों जज़बात की लहरों पर सभी बहे चले जा रहे हैं। धूल-धूल से अभिकण चिटखते दिखते हैं। ओहो, यह नया हिन्दोस्तान है, जवान हिन्दोस्तान है ! इस हिन्दोस्तान से अपने को कौन जवान अलग रख सकता है ? यह उमग संक्रमक है, लग के रहेगी !

और, ३१ दिसम्बर की वह आधी रात—जब जवाहरलाल ने भारत की पूर्ण स्वतन्त्रता की घोषणा की और उस घोषणा के साथ ही आज़ाद हिन्दोस्तान की राष्ट्रीय पताका की तरह तिरंगा नीले आसमान में लहरा उठा ! लाख-लाख कंठ एक बार चिल्ला उठे—स्वतन्त्र भारत की जय : इन्क़लाब जिन्दाबाद ! फिर इस चिल्लाहट के बीच ही जवानों ने बढ़ कर जवाहरलाल को कंधों पर ले लिया और तब से भोर तक उस रावी-तट पर उत्साह, उमंग, जोशखरोश के जो दृश्य देखे गये, क्या उनका वर्णन भी सम्भव है ? देश की जवानी और जवानी के भीतर छिपी हुई क़ुर्बानी के उन नज़ारों को जिसने नहीं देखा, उसने भारत के इतिहास के एक जगमगाते पन्ने को नहीं देखा।

और, इन दृश्यों के देख लेने के बाद क्या जयप्रकाश के लिए कुछ निर्णय कर लेने में कठनाई हो सकती थी ?

वह अमेरिका से सोच कर चले थे, पहले वह हिन्दू-युनिवर्सिटी में समाज-शास्त्र का विभाग खोलने की चेष्टा करेंगे। समाज-शास्त्र की पढ़ाई सिर्फ दो ही देशों में होती है—अमेरिका और रूस में। क्यों न हिन्दोस्तान में भी उसका अध्ययन अध्यापन प्रारम्भ हो ? हिन्दू युनिवर्सिटी ही ऐसी संस्था है, जो इसे कर सकती है। जब महात्माजी ने उनसे पूछा था—अब हिन्दोस्तान में क्या करना चाहते हो, तो उन्होंने उनसे यही कहा था। जयप्रकाश के पास उस विभाग के लिए एक योजना भी तैयार थी जिसके अनुसार पचास हजार के प्रारम्भिक खर्च के बाद यह विभाग स्वावलम्बी हो जाता।

गांधीजी ने वचन दिया था कि मालवीयजी से कहकर यह प्रबंध करा देंगे। किन्तु यहाँ आने पर अब वह कुछ दूसरी ही दिशा में सोचने लगे हैं। जब देश क्रान्ति के लिए यों अँगड़ाइयाँ ले रहा है—तब क्या वह युनिवर्सिटी की कुर्सियों को तोड़ते और पुस्तकों को चाटते, चटवाते रहेंगे? गांधीजी ने उनकी भेंट जवाहरलाल से करा दी है। पहली भेंट में ही वह जवाहरलाल की ओर खिंचे हैं और जवाहरलाल उनकी ओर। बातचीत समाप्त होते-होते जब जवाहरलालजी कहते हैं—छोड़ो युनिवर्सिटी का यह चक्कर; ए० आई० सी० सी० के दफ्तर में चले चलो और उसके मजदूर खोज-विभाग का भार सम्हालो; तो वह नाहीं नहीं कह पाते हैं।

यह इलाहाबाद, यह स्वराज्य भवन। और, यह कांग्रेस का मजदूर-खोज-विभाग। पहले इसके इन्चार्ज थे मिर्जा बकर अली। मिर्जा साहब की योग्यता का क्या कहना? किन्तु वह किसी विभाग का प्रारम्भिक संगठन और संचालन करने की वैसी क्षमता नहीं रखते थे। फलतः जयप्रकाश को शुरू से ही सब बातों का श्रीगणेश करना पड़ता है। वह नियमित रूप से अपने दफ्तर जाते हैं और डट कर परिश्रम करते हैं। कागज-पत्र सम्भाले जा रहे हैं, पुस्तकों और पत्रपत्रिकाओं का सिलसिला दुरुस्त किया जाता है; सूचियाँ बन रही हैं, तालिकायें बन रही हैं, प्रश्नावलियाँ बन रही हैं। उनके काम से जवाहरलालजी अत्यन्त प्रसन्न हैं। जवाहरलालजी से घनिष्ठता बढ़ती जाती है, और धीरे-धीरे यह घनिष्ठता भाईचारे में बदल जाती है। स्वराज्य-भवन से आनन्द भवन में प्रवेश होता है। अब जवाहरलालजी उनके 'भाई' हैं, कमलाजी उनकी 'भाभी'। प्रभावती जी भी आ गई हैं, उनके आने से पारिवारिक जीवन का आनन्द जिन्दगी में पहली बार जयप्रकाश अनुभव करने लगे हैं। प्रभावतीजी के कारण आनन्द-भवन के भाईचारे में और भी वृद्धि होती है।

थोड़े दिनों में ही स्वराज्य भवन में जयप्रकाश की योग्यता की धाक जम जाती है। जवाहरलालजी को तो जैसे दाहिना हाथ मिल गया। वह जयप्रकाश के काम से इतना सन्तुष्ट हैं कि जब कांग्रेस के स्थायी मन्त्री श्री-राजाराव की जगह खाली होती है, जयप्रकाश की नियुक्ति उस पद पर कर

देते हैं। इतने दिनों तक विदेश में रहने के बाद देश में आने के छः महीने के अन्दर ही कांग्रेस का स्थायी मंत्री बना दिया जाना जयप्रकाश ऐसे असाधारण प्रतिभाशील युवक के लिए ही सम्भव था।

२. तीस का तूफ़ान, बत्तीस की आँधी

स्वराज्य भवन में आते ही जयप्रकाश उस ऊमस का अनुभव करने लगे, जो आसन्न भविष्य में आँधी आने की सूचना दे रही थी। २६ जनवरी को देश भर में पहली बार स्वतन्त्रता दिवस मनाया गया, पूरी आजादी की प्रतिज्ञा ली गई। इस दिवस के मनाने से देश में एक अजीब उत्साह का संचार हुआ। २६ जनवरी, रविवार, १९३० में पढ़ा गया वह प्रतिज्ञापत्र आज भी भारतीयों के जन्मसिद्ध अधिकारों की माँग का एक पवित्र दस्तावेज़ है। आज जिसे हम 'भारत छोड़ो' कहते हैं, वह बीज-रूप में उसी दिन कहा जा चुका था। अँगरेजों को अपनी राजनीतिक, आर्थिक और नैतिक अवनति के लिए जिम्मेवार ठहराते हुए हमने उसी दिन उनसे कह दिया था—हम तुम्हारे अन्दर अब रह नहीं सकते, हम पूरी आजादी लेकर ही दम लेंगे; तुम्हें भारत छोड़ना ही पड़ेगा!

भारतीय जनता द्वारा प्रदर्शित २६ जनवरी के उत्साह ने नेताओं में भी उत्साह भर दिया। अब सोचा जाने लगा, आगे किस कदर कदम बढ़ाया जाय? गाँधीजी ने सत्याग्रह का सुझाव रखा, जिसे लोगों ने पूरे जोशोखरोश से स्वीकार किया, किन्तु, सत्याग्रह के लिए नमक को जो उन्होंने प्रमुख साधन बनाया, पहले लोगों को समझ में यह बात नहीं आ पाती थी। नमक धनी गरीब सब के भोजन का एक आवश्यक उपादान है, यह माना। उसपर कोई टैक्स नहीं लगना चाहिये, यह भी ठीक। किन्तु इसके विरोध में गाँव गाँव नमक बना कर या समुद्र किनारे के नमक को उठा कर उस कानून के तोड़ने से हम स्वराज्य के निकट पहुँच जायँगे—यह कल्पना करना सबके लिए आसान भी नहीं था! किन्तु, गाँधीजी की जादूगरी पर तो लोगों का विश्वास था ही। अतः चारों तरफ नमक-सत्याग्रह की चर्चायें और तैयारियाँ होने लगीं।

गांधीजी सत्याग्रह आश्रम, साबरमती से १२ मार्च को डांडी नामक स्थान को प्रस्थान करनेवाले थे, जहां वह नमक सत्याग्रह करते। ६ अप्रील, राष्ट्रीय सप्ताह के प्रारम्भ से यह सत्याग्रह शुरू होनेवाला था। गांधीजी की इस डांडी-यात्रा ने ही देश में एक अपूर्व उत्साह पैदा कर दिया। फिर १९२१ की क्रान्तिकारी परिस्थिति के लक्षण दिखाई पड़ने लगे। एक महीने के अन्दर फिर समूचा हिन्दोस्तान आग का एक धधकता हुआ गोला था। जो चीज नमक सत्याग्रह ऐसे तुच्छ उपादान को लेकर शुरू हुई, वह थोड़े दिनों के अन्दर ही गांव गांव, नगर-नगर, गली-गली में अँगरेजी राज्य को चुनौती देने लगी। गोलियाँ चलने लगीं, लाठियाँ बरसने लगीं, जेल आबाद होने लगे, जब्तियों और कुर्कियों की भरमार हुई। किन्तु, इन दमनों के दबाव से क्रान्तिकारी चेतना और उभड़ती ही गई। कानून तोड़े जा रहे हैं, जलूस निकल रहे हैं, पिकेटिंग हो रही है, घर-बन्दियाँ शुरू हो गईं। हाकिम परीशान, अमले परीशान, पुलिस परीशान। कांग्रेस गैर कानूनी संस्था करार दी गई, फिर भी उसके जल्से हो रहे हैं, दफ्तर चल रहे हैं, पर्चे निकल रहे हैं, डाक आ-जा रही है। जवानों की क्या बात,—बूढ़ों ने, बच्चों ने, स्त्रियों ने उस साहस का प्रदर्शन किया कि अँगरेजी सरकार का पाया डोल गया।

अँगरेजी राज्य के इतिहास में पहली बार सरकार को झुकना पड़ा। लौर्ड इरविन ने गांधीजी को आमन्त्रित कर उनसे समझौता किया। राजबन्दी छूटे, कांग्रेस पर से प्रतिबंध हटा कराँची-कांग्रेस हुई, गांधीजी गोलमेज सम्मेलन में शामिल होने को विलायत रवाना हुए।

स्वराज्य-भवन से जयप्रकाश भारतीय राजनीतिक गगन पर बादल का यह उमड़ना-घुमड़ना देखते रहे। उनके हृदय में भी कुछ ऐसे ही बादल उमड़ घुमड़ रहे थे। किन्तु, अरे, यह क्या हुआ? जिस मातृ-स्नेह ने उन्हें पी एच० डी० की उपाधि लेने से वंचित किया, वही उन्हें इस विशाल क्रान्तियज्ञ में सम्मिलित होने के सौभाग्य से भी वंचित रखना चाह रहा है। खबर की गई, माताजी की तबीयत बहुत खराब हो चली है, अबकी बार वह, यथार्थतः, मृत्यु-शय्या पर हैं; शीघ्र आओ। जयप्रकाश स्वराज्य भवन छोड़

कर घर की ओर दौड़े और वहाँ पाया, सचमुच वह जीवन-यात्रा की आखिरी मंजिल पर जा पहुँची हैं। जब से जयप्रकाश अमेरिका गये, तभी से फूलरानी बीमार रहने लगी थीं। जयप्रकाश सोचने लगे, मेरे ही चलते यह बीमारी उनके पीछे पड़ी है—उनकी इस असामयिक मृत्यु का मैं ही कारण बनने जा रहा हूँ। इस अन्तर्व्यथा से अभिभूत अन्तिम समय में जितना भी सम्भव था, उन्होंने माता की सेवा शुश्रूषा की। किन्तु फूलरानी अब इस शुश्रूषा से परे हो चुकी थीं। उन्हें सबसे बड़ा सन्तोष यही था कि मेरा 'बउल' मेरे इस अन्तिम काल में मेरी इस मृत्यु-शैया के निकट है, मेरी आँखों के सामने है। और, अपने 'बउल' की तस्वीर ही अपनी आँखों में रख कर एक दिन उन्होंने सदा के लिए उन आँखों को बन्द कर लिया।

साधक जयप्रकाश, वैज्ञानिक जयप्रकाश, समाज शास्त्री जयप्रकाश आज बच्चों सा रो रहा है। उसका गला रुँध रहा है, उसकी आँखें सूज रही हैं और वह रोये जा रहा है। कौन उसे समझाये, क्या कह कर समझाये! आँसुओं के प्रवाह में जैसे सारे ज्ञान-ध्यान बह गये, दह गये। आज वह सिर्फ मानव जयप्रकाश है। मानव जयप्रकाश, मातृ वंचित पुत्र जयप्रकाश! इस विह्वलता में भी वह महान है, अश्रुअभिसिक्त इस करुणामूर्त्ति को देख कर किसकी आँखें न गीली पड़ जायँगी, किसका सिर न अवनत हो रहेगा!

और, मातृ-वियोग की यह असह्य व्यथा कम भी नहीं होने पाई थी कि पिता को लकवा मार गया। अब क्या किया जाय? पिताजी ही घर के सचालक थे, भरण-पोषण-कर्त्ता थे। नहर-विभाग से जो कमाते, उसीसे घर का सारा काम काज चलता। यों तो जयप्रकाश ने स्वावलम्बन की पद्धति से ही अमेरिका में शिक्षा प्राप्त की थी, किन्तु जाने के समय, बीच में बीमारी के समय और आने के समय जो रुपये उन्हें दिये गये या भेजे गये, वे सबके सब कर्ज हो से आये थे। कर्ज की यह रकम सूद के पंख पर ऊपर उड़ती जाती थी और मालूम होता था परिवार के आर्थिक जीवन के आकाश को यह बिलकुल आच्छन्न कर लेगी। पिताजी की बीमारी के खर्च, परिवार के सचालन और कर्ज के इस बोझ को उतारने के लिए क्या किया जाय—समझ में नहीं आ रहा था। इस अवसर पर जयप्रकाश ने महात्माजी के पास एक

बात मेज पर अपनी सारी परिस्थिति उनके सामने रखी। गांधीजी ने उन्हें पिताजी की सेवा-शुश्रूषा और घर के प्रबंध की ओर ही सर्वप्रथम ध्यान देने का आदेश दिया—यही नहीं, उन्होंने श्री बिड़लाजी को लिखा कि जयप्रकाश को यह कोई काम दें। उनके पिलानी-कालेज में यदि जयप्रकाश को जगह मिल जाय तो और भी अच्छा। किन्तु, सरकार यह कैसे गवारा कर सकती थी कि जयप्रकाश ऐसे आग के शोले को वह किसी शिक्षण-संस्था में घुसने का अवसर दे। फलतः बिड़लाजी के आग्रहपर यह उनके सेक्रेटरी का काम करने लगे।

यहीं जयप्रकाश ने भारतीय पूँजीवाद के रूप की झाँकी नजदीक से देखी। भारतीय पूँजीवाद—जो एक ओर राष्ट्रीयता के नाम पर अपनी थैली खोलता है, दूसरी ओर उद्योग-धंधे के विकास के नाम पर बड़े-बड़े कारखाने खोल देश के पैसे-पैसे को चूसने के लिए मुँह बाये रहता है; जो एक ओर छोटी-छोटी घरेलू उद्योग के प्रोत्साहन नाम पर खुद चर्खा चलाता है, दूसरी ओर अपनी मशीनों की चक्की में मजदूरों को बेरनाह पीसता है; जो अहिंसा का पुजारी है, हिंसा का नाम सुनते ही काँप उठता है, किन्तु लड़ाई के जमाने में बड़े-बड़े ठेके लेकर भीषण नर-संहार में हँसते-हँसते हाथ बँटाता है। जो हमेशा दो घोड़ों पर सवार है—दो नावों पर सवार है। जिसका एक पैर साबरमती या सेवाग्राम में रहता है, तो दूसरा पैर बाइसरीगल लौज या ह्वाइट हाउस में। जो दो-दो मालिकों को एक साथ प्रसन्न रखना चाहता है; जो त्याग और भोग का एक ऐसा चोंचों का मुरब्बा बनाता है कि देखनेवाले दंग रह जायँ। जिसकी दो पोशाकें हैं, जिसकी दो भाषायें हैं और जो यथार्थतः दो-जीभा है—काला साँप!

सिर्फ दो महीने जयप्रकाश ये अजीब दृश्य देख सके थे कि गांधी-इरविन पैक्ट हुआ और, जैसा लिखा जा चुका है, फिर कांग्रेस कानूनी संस्था बनी, नेता जेलों से छूटे। जवाहर की बुलाहट पहुँची—फौरन आ जाओ। बिड़ला साहब ऐसे योग्य व्यक्ति को अपने पास पाकर बड़ा प्रसन्न थे, वह उन्हें छोड़ने को तैयार नहीं थे। काश, वह उस समय जान पाते कि जो एक आकस्मिक संकट में पड़कर अचानक उनके यहाँ आ जाने को बाध्य हुआ था, वही एक दिन उस पूरी पद्धति का ही बड़ा शत्रु सिद्ध होगा, जिसका वह प्रतीक

थो। जवाहरलालजी उस बैठक में शामिल होने को स्वर्गीय श्री सैयद अहमद शेरवानी के साथ बम्बई आ रहे थे। उन्हें ऐसी अफवाह सुनाई पड़ी थी कि शायद उनकी गिरफ्तारी का वारंट कट चुका है। इसलिए अपने साथ उन्होंने जयप्रकाश को भी ले लिया था। सारे कागज-पत्र उन्होंने जयप्रकाश ही के साथ रख छोड़ा था, जो उसी ट्रेन से दूसरे डब्बे में थे। नैनी पहुँचते ही जवाहरलालजी और शेरवानी साहब गिरफ्तार कर लिये गये और जयप्रकाश इन कागज-पत्रों के साथ बम्बई पहुँचे।

विलिंग्डन ने कांग्रेस को कुचलने की सारी तैयारियाँ कर रखी थीं। एक दर्जन आर्डिनेंस तैयार थे और किसी भी समय उनका वार कांग्रेस पर कर दिया जा सकता था। गांधीजी ने उनसे मुलाकात करने की दरख्वास्त की, किन्तु बड़े लाट साहब का दिमाग तो सातवें आसमान पर था। इधर कांग्रेस ने सत्याग्रह के स्थगित करने का पुराना प्रस्ताव उठाने का निर्णय किया, उधर आर्डिनेन्सों का हमला शुरू कर दिया गया। फिर कांग्रेस गैरकानूनी संस्था करार दी गई और एक सप्ताह के अन्दर ही देश भर के सभी प्रमुख नेताओं कोपकड़ कर जेलों में रख दिया गया एवं कांग्रेस-आफिसों को पुलिस के आरजी मुकामों में परिणत कर दिया गया! सर सैम्युएल होर भारतमंत्री थे, उन्होंने पार्लियामेंट में बड़े नाज नखरे से कहा—कांग्रेस तो मर चुकी; अब कारवान चलता जायगा, कुत्ते भूँकते रहें!

कांग्रेस मर चुकी!—हाँ, सचमुच कांग्रेस मर चुकी होती, यदि उसका मतलब सिर्फ कुछ नेताओं से होता। किन्तु कांग्रेस सिर्फ कुछ नेताओं का नाम नहीं है। वह तो भारतीय जनता की स्वतंत्रता की उस उत्कट आकांक्षा का नाम है, जिसे कुचला नहीं जा सकता, नष्ट नहीं किया जा सकता। और, भारतीय जनता के सौभाग्य से उस समय भी कुछ ऐसे नये कार्यकर्ता देश के कोने-कोने में फैले हुए थे, जो अपने नेताओं के अभाव में भी आजादी की इस लड़ाई को जारी रख सकते थे। इन नये कार्यकर्ताओं को संगठित करना, कार्यशील बनना और फिर अगल-बगल के हमलों से अँगरेजी शेर की अँतड़ियाँ उघेड़ देना—यही काम था और यह काम कौन अंजाम देता है,

यही देशमाता की माँग थी, पुकार थी। हम जयप्रकाश को, यहीं, पहली बार, आगे बढ़ते देखते हैं।

साधक जयप्रकाश, वैज्ञानिक जयप्रकाश, समाजशास्त्री जयप्रकाश अब हमारे सामने कार्यशील क्रान्तिकारी के रूप में प्रगट होता है।

३. कांग्रेस-ब्रेन एरेस्टेड !

यह है बम्बई शहर! और, यह है गेटवे ऑफ इण्डिया। और, यह है उसके सामने ताजमहल होटल—शानदार बम्बई का शानदार होटल! सामने समुद्र लहरा रहा; इस होटल के अन्दर न जाने कितनों की जिन्दगी और जवानी लहरा रही।

बूढ़ी होने पर भी जो भारत की जिन्दगी और जवानी का प्रतिनिधित्व करती हैं, वह भारत-कोकिला श्रीमती सरोजनी नायडू इसी होटल में ठहरी हुई हैं। नेताओं की गिरफ्तारियों के बाद वही कांग्रेस की स्थानापन्न अध्यक्षा हैं।

उनके नजदीक एक अच्छी खासी भीड़ है तरह-तरह के लोग हैं वहाँ। टोपी, टोप; सूट, अचकन—सब का यहाँ सम्मेलन है। उसी समय वहाँ एक नौजवान पहुँचता है पूरी पारसी पोशाक में। वह ऊँची टोपी, वह पारसी कोट, वह ढोला पतलून! "ओहो, तुम...? और, यह हैं मेरे नौजवान पारसी दोस्त..." भारत-कोकिला इन शब्दों में उसका परिचय कराती हैं। वह नौजवान हँसता हुआ अभिवादन करके बैठ जाता है और तब तक बैठा रहता है, जब तक कि यह पूरी भीड़ छँट नहीं जाती।

पहचाना आपने? यह आपके जयप्रकाश हैं। जवाहरलालजी ने जो कागज-पत्र दिये थे, उन्हें सुरक्षित स्थान पर पहुँचा कर वह बम्बई से सीधे इलाहाबाद गये। वहाँ थोड़े ही दिन रह पाये कि उनकी पत्नी श्रीमती प्रभावती देवी श्री कमलानेहरू के साथ गिरफ्तार हो गईं। जयप्रकाश तब बम्बई लौटे और यहाँ आकर अब अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी का पुनर्संगठन कर,बड़े लाट साहब और भारतमंत्री दोनों को जवाब देने पर तुले हुए हैं। बम्बई में कांग्रेस का गुप्त आफिस खुल चुका है,• जिसके प्रधान मंत्री जयप्रकाश और लालजी मेहरोत्रा हैं, जो पीछे चल कर करांची के मेयर चुने गये।

श्री जाल मोरोभी, श्री अच्युत, श्री दीक्षित, श्री जौहरी का पूरा सहयोग भी इन्हें प्राप्त है।

बम्बई का यह अखिल भारतीय कांग्रेस आफिस सब प्रान्तों के लिए सरक्युलर पर सरक्युलर जारी कर रहा है, आन्दोलन के लिए नये-नये कार्यक्रम तैयार कर रहा है, एक नेता की गिरफ्तारी पर दूसरे नेता को कांग्रेस का अध्यक्ष मुकर्रर कर रहा है। सारी बातें अब सिलसिले से हो रही हैं। फिर भारत के कोने-कोने में कांग्रेस के आफिस चल रहे हैं, डाक आने-जाने का प्रबंध हो गया है, पिकेटिंग का बाजार गर्म हो उठा है, गिरफ्तारियों का क्रम बँध चुका है। मालूम पड़ता है, जैसे जमीन फोड़ कर आदमी निकल आते हैं—ये कमबख्त कहाँ से आ जाते हैं, कौन इनका संचालन करता है, यह जानने का पुलिस परीशान है, खुफिये परीशान हैं। बम्बई के डाकिया को पकड़ लेना सहज काम नहीं। वे तरह-तरह के वेश में बम्बई के भिन्नभिन्न स्टेशनों से रवाना होते हैं। कोई सूती कपड़े का एजेंट है, कोई रेशमी का, कोई ऊनी का; कोई रंग का, कोई मोटरों का, कोई बीमा-कम्पनियों का, सब के पास उनके फर्मों को रसीदें हैं, लेटर पेपर हैं, एजेंसी की नियमावली हैं और हैं सामानों के नमूने भी। बड़े-बड़े ट्रंकों में ये सामान भरे हैं, खोल के देख लीजिये, ढूँढ़ लीजिये। किन्तु, आप कुछ पा सकेंगे कैसे ? आपको क्या मालूम कि इन ट्रंकों की दो तहें हैं—ऊपरी तह में ये सारी चीजें और निचली तह में सरकुलर, चिट्ठियाँ, हिदायतें और नोटों के पुलिन्दे। ये सब चीजें ठीक आदमी को, ठीक वक्त पर मिलती हैं या नहीं; और, फिर इन सामानों और रुपयों का उपयोग अच्छी तरह होता है या नहीं, यह देखने को जयप्रकाश हिन्दोस्तान में सफर करते हैं। एक बार नहीं, दो बार नहीं, तीन-तीन बार। इस सफर में वे उन अगनित नौजवानों और कार्यकर्त्ताओं से मिलते हैं, जो अपनी जान हथेली पर रख कर, इतने बड़े साम्राज्य को पद-पद पर चुनौती दे रहे थे। जयप्रकाश उन्हें देखते हैं, उनकी आँखों को देखते हैं और उनकी आँखों के द्वारा ही उनके बलिपंथी हृदय को देखते हैं। उफ, जहाँ ऐसे नौजवान हैं, उस देश को कोई क्या खाकर कितने दिनों तक गुलाम रख सकता है ? जरूरत है, सिर्फ इनके हृदय की इस आग को हमेशा जलाये रखने की।

एक ओर जयप्रकाश ने देश के नौनिहालों का यह जोश देखा; दूसरी ओर भारतीय पूँजीवादियों की कायरता और देशद्रोहिता देखी। एक ओर पिकेटिंग के चलते स्वयंसेवकों को पुलिस के नाना तरह के अत्याचार सहने पड़ रहे थे, दूसरी ओर ये चुपके-चुपके विदेशी माल मँगा और उन्हें बेशर्मी से बेच रहे थे। बेशर्मी की हद तो तब हो गई, जब इन भारतीय पूँजीवादियों ने लंकाशायर के कपड़ेवालों से खुला समझौता कर लिया! जब देश जीवन-मरण के युद्ध में *लगा था, इन्होंने पीछे से आकर छुरा भोंक दिया!* सबसे तमाशा तो यह था कि कलतक ये लोग इस आन्दोलन के संचालन में पानी की तरह पैसे बहाते थे, किन्तु, ज्योंही विलिंग्डन की सरकार ने कड़ा रुख लिया, ये सिर्फ बगलें ही नहीं झाँकने लगे, भाग भी खड़े हुए। अब अगर कोई इनके नजदीक पैसे के लिए पहुँचता, ये सिर्फ इन्कार ही नहीं करते, उसे दुत्कार और फटकार भी बताते।

नौजवानों की इस बलि-भावना और पूँजीवादियों की इस देशद्रोहिता ने ही जयप्रकाश को कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के संस्थापन और संगठन की ओर, आगे चलकर, प्रेरित किया—किन्तु, अभी यह कहानी बिल्कुल कब्ल-अज-वक्त है।

तो, हाँ, पूँजीवादियों के इस रुख के बावजूद कांग्रेस जिन्दा रही, उसका आन्दोलन चलता रहा—शान के साथ चलता रहा। सरकार हैरत में थी; किन्तु उसकी हैरत की हद तो तब हो गई, जब उसने यह पाया कि खास राजधानी में, जहाँ विलिंग्डन साहब कांग्रेस को मार देने और निश्चिन्त सोने के सपने देख रहे थे, वहाँ, उनकी नाक के सामने ही, कांग्रेस का बाजाप्ता अधिवेशन होकर रहा। देश के कोने-कोने से डेलिगेट आये और दिल्ली के सबसे प्रमुख बाजार चाँदनी चौक में खुला अधिवेशन किया। एक भोर को, जब लोगों की नींद भी अच्छी तरह नहीं टूटी थी, अचानक यह चौक 'गाँधीजी की जय' और 'इन्कलाब जिन्दाबाद' के नारे से गनगना उठा। फिर चारों ओर से तिरंगे झंडे लहराते हुए लोग चौक पर इकट्ठे होते हुए दीख पड़े। एक टेबुल पर चढ़कर सभापति भाषण देने लगे, लोग तालियाँ पीटने लगे। फिर प्रस्ताव पेश और पास हुए। खिसियानी बिल्ली खम्भा नोचे की कहावत के अनुसार

दिल्ली की पुलिस ने गुस्से से उनकी ओर देखा और उन निहत्थे, अहिंसक प्रतिनिधियों पर लाठियों की वर्षा करके और जेलों में उन्हें तरह-तरह से कष्ट देकर अपनी नष्ट प्रतिष्ठा की क्षति-पूर्ति करनी चाही—किन्तु, कहीं खोई हुई इज्जत वापस लाई जा सकती है ! कांग्रेस की इस शानदार विजय ने सिद्ध कर दिया—दुनिया की कोई ताकत जनता की उमड़ी हुई भावना को दबा नहीं सकती।

इसके कुछ दिनों बाद ही जयप्रकाश और उनके साथियों ने बनारस में कांग्रेस वर्किंग कमिटी की गुप्त बैठक कराई। बाबू शिवप्रसाद गुप्त उन दिनों सख्त बीमार थे। वह जानते थे, अपने घर में इस बैठक के लिए जगह देने का क्या अर्थ है। किन्तु, वह महान दानी ही नहीं, महान योद्धा भी थे। उन्हीं के घर 'सेवा-उपवन' में यह बैठक हुई। डाक्टर किचलू कांग्रेस के अध्यक्ष थे। अध्यक्ष एवं देश के कोने-कोने से सदस्य पहुँचे। सर्वश्री राजेन्द्र प्रसाद, चक्रवर्ती राजगोपालाचारी, किरणशंकर राय, अणे, महामना मालवीयजी आदि देश के प्रमुख नेता उसमें सम्मिलित हुए। पीछे इस बैठक की खबर मिलने पर श्री शिवप्रसादजी गुप्त को गिरफ्तार किया गया और जेल में जो उन्हें कष्ट हुए, उनके चलते उनकी मृत्यु और समीप आ गई। स्वर्गीय गुप्तजी की सेवाओं को देश कभी भूल नहीं सकता।

उस समय भारत की परिस्थिति का पर्यवेक्षण करने और खास कर सरकार द्वारा किये गये दमन की जाँच करने के लिए इंगलैंड की 'इण्डिया लीग' की तरफ से एक डेलिगेशन आ रहा था, जिसके सदस्यों में मिस विल्किन्सन भी थीं, जो आज विलायत की मजदूर-सरकार की शिक्षा-सचिव हैं। वर्किंग कमिटी की इस बैठक ने तय किया कि जयप्रकाश उस डेलिगेशन के साथ देश भर में घूमें और उन्हें उपयुक्त व्यक्तियों से भेंट करायें एवं दमन के स्थानों पर ले जाकर अत्याचारों के दृश्य दिखलायें। इधर पुलिस को यह पता चल गया था कि कांग्रेस की इन सारी कार्रवाइयों में मुख्य हाथ जयप्रकाश का है, अतः, भिन्न-भिन्न प्रान्तों की सरकारों ने उनके नाम से वारंट जारी कर रखा था, किन्तु, वे जयप्रकाश को पकड़ नहीं पाती थीं। अब, जयप्रकाश ज्यों ही खुलेआम घूमने लगेंगे, तो क्या उन्हें तुरत ही गिरफ्तार नहीं कर

लिया जायगा ? यह सवाल स्वभावतः उठता था, किन्तु महामना मालवीयजी का कहना था कि उस डेलिगेशन के साथ रहते समय जयप्रकाश को गिरफ्तार करने की धृष्टता पुलिस कर नहीं सकेगी। फलतः जयप्रकाश को उपर्युक्त आदेश दिया गया और जयप्रकाश जरा भी चूँचरा किये बगैर डेलिगेशन का साथ देने को तैयार हो गये।

पूना से जयप्रकाश डेलिगेशन के साथ हो लिये। उनके साथ कांग्रेस का एक प्रतिनिधि है, जो उन्हें सारी बातें बतायगा, सारी जगहों के सारे दृश्य दिखलायगा, इस बात से डेलिगेशन के सदस्यों को बड़ी प्रसन्नता हुई। फिर जयप्रकाश ऐसे सुसंस्कृत प्रतिनिधि! पूना से हँसी-खुशी यह डेलिगेशन मद्रास के लिए रवाना हुआ! मद्रास स्टेशन पर ही जयप्रकाश की जागरूक आँखों ने देखा, मामला कुछ बेढब जरूर है। कुछ आँखें उनकी ओर बेतरह घूर रही हैं, कुछ होंठ जबतब फुसफुसा उठते हैं, कुछ उँगलियाँ रह-रह कर उनकी दिशा में उठती हैं। यह क्या है? और, तब उनके कानों ने सुना—'जयप्रकाश नारायण'! किन्तु, उस ओर ज्योंही घूर कर वह देखते हैं, वहाँ कोई नहीं है? क्या यह उनका भ्रम है? कानों का भ्रम या आँखों का भ्रम? उँह, इन झंझटों में कौन पड़े?

जयप्रकाश दो दिनों तक मद्रास में डेलिगेशन के साथ रहे। बीच में उन्होंने श्री राजगोपालाचारी से अपने उपर्युक्त भ्रम के बारे में कहा, किन्तु, उन्होंने आश्वासन दिया—मद्रास में आर्डिनेंस लागू नहीं है, इसलिए यहाँ आपकी गिरफ्तारी हो नहीं सकती; आप निश्चिन्त होकर डेलिगेशन के कामों में खुले-खुले मदद करें—आपकी ओर कोई हाथ बढ़ा नहीं सकता; माना, सरकार बौखलाई हुई है, किन्तु इस तरह जीती मक्खी वह निगल नहीं सकती। खैर, जब तक वह मद्रास में डेलिगेशन के साथ घूमते रहे, कुछ नहीं हुआ। किन्तु ज्योंही तीसरे दिन डेलिगेशन के सदस्यों में से एक टुकड़ी को कर्णाटक की ओर रवाना करने के लिए वह स्टेशन पर पहुँचे और उन्हें रवाना करके अपने डेरे की ओर लौटे कि उनकी मोटर को घेर लिया गया। एक अफसर ने पूछा—"आपका नाम"!

"आपको मेरे नाम से क्या जरूरत?"

"क्योंकि आपपर वारंट है, आपको हम गिरफ्तार करते हैं, आप जयप्रकाश नारायण हैं।"

और, थोड़ी देर के बाद ही जयप्रकाश नारायण पुलिस की हवालात में थे। श्री राजगोपालाचारी इस गिरफ्तारी के खिलाफ हाईकोर्ट में हैबियस कारपस करने की तैयारी में ही लगे थे कि जयप्रकाश को चुपचाप मद्रास से बम्बई भेज दिया गया। इस गिरफ्तारी की खबर पाकर बम्बई के 'फ्री प्रेस जरनल' ने, जो लगभग पौन लाख रुपये जमानत में जब्त कराकर भी कांग्रेस का झंडा बुलन्द लिये हुए था, इस समाचार की सुर्खी दी—"कांग्रेस ब्रेन एरेस्टेड"—कांग्रेस का दिमाग गिरफ्तार हो गया। और, इस सुर्खी में पूरी सत्यता थी, क्या इस बारे में भी कुछ कहना है?

४. जेलों का हृदय-मंथन

'१९३० का सत्याग्रह सफल हुआ; १९३२ का सत्याग्रह धीरे-धीरे असफलता की ओर पैर बढ़ा रहा था। उसके कई कारण थे। एक तो १९३० के गांधी-इरविन-पैक्ट के बाद समूचा देश यह समझ रहा था कि अब तो समझौता हो चुका; अब लड़ाई का मौका शायद ही आये; वहाँ विलिंग्डन की सरकार कांग्रेस को कुचलने की पक्की तैयारी कर रही थी और ज्यों ही जरा-सा मौका मिला, उसने कांग्रेस पर वह अचानक छापा मारा कि सारे संगठन को जैसे लकवा मार गया। पीछे कुछ नौजवानों ने उस लकवे पर नारायणी तेल की मालिश शुरू की, अंग हिलने-डुलने भी लगे; लेकिन तब तक गंगा में काफी पानी निकल चुका था। कांग्रेस का जो संगठन किया जा सका, उससे सरकार को परेशान तो किया जा सकता था; किन्तु उसे लाचार बनाना तो अब मुश्किल ही था।

दूसरे—जो पूँजीपति हमेशा से कांग्रेस को आर्थिक मदद देते आये थे, वे धीरे-धीरे हाथ खींचने लगे। वे डरते थे कि कहीं विलिंग्डन की सरकार उनका ही न खात्मा कर दे। उस जमाने में जब कांग्रेस का एक पदाधिकारी श्री बिड़लाजी से मिलने गया, तो सेठजी ने उससे मिलना भी अस्वीकार कर दिया और कहला भेजा, जैसा जमाना है, कृपा

कर मुझे क्षमा कर दिया जाय। यही नहीं; जबर्दस्त पिकेटिंग होने पर जिन विलायती मालों को व्यापारी मुहरबंद करके रख देते, पिकेटिंग ढीली पड़ते देखते ही, मुहरों को तोड़ कर उनकी खरीद-बिक्री शुरू कर देते।, निर्लज्जता की हद तो तब हो गई जब इसी युद्ध के दरम्यान लंकाशायर के कपड़े के व्यापारियों से भारतीय व्यापारियों ने समझौता कर लिया!

तीसरे—इस सत्याग्रह में सरकार ने दमन के दो नये रूप अख्तियार किये। अब तक वह बड़े लोगों को ऊँचे दर्जे का कैदी बनाकर रखती और उन्हें सब प्रकार की सहूलियतें देती थी। किन्तु इस बार वह सिवा चन्द लोगों के, बाकी लोगों को एक ही क्लास—सी-क्लास-में रखने लगी। सी-क्लास की कठिनाइयों को साल-छः महीने तक निभा ले जाना तो आसान था; किन्तु धीरे-धीरे देखा गया, लम्बी सजा काट कर जो नेता निकले, वे कोई-न-कोई बीमारी लेकर, और सब ने स्वास्थ्य पर ही ध्यान देना पसंद किया। यों जेलों में जानेवाले नेताओं का प्रवाह एकाएक रुक-सा गया, और नेताओं का असर कार्यकर्त्ताओं पर पड़ना ही था। फिर इस बार बड़े-बड़े जुर्माने भी किये गये और उनकी वसूली में बड़ी सख्ती से काम लिया गया। छोटी-छोटी रकमों में बड़ी-बड़ी जब्तियाँ हुईं। देखा यह गया कि जहाँ तक शारीरिक कष्ट की बात है, बर्दाश्त करना कुछ आसान होता है; किन्तु आर्थिक हानियों से लोग घबरा उठते हैं। यह स्वाभाविक भी है—क्योंकि आर्थिक हानियों का असर सारे परिवार पर पड़ता है। आप कष्ट सह लीजिये; घरवालों को कष्ट में रखने का आपको क्या हक है?—यह प्रवृत्ति ऊपर आने लगी; फलतः ऊँचे तबके के कांग्रेसजनों में बुजदिली और पस्तहिम्मती का दौरदौरा होता गया।

. जिस समय सत्याग्रह चल रहा था; उसी समय अछूतों को अलग प्रतिनिधित्व देने की घोषणा अँगरेजी सरकार की तरफ से की गई, जिसके विरोध में महात्माजी ने आमरण अनशन की घोषणा की। महात्माजी जेल से रिहा हुए, देश ने उनके प्राण की भिक्षा प्राप्त कर ली; किन्तु, इस घटना ने सत्याग्रह के प्राण तो ले ही लिये! अबक्यारे देश में अछूत-समस्या की धूम थी; सत्याग्रह बिल्कुल पीछे पड़ गया। जो लोग सत्याग्रह से ऊबे हुए थे,

उन्होंने अपने को अछूतों की सेवा में उत्सर्ग करना शुरू कर दिया। सत्याग्रह का मोर्चा दिन-दिन कमजोर होता गया।

इसी समय कुछ नेताओं ने यह आवाज बुलन्द की—हमें अब असेम्बलियों और कौंसिलों में जाना चाहिये; हम अब अँगरेजी सिंह को उसकी माँद में ही पछाड़ेंगे। लम्बी बातें—किन्तु मानी साफ यह कि सत्याग्रह छोड़ो, कुर्सियों को गरमाओ। यह आवाज दिन-दिन जोर पकड़ती गई और यह स्पष्ट हो गया कि यह सत्याग्रह की मौत की घंटी है।

धीरे-धीरे, मुमूर्षु रोगी की तरह, सत्याग्रह का इस तरह दम तोड़ते देखना—बड़ा ही करुण दृश्य था। पहले जन-सत्याग्रह को हटा कर व्यक्तिगत सत्याग्रह पर आया गया; फिर उसे भी धीरे से दफना दिया गया।

जब बाहर करुण दृश्य का यह बाजार लगा था—जेलों में एक अजीब तरह का हृदय-मंथन चल रहा था। १९२१, १९३०, और यह १९३२।—क्या हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन का यही हश्र होना है? साल-छः महीने का हंगामा, उथल-पुथल, फिर वही थकावट, वही विश्राम, वही बहानेबाजियाँ, वही विधानवादी प्रवृत्ति। यदि यही हालत रही—तो हम आजाद होने से रहे।

तो, दूसरा उपाय क्या है? हृदय-मंथन के बाद आलोचना और विश्लेषण की बारी आई। लोगों ने सारे आन्दोलन को कसौटी पर कसना शुरू किया। निर्दयतापूर्वक आलोचनायें होने लगीं। व्यक्तिगत आलोचनाओं में क्या धरा था। तुम कायर हो, हम वीर हैं—इस तू तू मैंमैं से कुछ होने-जाने वाला तो था नहीं। सारे आन्दोलन के उपादानों और प्रवृत्तियों की छानबीन शुरू हुई। इस छानबीन में अपने आन्दोलन के व्यक्तिगत और सामूहिक तजर्बों को संसार के ऐसे ही आन्दोलनों के तजर्बों के आमने-सामने रख कर देखा गया, परखा गया। ज्यादा माथापची करने की जरूरत नहीं पड़ी। सारी बातें इतनी साफ और नुमायाँ थीं, कि एक सही नतीजे पर पहुँचने में देर नहीं लगी। हाँ, एक ही सही नतीजे पर।—चाहे पटना-कैम्पजेल में हो, चाहे लखनऊ कैम्पजेल में, लाहौर सेन्ट्रल जेल, या नासिक जेल में। अलग-अलग, दूर-दूर रहते हुए भी, लोग एक ही नतीजे पर पहुँचे, एक ही सही नतीजे पर।

अब अपने आन्दोलन को एक नई दिशा देनी पड़ेगी। महात्माजी ने हमारे आन्दोलन को जहाँ तक बढ़ाया है, उससे आगे बढ़ने के लिए हमें खुद पैर उठाने पड़ेंगे। सिर्फ राजनीतिक उद्देश्यों को लेकर जहाँ तक हम बढ़ सकते थे, बढ़ चुके। अब उसमें आर्थिक प्रश्नों को जोड़ना पड़ेगा। जब-तक पूँजीपतियों और बाबुओं का बोलबाला रहेगा; जब्तियों का डर हमारे आन्दोलन को डगमगाता ही रहेगा; लम्बी कड़ी सजायें बीमारियाँ पैदा करती ही रहेंगी, कुर्सियों का मोह असेम्बली और कौंसिल की ओर हमें खींचता ही रहेगा। हम उन वर्गों की ओर बढ़ें, जिनके पास खोने को सिवा जंजीर के कुछ नहीं और पाने को सारा संसार है। इन जेलों में ही देखिये; जो किसान, जो मजदूर आये हैं, किस तरह मगन हैं, किस तरह यहाँ भी लड़ने को व्याकुल और आतुर हैं! इनके घर पर क्या है, जो जब्ती में जायगा; इनके पेट में रोटी क्यों पेचिश पैदा करने लगी? यदि हमें सत्याग्रह से ही स्वराज्य लेना है, तोभी, इन्हीं लोगों को बड़ी-से-बड़ी सेना हमें तैयार करनी पड़ेगी।

किन्तु, इनकी सेना बने तो कैसे? जो लोग एक बित्ता जमीन के लिए अपने भाई का गला काट डालते हैं; उन्हें ही आप सारा देश देने को तैयार हैं, किन्तु वे आपके पास नहीं फटकते। क्यों? आपका 'सारा देश' उनके 'छोटे दिमाग' में समाता ही नहीं है। हमें उनके निकट लम्बे-लम्बे शब्दों को लेकर नहीं जाना है। उनकी रोजमर्रे की जरूरतों को लेकर ही हम-आप उनकी झोपड़ी में घुस सकते हैं।

तो, किसानों और मजदूरों की रोजमर्रे की जरूरतों को लेकर उनका संगठन किया जाय। किसान सभायें बनाई जायँ, मजदूर संघ बनाये जायँ। इन संस्थाओं द्वारा रोजमर्रे की लड़ाई में शामिल कर किसानों को, मजदूरों को सेना के रूप में संघबद्ध किया जाय। फिर उन्हें कांग्रेस में लाकर अँगरेजी साम्राज्यवाद पर ऐसा जबर्दस्त धावा बोला जाय, कि वह सम्हल भी नहीं पावे—पहले ही धावे में उसका खात्मा कर उसकी जगह पर हम स्वराज्य, पूर्ण स्वराज्य की स्थापना करें। पूर्ण स्वराज्य!—यहाँ भी अब साफ हो जाना पड़ेगा हमें। गरीबों के बच्चे आधा स्वराज, पूरा स्वराज नहीं समझते।

हमें साफ कहना है, हमें तुम्हारा राज कायम करना है—किसानों और मजदूरों का राज कायम करना है।

किसानों और मजदूरों का राज—और, हम समाजवाद के निकट पहुँच गये। हाँ, यह समाजवादी विचारधारा है। अब वक्त आ गया है कि हम ऊँची आवाज में, सम्मिलित कंठ से, देश के सामने समाजवादी विचारधारा को रखें। हमें गाँधीवाद से घृणा नहीं, शत्रुता नहीं। हम उसके उपकारों को मानते हैं, हम उसके अनुगृहीत हैं। किन्तु, उसकी सीमाओं को भी हम समझते हैं। उन सीमाओं को हम विस्तृत करना चाहते हैं। नये नाम हमें घबरा नहीं सकते। समाजवाद हौआ नहीं है। कार्लमार्क्स और लेनिन भी मानवता के उतने ही बड़े पुजारी रहे हैं, जितने मनु या गांधी। उनके दर्शनों को भी अपनाने में हम डर नहीं सकते, बशर्ते कि वे हमारे सामने हमारी राह को स्पष्ट कर के रख सकें।

हिन्दोस्तान के अन्दर एक समाजवादी पार्टी बननी चाहिये—इसके लिए यही समय है, यही अवसर है। नासिक जेल की एकान्त कोठरी में बैठे हुए जयप्रकाश मन ही-मन कुछ गुन रहे हैं, कुछ सुन रहे हैं। हाँ, हिन्दोस्तान के कोने कोने के जेलों में साधना की धूनी रमाते हुए नौजवानों के मन में भी जो कुछ इसी तरह की भावनायें तरंगें ले रही हैं, वे आकर जयप्रकाश के मन से टकराती हैं, झनझनाती हैं; जयप्रकाश उन्हें सुनते हैं, गुनते हैं, गुनते हैं, सुनते हैं। और, एक दिन उन भावना-तरंगों को वह जब कागज पर कलमबद्ध कर देते हैं, भारतीय राजनीति के इतिहास में एक नया अध्याय शुरू हो जाता है।

५. हिन्दोस्तान में समाजवाद

हिन्दोस्तान के लिए १९३४ तक समाजवाद बिल्कुल नई चीज नहीं रह गया था। जयप्रकाश के सामने उसका पिछले एक युग का इतिहास भी था, जिसकी छानबीन के बाद ही कोई नई समाजवादी पार्टी कायम की जा सकती थी—यदि उसकी कामयाबी का हौसला रखा जाय।

हिन्दोस्तान में समाजवाद

रूस की क्रान्ति—युगप्रवर्तक महाक्रान्ति—१९१७ में हुई और ससार के पाँचवें हिस्से पर इतिहास में पहली बार मजदूरों और किसानों का राज्य कायम हुआ। समाजवाद एक अन्तर्राष्ट्रीय विचारधारा है; समाजवाद के आधार पर एक देश में न राज्य कायम किया जा सकता है और न समाज बनाया जा सकता है। इसलिए इस राज्य के कायम होते ही उसके प्रवर्तकों ने एक अन्तर्राष्ट्रीय समाजवादी संस्था का संगठन किया, जो वर्ड इन्टरनेशनल या 'कोमिन्टर्न' के नाम से मशहूर हुई। कोमिन्टर्न का ध्यान हिन्दोस्तान की ओर भी गया, यह कहना व्यर्थ है।

१९२१ के असहयोग-आन्दोलन के समय कुछ हिन्दोस्तानी नौजवान रूस की ओर गये, जिनमें श्री शिवनाथ बनर्जी और शौकत उसमानी के नाम मशहूर हैं। कोमिन्टर्न की ओर से इन नौजवानों को समाजवादी विचारधारा में दीक्षित और शिक्षित करने की चेष्टायें हुईं और जब वे भारत लौटे, भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में समाजवादी विचारों का प्रचार एवं मजदूरों का संगठन करने में लग गये। १९२७ में जब मेरठ-षड्यंत्र-केस शुरू हुआ, तो लोगों को पता लग सका कि हिन्दोस्तान में समाजवादी विचारधारा कहाँ तक फैल चुकी है। इस केस को चलाकर जहाँ सरकार ने सोचा था कि वह समाजवाद का उच्छेद कर सकेगी, वहाँ उसने पाया, इसके चलते समाजवाद का और भी व्यापक प्रचार हो रहा है।

किन्तु, जिस समय हिन्दोस्तान में समाजवाद का बीज इस व्यापक रूप में बोया जा रहा था, उसी समय रूस में, कोमिन्टर्न में, आपस के झगड़े मचे हुए थे, जो खूँरेजी का रूप धारण कर रहे थे। लेनिन की मृत्यु के बाद रूस का समाजवाद दो टुकड़ों में बँट गया था, एक का नेता था स्टालिन और दूसरे का ट्रौट्स्की। ट्रौट्स्की लेनिन का साथी था, दाहिना हाथ था; किन्तु, स्टालिन की चालबाजियों से वह पार पा नहीं सका। रूस पर, कोमिन्टर्न पर स्टालिन का अंततः प्रभुत्व हुआ। स्टालिन की इस प्रभुता ने कोमिन्टर्न की रीतिनीति में आमूल परिवर्तन कर दिया। अब कोमिन्टर्न अन्तर्राष्ट्रीय समाजवाद की एक स्वतंत्र संस्था नहीं रह कर रूस की परराष्ट्र-नीति की दुम मात्र बनकर रह गई और अपनी गलत कार्रवाइयों से संसार-भर के समाजवाद को ले

हुमी। यदि स्टालिन नहीं होता, तो हिटलर और मुसोलिनी भी नहीं पैदा होते, यह मजे में कहा जा सकता है।

हिन्दोस्तान में कोमिन्टर्न ने नये खेलवाड़ शुरू किये। उसने मान लिया कि कांग्रेस एक प्रतिक्रियावादी संस्था है, उसके असर को कम करना चाहिए, उसका खात्मा करने की कोशिश करनी चाहिये और उसकी जगह पर एक किसान-मजदूर-पार्टी का संगठन होना चाहिये। कागज पर ही एक किसान-मजदूर-पार्टी बना ली गई और उसकी नींव को मजबूत करने के लिए इंगलैंड से श्री सकलतवाला को हिन्दोस्तान भेजा गया। श्री सकलतवाला पार्लियामेंट के मेम्बर थे, कम्युनिस्ट थे। वह भारत आये और प्रान्त-प्रान्त में दौरे किये। किन्तु, इस दौरे का नतीजा कुछ नहीं हुआ। कागज की न स्कीम चलती है, न नाव। फिर, मजदूरों में फूट डालने की कोशिश हुई। ट्रेड यूनियन कांग्रेस के खिलाफ लाल ट्रेड यूनियन कायम की गई। पूँजीवाद से लड़ने के बदले ये लाल ट्रेड यूनियनवाले अपने भाइयों से लड़ने और उन्हें जलील करने की कोशिशें करने लगे।

बेवकूफी और बदमाशी की हद तो तब हो गई, जबकि १९३०—३२ में भारत की राष्ट्रीयता अँगरेजी साम्राज्यवाद से जिन्दगी और मौत की लड़ाई लड़ रही थी, स्टालिन के ये भारतीय एजेंट, जो अपने को कम्युनिस्ट कहते, भोले-भाले मजदूरों को बहका कर देशभक्त स्वयंसेवकों पर हमले करने, उनके तिरंगे छीनने और उन झंडों को जलाने लगे। प्रायः पुलिस और उनका हमला साथ-साथ होता। यों भारत का कम्युनिज्म अँगरेजी इम्पीरियलिज्म का सगा-सम्बन्धी बन गया।

श्री एम० एन० राय साहब पहले कोमिन्टर्न में पूर्वी देशों के इन्चार्ज के रूप में थे। चीन की क्रान्ति में उनकी अदूरदर्शिता के चलते हानि हो चुकी थी, चीन में समाजवाद बदनाम हो चुका था। स्टालिन के इस झगड़े के कारण उन्हें भी कोमिन्टर्न से हटाया गया। वहाँ से हटाये जाने पर वह चुप-चुप भारत आये और राय ग्रुप के नाम से एक समाजवादी दल कायम करने की कोशिश की। जब वह गिरफ्तार हो चुके, यह दल सिमट कर और भी छोटा हो गया।

किन्तु, समाजवाद के सौभाग्य से हिन्दोस्तान में उसे पं० जवाहरलाल नेहरू ऐसा बागी मिल चुका था। अपनी रूस-यात्रा के बाद तो जवाहरलाल जी ने खुलेआम समाजवाद का प्रचार करना शुरू किया। अपने व्याख्यानों में, लेखों में वह प्रायः ही समाजवाद की चर्चा करते और उससे अपनी सहमति और सहानुभूति प्रकट करते। भारतीय राजनीति में गांधीजी के बाद जवाहरलालजी का स्थान रहा है। अतः जब उन्होंने समाजवाद को अपनाया, तो स्वभावतः ही देश भर में वह चर्चा का विषय बन गया, उसके अध्ययन-मनन की ओर देश के नौजवानों का ध्यान जाने लगा। जब ये नौजवान १९३० और ३२ में सत्याग्रह-आन्दोलन के सिलसिले में जेलों में गए, तो अपने साथ समाजवाद-सम्बन्धी कुछ न-कुछ पुस्तकें भी लेते गये और और जब वे जेलों से बाहर आये, समाजवाद का रंग उनपर पक्का हो चला था।

कांग्रेस के अन्दर ही एक समाजवादी पार्टी का सगठन किया जाय, यानी समाजवाद का गठबधन राष्ट्रीयता के साथ करने पर ही देश का कल्याण और समाजवादी समाज का निर्माण हो सकता है, इस विचार का सर्वप्रथम प्रकटीकरण बिहार में हुआ। १९३० के बाद जेलों से लौटने पर बिहार के कुछ नौजवान कार्यकर्त्ता पटना में एकत्र हुए और उन्होंने बिहार-सोशलिस्ट-पार्टी का जन्म दिया। इस पार्टी में सम्मिलित होने के लिए कांग्रेस का मेम्बर होना आवश्यक था। इस पार्टी का जब घोषणापत्र लिखा जा रहा था, तब जयप्रकाश से पार्टी के सचालकों का सम्पर्क बढ़ा, जो उन दिनों अखिल भारतीय कांग्रेस कमीटी के मजदूर-विभाग के इन्चार्ज थे। पार्टी के घोषणापत्र को अन्तिम रूप देने में जयप्रकाश का बहुत बड़ा हाथ था।

उस समय पंजाब तथा अन्य कई स्थानों में भी सोशलिस्ट पार्टियाँ कायम हुई थीं, जो अपने-अपने तरीके से अपने-अपने दायरे में समाजवाद का काम कर रही थीं।

नासिक जेल में जब जयप्रकाश अपने साथियों को लेकर एक अखिल भारतीय समाजवादी पार्टी कायम करने के लिए कागज-कलम के साथ बैठे, तो स्वभावत ही, यह पृष्ठभूमि उनकी आँखों के सामने आ खड़ी हुई।

सबसे पहले वह उस नतीजे पर पहुँचे, जहाँ उनके बिहार के साथी पहुँच चुके थे और जिस नतीजे पर पहुँचने में उनका भी सहयोग था। आजाद देश की राष्ट्रीयता पूँजीवादी प्रसार का औजार भले ही बन जाय; किन्तु, गुलाम देश की राष्ट्रीयता एक क्रान्तिकारी शक्ति होती है। इस क्रान्तिकारी शक्ति से दूर रह कर समाजवाद एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकता। हमारी कांग्रेस इसी क्रान्तिकारी शक्ति का संगठित रूप है, इसलिए *यह क्रान्तिकारी संस्था है और इस क्रान्तिकारी संस्था से सम्पर्क रख कर ही* भारतीय समाजवाद जनता के निकट तुरत से-तुरत पहुँच सकता है। समाजवाद के साथ राष्ट्रीयता के इस गठबन्धन को कम्युनिस्टों द्वारा इस तरह तिरस्कृत किया जा चुका था कि जहाँ बिहार के साथियों ने पार्टी में शामिल होने के लिए कांग्रेस की मेम्बरी को ही काफी समझा था, वहाँ जयप्रकाश ने पार्टी के नाम के साथ ही कांग्रेस को जोड़ देना अति आवश्यक समझा। *हमारी यह नई पार्टी सिर्फ सोशलिस्ट पार्टी नहीं हो, बल्कि कांग्रेस सोशलिस्ट-पार्टी हो, जिसमें* कांग्रेस का महत्त्व हमेशा हमारे सामने रह सके; यह उनका निर्णय था और इस निर्णय का औचित्य पार्टी का बारह वर्षों का इतिहास दे रहा है। यद्यपि इस नाम को लेकर स्तालिन के भारतीय एजेन्टों ने बहुत वावेला मचाया—हिटलर के नेशनल सोशलिज्म से इसकी तुलना करने की धृष्टता की, किन्तु पीछे तो वे खुद इस पार्टी में शामिल हुए और अन्ततः बहुत शैतानियाँ करने के कारण निकाले गये।

हिन्दोस्तान में जितने लोग भी समाजवादी विचार रखते हों, उन्हें दावत दी जाय कि इस पार्टी में शामिल हों और यों भारत में एक विशाल समाजवादी पार्टी कायम की जाय; कांग्रेस की विधानवादी प्रवृत्ति को रोकने और उसे दिन-दिन युद्धोन्मुख बनाने की चेष्टा की जाय, मजदूर-संस्थाओं की फूट को दूर कर एक ही जबर्दस्त ट्रेड यूनियन कांग्रेस बनाई जाय, किसानों का व्यापक संगठन किया जाय एवं विद्यार्थियों और नौजवानों, आदि को संगठित, अनुशासित और शिक्षित करने के प्रयत्न किये जायँ—आदि निर्णय पर पहुँच कर उस पार्टी के विधान आदि भी नासिक जेल में ही तैयार कर लिये गये।

यह नासिक जेल है। नासिक—यहीं कहीं पंचवटी है; यहीं कहीं किष्किन्धा है। त्रेतायुग में यहीं कहीं बैठ कर राम ने अपने दक्षिणात्य साथियों—जिन्हें वानर कहा गया है—के साथ एक योजना तैयार की थी कि किस तरह राक्षसों को पराजित किया जाय, लंका को जीता जाय, सीता को वापस लाया जाय, रामराज्य की स्थापना की जाय। आज फिर उत्तर का एक नौजवान यहाँ पहुँचा है और अपने दक्षिणात्य साथियों से घिरा बैठा है। यहाँ नर और वानर का भेदभाव नहीं है। सब मानव हैं, सब मानवता के पुजारी हैं। सबके चेहरे पर ओज है, तेज है; सबके दिल में दर्द है, आग है; सबके दिमाग में विचार हैं, योजनायें हैं। किसी एक की सीता नहीं, देश की आजादी की सीता हरी गई है, यह राक्षसपुरी में कैद है। यह राक्षसपुरी एक समुन्दर पार नहीं, सात समुन्दर पार है। इस राक्षसपुरी पर विजय प्राप्त करना है, सीता का उद्धार करना है। स्वयं बन्धन में रहकर भी ये नौजवान माता के बंधन काटने का आयोजन करने में लगे हैं! नरक में रखे जाने पर भी यह युवक-मंडली 'पृथ्वी पर स्वर्ग' बसाने की योजना बनाने में लीन है। रह-रह कर ललाट पर चिन्ता-रेखायें खिंच जाती हैं; भवों पर सिकुड़न आ जाती है; आँखें सूनी-सूनी-सी लगती हैं, चेहरे खोये-खोये-से मालूम होते हैं!...कि अचानक आँखें चमक उठती हैं, होंठ विहँस पड़ते हैं—ओहो, समस्या का हल मिल गया! एक क्षण में ही ये फिर हँसते-बोलते जिन्दा-दिल मानव बन जाते हैं!

नासिक, नासिक!—इस क्षण को, इस घड़ी को, इस दिन और रात को न भूलना! इन्हीं के बलते फिर एक बार भारत के नक्शे पर जगमगाते अक्षरों में तुम्हारा नाम लिखाने जा रहा है!

६. बिहार-भूकम्प : अपनों से परिचय

१५ जनवरी, १९३४। दोपहर के बाद अचानक जमीन हिल उठी; पहले एक साधारण-सा हिलकोरा, फिर धक्के-पर-धक्के! बड़े-बड़े मकान ताश के घर की तरह गिर पड़े, भहरा पड़े। उनके मलबे के नीचे धन की राशि ही नहीं आ रही, उनके बाशिन्दे भी आ पड़े! उफ, आदमी की वह मौत! घरों

अपने को शुमार हो। श्यामनन्दन के रूप में जयप्रकाश ने बिहार के नौज-वानों को देखा—युवो, कर्मठ, त्यागी, बलिपथी नौजवानों के झुण्ड-के-झुण्ड को देखा, जो बिहार के हर गांव, हर गली में फैले हुए हैं। और, मानों उसी दिन तय कर लिया, यह अपने कार्य का मुख्यक्षेत्र बिहार को ही बनायेंगे।

सहायता पहुँचाने की प्रारम्भिक आवश्यकता थी, परन्तु व्यवस्था की कमी नहीं। फिर, हम बिहारी काम तो हद से ज्यादा करते हैं, किन्तु उसे दफ्तरी व्यवस्था का रूप देने की, जैसे, आवश्यकता ही नहीं अनुभव करते। इसलिए, जयप्रकाश को प्रारम्भ में आफिस चलाने में बड़ी कठिनाई हुई। किन्तु, धीरे धीरे काम का सिलसिला बँधता गया, केन्द्रीय आफिस सुचारु रूप से चलने लगा, मुफस्सिल के कामों में भी व्यवस्था आ गई। तब, जय-प्रकाश का ध्यान अपने प्रान्त के अन्य राजनीतिक कार्यों की ओर आकृष्ट होने लगा।

एक ओर बाहर से भूकम्प-पीड़ितों को सहायता पहुँचाई जा रही थी, दूसरी ओर जमींदारों की ओर से उनपर सख्तियाँ हो रही थीं। किसानों को खेतों से बालू हटाने के लिए, घर बनाने के लिए, खाने-पीने के लिए जो रुपये सहायता के रूप में मिलते, उन्हें जमींदारों के अमले या तो हड़प जाते या बाकी-मालगुजारी में उचक लेते। बहुत जगह अपने बगीचों से लकड़ी और बाँस काट कर घर बनाने से भी उन्हें रोका जाता। बाबू (अब सर) चन्द्रेश्वर प्रसाद नारायण सिंह और महाराजाधिराज दरभंगा की जमींदारियों से भी ऐसी शिकायतें आ रही थीं। बिहार के किसान-नेता और कार्यकर्ता सहायता के अलावा इस ओर भी ध्यान देते। जयप्रकाश का ध्यान भी बिहार के किसानों की समस्याओं की ओर आकृष्ट होने लगा।

इन पंक्तियों के लेखक ने १९३३ में जेल से निकलते ही जमींदारी प्रथा हटाने का नारा बिहार के किसानों में प्रचलित किया था। इस नारे का किसानों ने बड़े उत्साह से स्वागत किया और इसे अपनाया था। किन्तु जय-प्रकाश को उस समय कितना आश्चर्य मालूम हुआ, जब उन्होंने देखा कि प्रांतीय किसान कौंसिल में जब इस सम्बन्ध का प्रस्ताव मैंने पेश किया, तो स्वामी सहजानन्दजी सरस्वती ने उसका विरोध किया और जब वह बहुमत से पास

जयप्रकाश : अमेरिका के खेतों में

थीं, सड़कों पर लाशें बिछी थीं, उन्हें कोई छूनेवाला नहीं था—कुत्ते उनके लहू चाट रहे, चील उनकी लाशें निहार रहे!

जमीन फूट कर पानी की धारा निकल आई। कुएँ बालू से भर गये, तालाब छिछले बन गये, नदी के कछार गायब हो गये। खाने को अन्न नहीं, पीने का पानी नहीं। सारा बिहार त्राहि-त्राहि कर रहा। मुँगेर की हालत सबसे बुरी—उसके बाद मुजफ्फरपुर की बदहाली।

बिहार की इस विपत्ति की खबर जब देश को लगी, देशभर से—विदेशों से भी—सहायता का स्रोत बिहार की ओर उमड़ पड़ा। अब जरूरत यह थी कि इस सहायता को संगठित रूप में वितरित किया जाय, जहाँ जिस चीज की जरूरत है, वहाँ उसे वक्त पर पहुँचाया जाय। यह काम खास कर बिहारियों का था। पटना में एक सहायता-केन्द्र खोला गया। उसके आफिस में, नासिक जेल से रिहा होने के बाद, हम जयप्रकाश को एक मंत्री की हैसियत से काम करते देखते हैं।

जयप्रकाश अब तक प्रान्त के बाहर-बाहर ही काम करते रहे। प्रान्त के नौजवानों से उनका निकटतम सम्पर्क नहीं होने पाया था। इस अवसर पर उन्हें यह देखने का मौका मिला कि जिस पार्टी के निर्माण के लिए वह दृढ़प्रतिज्ञ हैं, उसके लिए मानवी उपादान उनके अपने प्रान्त में कहाँ तक उपलब्ध हैं। इस सम्बन्ध की एक कहानी बहुत मजेदार है—

एक दिन जयप्रकाश सहायता केन्द्र के आफिस में पहुँचे। आफिस का संगठन नहीं होने पाया था। शुरू से ही सब काम को सम्हालना था। उसके लिए एक टाइपराइटर की जरूरत थी। शहर के सुप्रसिद्ध नागरिक श्री सच्चिदानन्द सिन्हा ने टाइपराइटर देने का वचन दिया था। एक आदमी उनके घर पर भेजने की जरूरत थी। आफिस में आकर वह एक स्वयंसेवक की तलाश करते हैं। एक आदमी उनके सामने आता है। खादी की धूल-धूसरित एक धोती उसकी कमर में और दूसरी उसके कंधे पर। बिल्कुल, घोर देहाती शकल-सूरत।

"आप स्वयंसेवक हैं?"

"जी हाँ!"

"सिन्हा साहब का घर जानते हैं ?"

"सिन्हा साहब ? वही जो बालिस्टर हैं न ?"

"हाँ !"

"तो क्या हुक्म होता है ?"

"यह लीजिये, पैसे। एक टमटम कर लीजिये—सिन्हा साहब के घर जाइये, यह पुर्जा दीजियेगा और उनसे टाइपराइटर लेकर जल्द आजाइयेगा। टाइपराइटर समझते हैं ?"

"वही न, जिससे कचहरी में दरखास्त छापी जाती है।"

"हाँ, हाँ, वही।"

"तो उसके लाने के लिए पैसे की क्या जरूरत ? लाइये पुर्जा, लिये आता हूँ।"

जयप्रकाश पैसे देने की हठ करते रह जाते हैं; वह पुर्जा लेकर चल देता है और थोड़ी ही देर में कंधे पर की धोती को सिर पर लपेटे, उसपर टाइपराइटर रखे, वह उनके आफिस में घुसता है। आफिस में तबतक राजेन्द्र बाबू भी आ पहुंचे हैं। राजेन्द्र बाबू को देखते ही वह कुछ झेंपता है, फिर झट टाइपराइटर रख चल देता है।

"इन्हें टाइपराइटर लाने को किसने कहा ?" राजेन्द्र बाबू पूछते हैं।

"क्यों ? मैंने ही तो !" जयप्रकाश कहते हैं।

"आप इन्हें जानते हैं ?"

"जी नहीं !"

"तभी ! यह श्यामनन्दन बाबू हैं, इस जिले की कांग्रेस कमिटी के सेक्रेटरी।"

जयप्रकाश चकित-विस्मित ! उन्हें यह भी मालूम होता है कि श्याम-नन्दनजी पटना युनिवर्सिटी के ग्रेजुयेट हैं, घर के काफी सम्पन्न व्यक्ति हैं ! वह माफी माँगने को श्यामनन्दनजी को तलाश करते हैं; किन्तु तबतक श्यामनन्दन तो कहीं दूसरे ऐसे ही काम में अपने को खो चुके होंगे !

हाँ, यदि हिन्दोस्तान में समाजवाद कायम करना है, तो ऐसे ही नौज-वान चाहिए जो अपने को जनता में बिल्कुल खपा सकें, जिसमें विद्या-बुद्धि का मोह न हो, जो सेवा में नीच-ऊँच का भेद न रखे, जो हर समय हर काम

हो गया तो उन्होंने सभापति के पद से इस्तीफा तक देने की धमकी दी। खैर, जयप्रकाश ने ही बीच-बिचाव कर उस प्रस्ताव को वापस कराया; किन्तु, हवा का क्या रुख है, वह उन्हें मालूम होने से बाकी नहीं रहा।

अब जयप्रकाश बिहार सोशलिस्ट पार्टी में भी शामिल हो गये और अखिल भारतीय कांग्रेस समाजवादी पार्टी के संगठन के लिए बिहार के साथियों से मिलकर प्रयत्न करने लगे। उनकी योजना को बिहार के साथियों ने बहुत ही पसंद किया—यथार्थ में यह योजना तो बिहार सोशलिस्ट पार्टी के ही देशव्यापी रूप की योजना थी—फिर, वह क्यों नहीं पसंद की जाती? उसी समय यह खबर लगी कि अखिल भारतीय कांग्रेस कमीटी की बैठक पटना में बुलाई जा रही है, जिसमें महात्माजी सत्याग्रह वापस लेने का प्रस्ताव पेश करेंगे और विधानवादियों की ओर से असेम्बली और कौंसिलों में जाने का प्रस्ताव पेश किया जायगा। इस अवसर को उपयुक्त समझ कर बिहार सोशलिस्ट पार्टी ने पटना में देशभर के समाजवादियों की एक कान्फ्रेंस बुलाने का तय किया।

समाजवादियों की यह अखिल भारतीय कान्फ्रेंस ही कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की जननी सिद्ध हुई।

चौथा अध्याय : कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी

१. पार्टी का जन्म, लक्ष्य और कार्यक्रम

१८ मई, १९३४। भूकम्प-पीड़ित बिहार की राजधानी पटना में आज अजीब चहल-पहल है। एक ओर देश के बड़े-बड़े नेता पधार रहे हैं और उनकी अगवानी और मेहमानदारी के लिए जमीन आसमान एक किया जा रहा है। दूसरी ओर देश के कोने-कोने से नौजवान कार्यकर्त्ताओं के ठट्ठ-के ठट्ठ पहुँच रहे और जल्द जल्द नहाने-खाने से फुर्सत पाकर अन्जुमन-इस्लामिया-हॉल की ओर दौड़े जा रहे हैं, जहाँ आज हिन्दोस्तान में पहली बार समाजवादियों का एक वृहद् सम्मेलन किया जा रहा है। इनके चेहरे नये हैं, इनके दिमागों में विचार नये हैं, इनके हृदय में भावनायें नई हैं, इनकी नाड़ियों का खून नया है और एक नई दुनिया के सपने इनकी आँखों में घूम रहे हैं।

इस सम्मेलन का सभापतित्व आचार्य नरेन्द्रदेवजी ने किया था। काशी-विद्यापीठ के प्रिंसपल के रूप में आचार्यजी ने बहुत ही ख्याति प्राप्त कर रखी थी; किन्तु, इस सम्मेलन के सभापति के रूप में देश ने पहली बार उनके राजनीतिक और सामाजिक ज्ञान की ऊँचाई का अन्दाजा पाया। वेल बिगन, हाफ डन—यदि यह कहावत सही है, तो आचार्यजी को सभापति बनाकर ही *ऐसे सम्मेलन ने अपनी सफलता की आधी गारण्टी कर ली थी।*

सम्मेलन ने अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति का निरीक्षण करते हुए फासिज्म की बढ़ती हुई ताकत और उसके खतरे की ओर इंगित किया, निकट भविष्य में ही एक युद्ध की अनिवार्यता की भविष्यवाणी करते हुए उस युद्ध में अँगरेजी साम्राज्य की मदद नहीं करने की सूचना दी, रूस के समाजवादी नवनिर्माण का अभिनन्दन किया, कांग्रेस में विधानवादी प्रवृत्ति की वृद्धि पर चिन्ता प्रकट की, सीधे मोर्चे की लड़ाई को ही स्वतंत्रता-प्राप्ति का एकमात्र रास्ता बताया और उस लड़ाई में विजयी होने के लिए किसान-मजदूरों के संगठन की आवश्यकता बताई। अन्त में सम्मेलन ने हिन्दोस्तान में एक समाजवादी पार्टी के संगठन की अनिवार्यता स्वीकार करते हुए इसके लिए एक अस्थायी समिति बनाई जिसका प्रधान मंत्री जयप्रकाश को चुना गया।

प्रधान मंत्री होने के बाद जयप्रकाश ने समूचे देश का एक बार दौरा किया और सभी प्रमुख प्रान्तों में पार्टी की शाखायें कायम कीं। पार्टी का पहला बाजाब्ता सम्मेलन बम्बई में (दिसम्बर १९३४) हुआ, जिसका सभापतित्व श्री सम्पूर्णानन्दजी ने किया। पार्टी का दूसरा सम्मेलन मेरठ में (जनवरी १९३६) श्री कमलादेवी (चट्टोपाध्याय) के सभापतित्व में हुआ, तीसरा फैजपुर में (दिसम्बर १९३६) श्री जयप्रकाश नारायण के सभापतित्व में और चौथा लाहौर में (अप्रील १९३८) श्री मिनू मसानी के सभापतित्व में। पार्टी के प्रधान मंत्रित्व का भार हमेशा ही जयप्रकाश के कंधों पर ही रखा गया और वही उसकी नीतिरीति के प्रधान संचालक रहे।

मेरठ में जो थीसिस कबूल की गई थी, उसमें पार्टी के जन्म के बारे में इस तरह का उल्लेख है—

"कांग्रेस समाजवादी पार्टी पिछले दोनों राष्ट्रीय युद्धों के अनुभवों का नतीजा है। अन्तिम सत्याग्रह आन्दोलन के बाद उसको ऐसे कांग्रेसजनों ने जन्म दिया, जिनको यह विश्वास हो गया था कि राष्ट्रीय आन्दोलन को नई दिशा में ले चलने की जरूरत है और उसके लक्ष्य को पुनः निश्चित करने तथा उसके तरीकों में कुछ परिवर्तन करने की आवश्यकता है। इस दिशा में पहला कदम वही लोग बढ़ा सकते थे जो हमारे वर्तमान समाज में काम करनेवाली शक्तियों के स्वरूप को सिद्धान्ततः समझते थे। यह स्वभावतः वही

कांग्रेसजन थे जिनपर मार्क्स द्वारा प्रवर्तित समाजवाद का प्रभाव पड़ चुका था और जो उसे स्वीकार कर चुके थे। इसलिए यह स्वाभाविक था कि इस परिस्थिति में जिस संस्था का जन्म हुआ, वह 'समाजवादी' कहलाये। 'समाजवादी' के पहले लगा हुआ 'कांग्रेस' शब्द इस संस्था और राष्ट्रीय आन्दोलन के अतीत, वर्तमान और भविष्य के अविच्छेद्य सम्बन्ध को प्रकट करता है।"

पार्टी के लक्ष्य के बारे में जयप्रकाश के ही शब्दों में सुनिये—

"कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी का लक्ष्य उसके विधान में इस तरह लिखा हुआ है—'पूर्ण स्वतंत्रता की प्राप्ति जिसका मानी अँगरेजी साम्राज्य से सम्बन्ध-विच्छेद है और देश में समाजवादी समाज की स्थापना।'

"यह बिल्कुल सीधी और सरल बात है। पार्टी के दो उद्देश्य हैं—पहला उद्देश्य कांग्रेस का ही उद्देश्य है, सिवा इसके कि पार्टी ने यह साफ कर दिया है कि पूर्ण स्वतंत्रता का अर्थ अँगरेजी साम्राज्य से अलग हो जाना है।

"पार्टी का दूसरा उद्देश्य बताता है कि स्वतंत्र भारत के आर्थिक जीवन का निर्माण समाजवादी आधार पर होना चाहिये।

"क्यों?

"गहराई में जाने पर प्रश्न अन्ततः मूल्यों और अन्तिम उद्देश्यों का रह जाता है, जिनके निश्चय कर लेने के बाद और सारी बातें तार्किक परिणाम मात्र बन जाती हैं।

"यदि हमारा अन्तिम उद्देश्य जनता को राजनीतिक और आर्थिक दासता से मुक्त करना है, उसे सम्पन्न और सुखी बनाना है, उसे शोषण के शिकंजों से छुटकारा दिलाना है, उसे विकास का अबाध अवसर देना है, तब समाजवाद को लक्ष्य बनाना ही है और सब किसी को उसके नजदीक आना ही है। फिर, यदि हमारा उद्देश्य समाज को उन शक्तियों पर काबू करना है जो परस्पर संघर्ष करती और गड़बड़ी पैदा करती रहती हैं और उन्हें इस तरह से संचालित करना है कि उनसे समाज का अधिक-से-अधिक कल्याण हो, तथा यदि हम मानवी बुद्धि की सभी चेतन प्रेरणाओं को समाज के सम्मिलित हित और विभव की ओर प्रेरित करना चाहते हैं, तब भी हमारे लिए समाजवाद के निकट पहुँचना अनिवार्यतः आवश्यक हो जाता है।

"यदि हमारे यही उद्देश्य हैं, तो इसपर बहस के लिए कोई गुंजायश नहीं कि हिन्दोस्तान में भी समाजवाद की स्थापना होकर रहेगी। क्योंकि आखिर हिन्दोस्तान में भी गरीबी है, यहाँ, एक तरफ भुखमरी है और दूसरी ओर दौलत और मौज है। हिन्दोस्तान में भी शोषण है, यहाँ भी उत्पादन के सभी साधन कुछ व्यक्तियों के हाथों में हैं। संक्षेप में वर्तमान समाज के मूल रोग यानी आर्थिक और सामाजिक विषमता और उसके कारण हिन्दोस्तान में भी मौजूद हैं, यहाँ भी एक मुट्ठी लोग ज्यादा से ज्यादा लोगों को चूस और दुह रहे हैं।

"और, ऐसा सिर्फ अँगरेजी राज के चलते नहीं हो रहा है। अँगरेजी राज के नहीं रहने पर भी ऐसा होता रहेगा। विदेशी राज्य के खत्म होते ही हिन्दोस्तान की गरीबी का सवाल आप-से-आप हल नहीं होगा और न बन्द होगा जनता का यह भीषण शोषण—यानी, हमारे उन उद्देश्यों की पूर्ति नहीं हो सकेगी, जिनकी चर्चा हमने शुरू में की है। राजनीतिक स्वतन्त्रता के साथ आर्थिक स्वतन्त्रता भी परम आवश्यक है।

"हम समाजवादियों के सामने आर्थिक स्वतन्त्रता का मानी एक शब्द में है—'समाजवाद'। समाजवाद के बिना आर्थिक स्वतन्त्रता धोखे की टट्टी साबित होगी, झूठी कल्पना सिद्ध होगी।

"कांग्रेस का वर्तमान कार्यक्रम इन उद्देश्यों की पूर्ति की दृष्टि से बहुत ही कम है। इस कार्यक्रम से जनता की हालत में थोड़ा सुधार हो जाय, किन्तु यह न तो उसे शोषण से मुक्ति दिलायगा और न उसके हाथ में शासन-सूत्र देगा। यह कार्यक्रम समाज के आर्थिक संगठन में क्रान्तिकारी परिवर्तन कहाँ तक ला सकेगा, उल्टे यह उस संगठन को और भी मजबूत बनानेवाला है। इसके अनुसार इस देश में पूँजीपति, जमींदार और राजे-महाराजे भी रहेंगे और मजदूर, किसान और प्रजा भी। सिवा मूल उद्योगों के उत्पादन के सभी साधनों को यह व्यक्तियों के हाथ में रखना चाहता है। यों गरीबों और मध्यवर्गीय लोगों के शोषण के आधार पर बने वर्तमान आर्थिक संगठन को यह सुरक्षा प्रदान करता है। आर्थिक स्वतन्त्रता का यह अर्थ कदापि नहीं है। यदि कांग्रेस अपने को जनता की आर्थिक स्वतन्त्रता का हामी बताती है, तो उसे साफ करना चाहिये कि इस स्वतन्त्रता का अर्थ क्या है?

"इस कार्यक्रम के बदले हम जो कार्यक्रम रखते हैं, उसे कांग्रेस स्वीकार करने को तैयार न हो, यह बात अलग है; किन्तु आम जो बार-बार यह दुहराया जाता है कि समाजवाद सिर्फ काल्पनिक वस्तु है, यह भारतीय वातावरण के अनुकूल नहीं, हिन्दोस्तान के समाजवादी सिर्फ सिद्धान्त की लकीर पीट रहे हैं, वे मार्क्स नामक जर्मन यहूदी की किताबों को तोतारटंत करते फिरते हैं आदि, यह बात नहीं, बात के अजाय में बतंगड़ है।

"हम यह नहीं कहते कि कांग्रेस को समाजवाद का पूरा कार्यक्रम स्वीकार कर लेना चाहिये। किन्तु, हम यह जरूर कहते हैं और चाहते हैं कि कांग्रेस को कम-से-कम एक वैसा आर्थिक कार्यक्रम तैयार और स्वीकार कर ही लेना चाहिये, जिसे काम में लाने पर जनता को आर्थिक शोषणों से मुक्ति मिल जाय और सारी राजनीतिक और आर्थिक सत्ता उसके हाथों में आ सके।

"कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी एक ऐसा ही कार्यक्रम देश के सामने रख रही है।

"पार्टी का वह कार्यक्रम क्या है? मूल उद्योगों के राष्ट्रीयकरण के अतिरिक्त स्वराज सरकार को और क्या-क्या करने हैं जिनसे जनता को पूरी आर्थिक आजादी प्राप्त हो और वह शोषण, अन्याय, दुःख, दरिद्रता और अज्ञान से मुक्ति पा जाय।

"उस कार्यक्रम को अखिल भारतीय कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी ने अपने विधान में यों रखा है—

(१) उत्पादक जनता के हाथों में समस्त राजसत्ता देना।

(२) देश के आर्थिक जीवन के विकास की योजना और नियंत्रण राज्य के द्वारा होना।

(३) मूल और प्रधान उद्योगों (जैसे लोहा, रुई, जूट, रेल, जहाज, खान, बगान आदि) के अतिरिक्त बैंकों, बीमा और जनोपयोगी धंधों का समाजीकरण, इस दृष्टि से कि उत्पादन, वितरण और विनिमय के सभी साधनों का क्रमशः समाजीकरण हो जाय, यानी इनका अधिकार समाज के हाथों में आ जाय।

(४) विदेशी व्यापार पर राज्य का एकाधिकार।

(५) आर्थिक जीवन के जिन भागों का समाजीकरण नहीं हुआ है, उनके उत्पादन, वितरण और महाजनी के लिए सहयोग-समितियों का संगठन।

(६) राजाओं, जमींदारों और सभी शोषक वर्गों को बिना किसी मुआवजा के हटा देना।

(७) जमीन का किसानों के दरम्यान फिर से बँटवारा।

(८) राज्य द्वारा सहयोगमूलक और सामूहिक खेती के लिए प्रोत्साहन और अभ्युन्नति के प्रयत्न।

(९) किसानों और मजदूरों पर जितना भी कर्ज हो उसको हटाना।

(१०) राज्य द्वारा हर व्यक्ति को काम देने या उसके निर्वाह किये जाने के अधिकार की स्वीकृति।

(११) 'हर एक को उसकी जरूरत के मुताबिक मिलेगा और हर एक से उसकी योग्यता के मुताबिक काम लिया जायगा'—अन्ततः इसी आधार पर जीवनोपयोगी पदार्थों का वितरण और उत्पादन होना।

(१२) पेशे के आधार पर हर एक बालिग को मताधिकार।

(१३) राज्य द्वारा न किसी मजहब या धर्म का समर्थन और न मजहबों के दरम्यान भेदभाव करना और न जाति या सम्प्रदाय के आधार पर किसी प्रकार का भेद करना।

(१४) राज्य द्वारा स्त्री-पुरुष के दरम्यान किसी तरह का भेद नहीं करना।

(१५) जिसको हिन्दोस्तान का सार्वजनिक ऋण कहा जाता है, उसे रद्द करना।

"हमारे कार्यक्रम की ये पन्द्रह धारायें हैं। देखने में ये भारी-भरकम लगती हैं, बहुत ही सख्त और बड़ी-चढ़ी मालूम होती हैं और इनमें विदेशीपने की बूबास भी मालूम होती है। लेकिन यथार्थतः ऐसी बात नहीं है। ये काफी सीधीसादी हैं, तर्कसंगत हैं और काम में लाई जाने योग्य हैं। और विदेशीपने की बूबास!—तो विधान-परिषद्, असेंबली और कौंसिल, मिलों के धुएँ और रेलों की चीख क्या इन चीजों में कम विदेशी बूबास है?

"हमारे कार्यक्रम की इन धाराओं का सीधासादा अर्थ यह है कि हम व्यक्तिगत धन के उस भूत को दफन कर देना चाहते हैं, जिसके चलते ही हमारा घर अशांति और गंदगी का अखाड़ा बन गया है। और उस भूत के दफन करने के बाद हम चाहते हैं कि इस घर को अच्छी तरह चलाने के लिए एक सुन्दर आर्थिक योजना बना लें और उसे काम में लाने के लिए सब मिलजुल कर पिल पड़ें।"—(Why Socialism ? से)

इस लक्ष्य और कार्यक्रम को इससे अच्छे शब्दों में दिया नहीं जा सकता। उस लक्ष्य और कार्यक्रम तक पहुँचने के लिए पार्टी ने इस तरह काम करना तय किया—

(१) कांग्रेस के अन्दर इस दृष्टि से काम करना कि उसे एक सच्चा साम्राज्यविरोधी मोर्चा बनाया जा सके।

(२) किसानसभाओं और मजदूरसंघों का संगठन करना और जहाँ कहीं ऐसे संघ कायम हों, उनमें इस उद्देश्य से शरीक होना कि किसानों और मजदूरों की रोजमर्रे की आर्थिक और राजनीतिक लड़ाइयों को तीव्र करने और उनमें हिस्सा लेने और जनता के वर्गसंघर्ष को मजबूत करके स्वाधीनता एवं समाजवाद की प्राप्ति के लिए एक मजबूत जन-आन्दोलन तैयार करने की सूरत पैदा हो।

(३) युवकसंघ, महिलासंघ, स्वयंसेवकसंघ वगैरह में हिस्सा लेना और उनका संगठन करना जिससे वे पार्टी के कार्यक्रम के समर्थक बनाये जा सकें।

(४) सभी साम्राज्यवादी युद्धों का सक्रिय विरोध और इस प्रकार के या दूसरे संकटों का राष्ट्रीय संग्राम को मजबूत बनाने के लिए उपयोग करना।

(५) अँगरेजी सरकार के साथ किसी भी मंजिल पर विधान-सम्बन्धी समस्या पर समझौता करने में शरीक होने से इन्कार कर देना।

६) राज्यशक्ति पर अधिकार हो जाने पर भारतीय राज्य के विधान को नियमित रूप से तैयार करने की गरज से मजदूरों, किसानों और दूसरे शोषित वर्गों के प्रतिनिधियों की स्थानीय समितियों द्वारा चुने गए प्रतिनिधियों की एक विधान-परिषद् बुलाना।—(कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के विधान से)

अपने लक्ष्य और कार्यक्रम को ध्यान में रखते हुए अपने जन्म के बाद

के इन बारह वर्षों में कांग्रेस समाजवादी पार्टी ने क्या किया, अगले पृष्ठों में उसकी संक्षिप्त चर्चा की जायगी। संक्षेप में यही कहना है कि इस पार्टी के जन्म के बाद ही भारत में समाजवाद ने एक जीवित-जागृत आन्दोलन का रूप धारण किया, देश के कोने-कोने के झोपड़े-झोपड़े तक में समाजवाद की चर्चा शुरू हुई; पढ़े-लिखे दिमागपेशा लोगों में ही नहीं, किसानों और मजदूरों में भी समाजवाद के लिए आकर्षण एवं अनुराग पैदा हुआ और आज यह स्थिति आ गई है कि हिन्दोस्तान में समाजवाद की स्थापना एक सपना न रह कर निकट भविष्य का ठोस सत्य समझा जाने लगा है। इस स्थिति तक देश और समाजवाद को पहुँचाने में जयप्रकाश को अच्छे-से-अच्छे साथी मिले—श्रीमती कमलादेवी (चट्टोपाध्याय), स्वर्गीया श्री सत्यवतीदेवी (दिल्ली), श्री पूर्णिमा बनर्जी (प्रयाग), श्री मालती चौधरी (कटक), सर्वश्री आचार्य नरेंद्रदेव, यूसुफ मेहरअली, अच्युत पटवर्धन, मिनू मसानी, सेठ दामोदर स्वरूप, मोहनलाल गौतम, फरीदुलहक अन्सारी, मुंशी अहमददीन, डा० राममनोहर लोहिया, शिवनाथ बनर्जी, आदि के अतिरिक्त बिहार के लगभग एक दर्जन ऐसे उच्चकोटि के कार्यकर्त्ता उन्हें मिले, जो किसी भी आंदोलन के लिए आधार-स्तम्भ साबित हो सकते थे; किंतु जिन्होंने अपना अस्तित्व तक जयप्रकाश में विलीन कर दिया है! अगस्त-क्रांति के बाद श्रीमती अरुणा आसफअली और देश के कोने-कोने में क्रांति की धूनी रमानेवाले कर्मठ क्रांतिकारियों का एक नया गिरोह भी उनसे आ मिला है, और आज जयप्रकाश का दल हिन्दोस्तान में सबसे अधिक सम्बद्ध, संगठित और कर्मशील क्रान्तिकारी दल है, इसमें तो शक ही नहीं।

२. कांग्रेस : साम्राज्यविरोधी संयुक्त मोर्चा !

कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के नाम के साथ ही कांग्रेस नत्थी है, इसलिए सबसे पहले यह आवश्यक है कि कांग्रेस के स्वरूप को तात्विक दृष्टि से समझ लिया जाय।

पार्टी ने यह शुरू से ही माना कि साम्राज्यशाही के खिलाफ में खड़े हुए संयुक्त राष्ट्रीय मोर्चे का नाम ही कांग्रेस है। इस मोर्चे का पचास वर्ष

का पिछला इतिहास है। यह मोर्चा धीरे-धीरे तैयार हुआ है। इसमें वे सभी वर्ग शामिल हैं, जिनकी स्थिति, विकास या प्रसार में साम्राज्यवादी बाधक रही है। भारतीय पूँजीवाद को भी अपने विकास में यह साम्राज्यशाही विघ्न रूप में दिखाई पड़ती है, बाधा मालूम होती है, इसलिए हिन्दोस्तान के पूँजीपति भी कांग्रेस में आते और उसे सहायता पहुँचाते हैं। किन्तु, सिर्फ इसी कारण यह पूँजीवादी संस्था नहीं है। इसके दूसरे छोर में सर्वहारा मजदूरों की पाँत है, जिनकी स्थिति भी इस साम्राज्यशाही के चलते नारकीय बनी हुई है। मजदूरों का कल्याण भी यही चाहता है कि यह साम्राज्यशाही नष्ट हो। इन दो परस्पर विरोधी वर्गों के बीच कांग्रेस में निम्नमध्यमवर्ग और किसानों की बड़ी जमात है, जो यथार्थतः कांग्रेस की रीढ़ हैं। कुछ छिटफुट जमींदार, कुछ बड़े-बड़े दिमागपेशा लोग भी इस मोर्चे में शामिल हो जाया करते हैं, क्योंकि गुलामी शब्द ही बहुत घिनौना है और अपने देश को आजाद देखने की इच्छा सबके हृदय में होती है।

इस साम्राज्य-विरोधी मोर्चे को तोड़ना या कमजोर करना किसी समाजवादी पार्टी का काम नहीं हो सकता—क्योंकि देश में समाजवाद कायम करने के लिए सबसे पहली शर्त है, देश को आजाद करना। आजाद भारत ही समाजवादी भारत हो सकता है। इसलिए हर समाजवादी का यह कर्त्तव्य है कि इस मोर्चे को तोड़ने के बजाय इसे ज्यादा-से-ज्यादा मजबूत बनाये। इसके अन्दर कोई ऐसी कार्रवाई नहीं करे, जिससे इस मोर्चे की मजबूती पर जरा भी धक्का लगे।

किन्तु पार्टी ने यह भी माना कि यह मोर्चा उतना मजबूत नहीं, जिससे यह साम्राज्यशाही का मुकाबला सफलतापूर्वक कर सके। अतः उसने अपना यह भी कर्त्तव्य समझा कि इसे और भी पुख्ता बनाया जाय, इसमें उन सभी वर्गों को ज्यादा-से-ज्यादा तायदाद में लाने की कोशिश की जाय, जो सबसे लड़ाकू और दृढ़प्रतिज्ञ हैं। किन्तु, इसकी सीमा भी उसने समझी। वह सीमा क्या है, कांग्रेस के अन्दर पार्टी के काम का क्या सिलसिला हो, इसे जयप्रकाश के ही शब्दों में सुनिये—

"कांग्रेस एक सच्चा और मजबूत साम्राज्यविरोधी मोर्चा बने, इसीको ध्यान में रख कर हमें उसके अन्दर काम करना है। हम कांग्रेस को निखालिस समाजवादी संस्था बनाना नहीं चाहते—जो ऐसा सोचते हैं, वह गलती करते हैं। हम सिर्फ यह चाहते हैं कि कांग्रेस के कार्यक्रम और नीति को इस कदर बदल दें कि वह जनता का सच्चा प्रतिनिधित्व कर सके और उसे विदेशी सत्ता और देशी शोषण से मुक्ति दिला सके।

"कुछ लोग हमारे इस विचार का मखौल उड़ाते हैं। वे समझते हैं कि कांग्रेस तो पूँजीवादी संस्था है और उसकी नीति को हम उपर्युक्त ढंग से बदल नहीं सकते। किन्तु, हम ऐसे लोगों से सहमत नहीं। आज कांग्रेस में उच्चवर्गीय लोगों के स्वार्थों का बोलबाला है और उसके नेता उसमें ऐसे कार्यक्रम को नहीं शामिल करना चाहते जो जनता को पूरी आर्थिक मुक्ति दिलाये। लेकिन, तो भी, कांग्रेस में ऐसे लोगों की एक बड़ी तायदाद है जो ऐसे कार्यक्रम का हार्दिक स्वागत करेंगे। इसके लिए शर्त सिर्फ यह है कि पुराने नेताओं की छत्रछाया में आज तक काम करते आनेवाले इन लोगों को हम यह विश्वास दिला सकें कि यह कार्यक्रम राष्ट्रीय शक्ति को विभाजित करके राष्ट्रीय युद्ध को कमजोर बनानेवाला नहीं है। यदि हम इन्हें समझाना चाहते हैं, इन्हें अपने साथ लाना चाहते हैं (और बिना इन्हें अपने साथ किये इस देश में मजबूत साम्राज्यविरोधी मोर्चा बन नहीं सकता) तो सिर्फ नेताओं को गाली देने या लम्बी और विद्वत्तापूर्ण 'थीसिस' लिखने से काम नहीं चलेगा। बल्कि हमें कार्यरूप में यह दिखाना होगा कि हमारा कार्यक्रम ज्यादा प्रभावशाली है, ज्यादा प्रेरणाशील है।"

पार्टी के मेरठ-अधिवेशन ने जो 'थीसिस' मंजूर की थी, उसमें लिखा है—

"अपने उद्देश्य को सामने रखते हुए पार्टी को कांग्रेस के मंच पर केवल साम्राज्यविरोधी रुख अख्तियार करना चाहिये। कांग्रेस के सामने पूरे समाजवादी कार्यक्रम को रखने की गलती नहीं करनी चाहिये। ऐसा साम्राज्यविरोधी कार्यक्रम निकालना चाहिये कि मजदूरों, किसानों और निम्न मध्यमवर्ग की जरूरतों के अनुकूल हो।

"चूँकि पार्टी का यह लक्ष्य है कि साम्राज्य-विरोधी लोगों पर उसकी विचारधारा का प्रभाव पड़े, इसलिए हमारे लिए बहुत समझदारी से काम लेने की जरूरत है। हमें किसी भी हालत में लोगों को अपनी असहिष्णुता या बेवकूफी से नाराज नहीं कर देना चाहिये। कांग्रेस के रचनात्मक कार्यक्रम की तार्किक आलोचना करना और उसकी गलतियाँ दिखलाना मुनासिब है, परन्तु उसमें किसी प्रकार की बाधा नहीं डालनी चाहिये। कांग्रेस के चुनावों में हमको कमीटियों और पदों पर कब्जा करने की उत्सुकता न दिखानी चाहिये और न इस मतलब से ऐसे लोगों का साथ देना चाहिये, जो राजनीतिक दृष्टि से त्याज्य हैं।"

कांग्रेस के इस स्वरूप और उसके अन्दर कार्य करने की यह सीमा स्वीकार कर पार्टी ने बारह वर्षों तक जो कुछ किया है, उसका वर्णन ही एक पूरे पोथे का रूप धारण कर सकता है। यहाँ बहुत संक्षेप में ही उसका उल्लेख किया जा सकता है।

कांग्रेस के अन्दर पार्टी के कामों को चार हिस्सों में बाँटा जा सकता है—(१) वैधानिकता के खिलाफ जेहाद जारी रखना, (२) जनता की आर्थिक समस्याओं के निराकरण की ओर कांग्रेस का ध्यान दिलाना, (३) कांग्रेस के संगठन की त्रुटियों को दूर कराने की चेष्टा करना और (४) कांग्रेस को हमेशा युद्धोन्मुख बनाये रखना।

जिस समय पार्टी का जन्म हुआ, १९३०-३२ का सत्याग्रह-आन्दोलन आखिरी दम तोड़ रहा था। जिस दिन पार्टी का जन्म दिया गया, उसके दूसरे ही दिन अखिल भारतीय कांग्रेस कमीटी की बैठक पटना में हुई, जिसमें असेम्बलियों और कौंसिलों में प्रतिनिधि भेजने का प्रस्ताव रखा गया। पार्टी ने इसकी जबर्दस्त मुखालफत की। किन्तु, जब प्रस्ताव पास हो गया, तो उसने अपने सदस्यों को केन्द्रीय असेम्बली के चुनाव में खड़े होने से मना कर दिया और इस आज्ञा को नहीं मानने के कारण प्रोफेसर रंगा को भी पार्टी से अलग कर देने में वह नहीं हिचकी। उसके बाद प्रान्तीय असेम्बलियों का चुनाव आया।

यह चुनाव नये विधान के अनुसार हो रहा था, जिसको तोड़ने का निर्णय कांग्रेस कर चुकी थी। इसलिए पार्टी ने अपने सदस्यों को प्रचार की

दृष्टि से इस चुनाव में खड़े होने की इजाजत दी और कांग्रेस को इन चुनावों के जीतने में पूरी मदद पहुँचाई। इन चुनावों में कांग्रेस को शानदार विजय मिली। किन्तु इस विजय के बाद ही मन्त्रिमंडल बनाने की ओर कांग्रेस के कुछ कर्णधारों का झुकाव दीख पड़ने लगा। पार्टी ने इसके खिलाफ आवाज उठाई। मन्त्रित्व नहीं स्वीकार किया जाय, इसके लिए जबर्दस्त आन्दोलन शुरू किया गया और यह दावे के साथ कहा जा सकता है कि अखिल भारतीय कांग्रेस कमीटी की दिल्ली की बैठक में मन्त्रिमंडल कायम करने के खिलाफ जितनी बड़ी तायदाद में वोट मिले, उसका श्रेय पार्टी को ही है। किन्तु, बहुमत से यह तय हो गया कि मन्त्रिमंडल कायम किया जाय। मन्त्रिमंडल कायम हो जाने के बाद भी जब राजनीतिक बन्दी जेलों में सड़ते रहे, तो जयप्रकाश ने यह सुप्रसिद्ध नारा दिया—"Release or resign" राजबन्दियों को छोड़ो, या इस्तीफा दो। इस नारे का ऐसा असर हुआ कि युक्तप्रान्त और बिहार के मन्त्रिमंडलों को इस प्रश्न पर इस्तीफा तक देना पड़ा। इस इस्तीफे से साम्राज्यशाही घबरा उठी और सभी राजबन्दियों को छोड़ दिया गया। फिर जब १९३९ में द्वितीय महायुद्ध शुरू हुआ, पार्टी ने मन्त्रिमंडलों के इस्तीफे पर जोर दिया और अन्तत: वही होकर रहा। महायुद्ध की समाप्ति के बाद जेल से निकलते ही जयप्रकाश ने फिर वैधानिकता के खिलाफ आवाज उठाई है और अपने लोगों को विधान-परिषद् में जाने से रोका। यही नहीं, जब इन्टरिम गवर्नमेंट केन्द्र में बनाई गई, तब पार्टी ने उसके पक्ष में अपने वोट देने से इन्कार कर दिया।

कांग्रेस ने अपने करांची-प्रस्ताव के द्वारा जनता के आर्थिक प्रश्नों की ओर ध्यान देना शुरू कर दिया था। मुख्यत: पार्टी के प्रयत्न से उसने फैजपुर का किसान-सम्बन्धी कार्यक्रम स्वीकार किया, जो प्रान्तीय असेम्बलियों के चुनाव में कांग्रेस की विजय का सबसे प्रभावशाली अस्त्र सिद्ध हुआ। जब इस विजय के बाद कांग्रेसी मन्त्रिमंडल बने, तो पार्टी ने यह उचित समझा कि वह मन्त्रिमंडलों का ध्यान किसानों और मजदूरों की समस्या की ओर पूर्णत: आकृष्ट करे। इसके लिए सर्वप्रथम उसने असेम्बली के सामने किसानों के बड़े-बड़े प्रदर्शन कराये, फिर जगह-जगह किसान-सम्मेलन

करा कर प्रांतीय मंत्रिमंडलों पर जोर देना शुरू किया कि फैजपुर के कार्यक्रम को काम में लाया जाय। कई प्रान्तों में तो इस बारे में पूरी सफलता मिली—किसानों की जमीन और कर्ज के सम्बन्ध में अच्छे-अच्छे कानून बन गये। किन्तु कई प्रान्तों में किसानों की आशा पूरी नहीं, उन्हें दमन तक का शिकार होना पड़ा। मजदूरों ने भी अपनी माँगें पेश करनी शुरू किया और पार्टी के योग्य नेतृत्व के कारण प्रायः हर मोर्चे पर मजदूरों की विजय हुई। मजदूरों की स्थिति की जाँच के लिए मंत्रिमंडलों द्वारा कई प्रान्तों में कमीटियाँ बनाई गईं और उनकी रिपोर्ट और सिफारिशें मजदूर-आन्दोलन की प्रगति में सहायक सिद्ध हुईं। जब, अगस्त १९४२ में 'भारत छोड़ो' का प्रस्ताव कांग्रेस ने पास किया, तो उसमें यहाँ तक स्वीकार कर लिया गया कि भारत की जो स्वतंत्र सरकार होगी, वह "खेतों और कारखानों में काम करने वाले श्रमजीवियों" की सरकार होगी। गांधीजी ने, जेल से निकलने के बाद, घोषणा की है कि हिन्दोस्तान के स्वराज्य का मानी है 'किसान-मजदूर-प्रजा-राज्य'। गांधीजी की यह घोषणा कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के आदर्शों और प्रयत्नों की विजय की घोषणा है। यद्यपि अभी किसानों और मजदूरों के लिए दिल्ली दूर ही है।

कांग्रेस के संगठन की कमजोरियों की ओर पार्टी का ध्यान शुरू से ही रहा। जयप्रकाश ने इस सम्बन्ध में १९३५ में ही कहा था—

"कांग्रेस का विकास एक दूसरी ओर करना है। यह उसके संगठन और विधान से सम्बन्ध रखता है। आजकल कांग्रेस का संगठन व्यक्तिगत सदस्यता के आधार पर होता है, जो बड़ा ही असन्तोषप्रद है। इसके चलते कांग्रेस एक बनावटी संस्था-मात्र बन जाती है। वह जनता की संस्था न होकर एक मुट्ठी सदस्यों की संस्था-मात्र बनी रहती है। हमें इसके संगठन को इस तरह बदलना है कि वह जनता की सीधी प्रतिनिधि-संस्था बन जाय। मेरे विचार से इसके लिए आवश्यक है कि कांग्रेस में सामूहिक प्रतिनिधित्व का सिलसिला जारी किया जाय। वर्गों और समूहों की संस्थाओं से चुने गये व्यक्तियों से ही कांग्रेस की प्रारम्भिक कमीटियों का संगठन किया जाय। वे किसानों, खेतिहरों, व्यापारियों और दूसरे पेशों के प्रतिनिधित्व की हैसियत

रखनेवाले सदस्यों से ही संगठित की जायँ। इस योजना का ब्योरा बनाना कठिन माना जा सकता है; किन्तु, इसका सिद्धान्त बहुत ही सरल और, मेरे विचार से, न्याययुक्त और उचित है।"

किन्तु खेद है, बहुत प्रयत्नों के बाद भी आजतक कांग्रेस इस सिद्धान्त को नहीं मान सकी। पार्टी ने मुसलमानों में काम करने के लिए भी एक योजना कांग्रेस के सामने रखी, सिद्धान्ततः उसे स्वीकार भी किया गया, किन्तु उसे कार्य रूप में परिणत करने पर ध्यान नहीं दिया गया, जिससे आज मुसलमान कांग्रेस से दूर होते चले जा रहे हैं।

जिस समय पार्टी का बाजाता पहला सम्मेलन बम्बई में हो रहा था, उसी समय बम्बई-कांग्रेस में गांधीजी ने एक प्रस्ताव रखा कि कांग्रेस के उद्देश्य में प्रयुक्त 'उचित और शान्तिमय' शब्दों के बदले 'सत्य और अहिंसा' को रख दिया जाय। पार्टी ने इसकी जबर्दस्त मुखालफत की, जिससे अन्ततः गांधीजी का वह प्रस्ताव पास नहीं हो सका। पार्टी यह मानती रही है, कि जन-आन्दोलन का प्रारम्भ और विकास शान्तिमय तरीकों से ही होता आया है। यूरोप में भी हड़तालें बन्दूक और बम से नहीं शुरू होतीं। किन्तु, जनसंघर्ष का एक अवसर ऐसा आता है, जब शान्ति की दुहाई उसकी पराजय का प्रतीक बन जाती है। जिस समय पार्टी ने ऐसा कहना शुरू किया था, जोरों से हल्ला शुरू किया गया था। किन्तु, पिछले महायुद्ध के दरम्यान कांग्रेस खुद गांधीजी की अहिंसा से हटती गई और जयप्रकाश को अगस्त-क्रान्ति के अवसर पर यह कहना पड़ा—

"सबसे पहले हम यह जान लें कि गांधीजी की अहिंसा और कांग्रेस की अहिंसा में फर्क है। गांधीजी किसी भी दशा में अहिंसा से डिगने वाले नहीं हैं। उनके लिए अहिंसा एक धर्म है, एक जीवन-सिद्धान्त है। किन्तु, कांग्रेस के लिए ऐसी बात नहीं है। इस लड़ाई के दरम्यान कांग्रेस ने कहा है कि यदि भारत स्वतंत्र हो जाय या यहाँ राष्ट्रीय सरकार कायम हो जाय, तो वह आक्रमण का सामना हथियारों से करने को तैयार है। यदि हम जर्मनों और जापानियों से हथियार लेकर लड़ सकते हैं, तो फिर अँगरेजों से हम सशस्त्र मुकाबला क्यों नहीं कर सकते?...

"मैं मानता हूँ कि यदि बड़े पैमाने पर अहिंसा का प्रयोग किया जा सके, तो हिंसा अनावश्यक हो जा सकती है; लेकिन जब तक ऐसी अहिंसा नहीं पाई जाती, मैं कायरता को शास्त्रीय आवरण में छुप कर क्रान्ति के रास्ते में रुकावट डालते देखना बर्दाश्त नहीं कर सकता।"

यों तो विधानवादी प्रवृत्ति को रोकने की चेष्टा ही कांग्रेस को युद्धोन्मुख करने में शुमार की जा सकती है, किन्तु पार्टी ने लड़ाई की पुकार देने में भी कभी कोर-कसर नहीं की। एक ओर वह कांग्रेस के नेताओं का ध्यान बार-बार 'सीधी चोट' की लड़ाई की ओर खींचती रही, तो दूसरी ओर जनता से उस लड़ाई की तैयारियों के लिए अपील भी करती रही। किन्तु सिर्फ पुकार देने से ही उसे कभी सन्तोष नहीं हुआ—जब-जब मौके आये, उसके नेताओं ने व्यक्तिगत उदाहरणों द्वारा इस सम्बन्ध में पथ-प्रदर्शन किया। १९३७ में जब सारा देश मंत्रिमंडल बनने न बनने की उधेड़बुन में फँसा हुआ था, जयप्रकाश ने नये विधान के जारी किये जाने के विरोध में किये गये प्रदर्शन पर रुकावट डाले जाने पर पटना में खुलेआम कानून तोड़ा और सजा ली। इस मौके पर पार्टी के कितने अन्य सदस्यों ने भी देश के भिन्न-भिन्न भागों में प्रदर्शन पर लगाये गये प्रतिबंधों को तोड़ कर सीधी चोट की लड़ाई का आदर्श देश के सामने रखा। पटना में जयप्रकाश का *दर्जनों साथियों के साथ गिरफ्तार होना* और *फिर तीन-तीन महीने की सजा* पाना—इस घटना से देश में ही नहीं, इंगलैंड में भी सनसनी फैल गई और वहाँ जयप्रकाश की तस्वीर लेकर प्रदर्शन किये गये। यों ही जब द्वितीय महायुद्ध शुरू हुआ, पार्टी ने उस युद्ध के खिलाफ शुरू से ही जेहाद जारी किया, जिससे पार्टी के प्रायः सभी प्रमुख नेता गिरफ्तार कर लिये गये। १९४० में व्यक्तिगत सत्याग्रह शुरू करने के सिलसिले में बोलते हुए महात्माजी ने कहा था—"जब तक जयप्रकाश और लोहिया ऐसे लोग जेलों में सड़ रहे हैं, मैं चैन से किस तरह बैठा रह सकता हूँ।" फिर पार्टी को इसका गर्व है कि १९४२ की अगस्त-क्रान्ति की यज्ञाग्नि के लिए समिधा एकत्र करने में उसका बहुत बड़ा हाथ रहा है और उसे अन्त तक प्रज्वलित रखने का श्रेय तो उसके नेतृत्व को ही है।

पार्टी का यह विश्वास है कि कांग्रेस के अन्दर उसने जो कुछ किया है, उससे साम्राज्यविरोधी मोर्चे के रूप में उसमें मजबूती आई है—उसमें नई शक्तियों का समावेश हुआ, उसका विस्तार हुआ, वह अधिक संगठित और सुसज्जित हुई। पार्टी के इस रोल को कांग्रेस ने भी स्वीकार किया है—यद्यपि उसके कुछ नेता अपनी संकीर्ण दृष्टि के कारण पार्टी को गालियाँ देने से भी नहीं चूक सके हैं। कांग्रेस के अन्दर पार्टी के प्रभाव को स्वीकार करते हुए पार्टी के जन्म के साल भर के अन्दर-अन्दर, उसके तीन सदस्यों को कांग्रेस की कार्य-समिति में लिया गया, जिनमें एक जयप्रकाश भी थे। जयप्रकाश ने तीन महीने के बाद ही इस्तीफा दे दिया, किन्तु बाकी दो सदस्य आचार्य नरेन्द्रदेव और श्री अच्युत पटवर्धन कार्य-समिति के सदस्य बने रहे। कई मौके ऐसे आये, जब पार्टी के सदस्यों को कार्य-समिति में रहने से इन्कार भी करना पड़ा। किन्तु इसका मतलब कांग्रेस से असहयोग नहीं था। आज फिर जयप्रकाश उसकी कार्यसमिति के सम्माननीय सदस्यों में से हैं।

३. किसानों और मजदूरों का संगठन

"साम्राज्यविरोधी शक्तियों का विकास सिर्फ सिद्धान्तों के प्रचार से नहीं हो सकता। उसके साथ ही हम जनता में काम भी करें। क्योंकि साम्राज्य-विरोधी आन्दोलन सिर्फ सिद्धान्तवादियों का जमघट नहीं रहेगा, बल्कि उसमें किसानों, मजदूरों और गरीब मध्यवर्गीय लोगों का बोलबाला होना चाहिये। इन वर्गों में काम करना, इनकी राजनीतिक चेतना को जाग्रत करना, इनके आर्थिक संघर्षों का संगठन करना—यही हमारा मुख्य और मौलिक कार्य है।"

—जयप्रकाश, बंगाल पार्टी-सम्मेलन का भाषण।

हम पहले देखें, जिस समय पार्टी का जन्म हुआ, हिन्दोस्तान के किसान-आन्दोलन की क्या दशा थी?

जब से देश में राजनीतिक जागृति का श्रीगणेश हुआ, किसानों की दरिद्रता और अज्ञान की ओर देशभक्तों का ध्यान जाने लगा। भाषणों में, पुस्तकों में उनकी दशा पर आँसू गिराये जाते—हायतौबा की जाती। किन्तु, किसानों

के किसी प्रश्न को लेकर एक आन्दोलन खड़ा करना और उस आन्दोलन को सीधी चोट की लड़ाई तक पहुँचा देना—इस काम का प्रारम्भ महात्मा गांधी के द्वारा ही चम्पारण और खेड़ा में हुआ। चम्पारण के नीलहों के अत्याचार से किसानों का उद्धार करके गांधीजी ने, अपने सत्याग्रह-अस्त्र का वह चमत्कार दिखलाया, कि देश भर में उनकी और उनके इस नये अस्त्र की धूम मच गई। सदियों से सताये, सोये, बेहोश पड़े किसानों ने भी एक नवजीवन का अनुभव किया—वे कुनमुनाने लगे, आँखें मलने लगे, उठ खड़ा होने की तैयारियाँ करने लगे। १९२१ के असहयोग-आन्दोलन ने उनकी राजनीतिक चेतना को और भी जाग्रत किया। यद्यपि असहयोग आंदोलन में सभी साम्राज्यविरोधी वर्ग के लोग सम्मिलित थे, किन्तु किसानों की ओर ही इसका रुख था। बारदोली में करबन्दी करने की घोषणा करके गांधीजी ने देशभर के किसानों को मानों निमंत्रण दिया था—यह लड़ाई अन्ततः तुम्हारी है, आओ, इस महान यज्ञ में अपने सर्वस्व की आहुति दो।

चौरीचौरा-कांड ने बारदोली की योजना को गर्भ में ही मार डाला। गांधीजी जेल गये और वहाँ से लौटे, तो उनके सामने राजनीति के ऐसे पेचीदे सवाल खड़े थे कि वह अब विशुद्ध किसान-आन्दोलन का संचालन कर नहीं सकते थे।

किन्तु, किसानों में जो जागृति आई थी, उसका संगठनात्मक रूप किसी-न-किसी सूरत में लोगों की आँखों के सामने आना अनिवार्य था। खास कर बिहार और युक्तप्रान्त में हम किसानसभाओं का नाम सुनने लगते हैं। किसानों के सवालों को लेकर भिन्नभिन्न प्रान्तों में भिन्न-भिन्न व्यक्तियों द्वारा भिन्नभिन्न रूप में किसान-आन्दोलन चलाया जाने लगा। किन्तु, इन आन्दोलनों के सूत्रधारों में कोई ऐसा नहीं था, जो इन्हें एक सूत्र में गूँथ कर अखिल भारतीय रूप देता। उनमें से कुछ तो बिलकुल अवसरवादी थे, किसानों के भोलेपन से उन्होंने लाभ उठाया, उन्हें धोखे दिये।

जब पंडित मोतीलाल नेहरू की स्वराज्यपार्टी प्रान्तों में मजबूत हुई, तो किसानों के कानूनों के संशोधन के प्रश्न को लेकर फिर एक बार किसानों में जागृति देखी गई। किन्तु, देश की राजनीतिक प्रगति की धारा में

स्वराज्यपार्टी भी विलीन हुई और यह आन्दोलन भी। हाँ, सरदार पटेल के नेतृत्व में बारदोली के किसानों ने एक शानदार लड़ाई लड़ कर और जीत कर देश के किसानों को बहुत ही अनुप्राणित किया। बारदोली-विजय के बाद सरदार पटेल का दौरा बिहार में हुआ था और उन्होंने जमींदारों के खिलाफ वे बातें कही थीं, जिन्हें कोई किसानसभावादी भी उन दिनों कहने की हिम्मत नहीं कर सकता था।

१९३२ के सत्याग्रह की विफलता के बाद जो कांग्रेस कार्यकर्ता जेलों से नये आदर्श को लेकर निकले थे, उन्होंने देश के कई कोनों में किसान-आन्दोलन का श्रीगणेश कर दिया था। पार्टी के जन्म के समय बिहार, युक्तप्रान्त, आन्ध्र, पंजाब और गुजरात में किसान-आन्दोलन का फिर से श्रीगणेश हो चुका था। पार्टी का सबसे पहला काम यह हुआ कि वह भिन्न-भिन्न प्रान्तों में चलने वाले किसान-आन्दोलनों को एक अखिल भारतीय सूत्र में गूँथे और इसके लिए उसने अपने मेरठ—अधिवेशन में एक कमीटी बनाई, जिसके सदस्यों में जयप्रकाश भी थे। उस कमीटी के ही प्रयत्न से अखिल भारतीय किसान सभा का संगठन हुआ। इस सभा में वे सभी सम्मिलित हुए, जो किसानों के हितेच्छु थे, उनके अन्दर काम करते और उनकी लड़ाइयों में शामिल होते थे। पार्टी ने उनपर कभी यह बंधन नहीं रखा कि वे पार्टी के सदस्य हो जायँ; उल्टे पार्टी ने यह मुनासिब समझा कि पार्टी से अलग रहने वाले किसानसेवकों को पूरी प्रमुखता दी जाय, जिसमें किसानसभा एक पार्टी की चीज नहीं समझी जाकर किसान-मात्र की प्रतिनिधि संस्था मानी जाय। अपनी निष्पक्षता पर जोर देने के कारण पार्टी ने ऐसे सज्जनों को भी प्रमुखता दे दी, जिन्होंने पीछे चलकर किसानों और किसानसभा को गुमराह करने के लिए कुछ उठा नहीं रखा।

अबतक किसानसभा किसानों की कुछ तात्कालिक माँगों के आधार पर चलती थी। पार्टी ने उसे सैद्धान्तिक आधार दिया। जमींदारी, ताल्लुकेदारी आदि की प्रथाओं का उच्छेद और किसानों के कर्ज की मंसूखी उसकी प्रमुख माँग रखी गई। हिन्दोस्तान के कोने-कोने से 'जमींदारी प्रथा नाश हो' के नारे उठने लगे और यह नारा ऐसा जबर्दस्त होता गया कि जमींदारी

के उच्छेद के लिए कांग्रेस मंत्रिमंडलों की ओर से कानून बनने जा रहे हैं। इनके अतिरिक्त बकाया लगान रद्द किया जाय, मालगुजारी आधी कर दी जाय, जिस किसान के पास जीविका के योग्य पूरी जमीन न हो, उसे मालगुजारी नहीं देनी पड़े, *किसानों से बेगार या अबवाब लेने पर जमींदारों को दंड* दिया जाय, मालगुजारी या कर्ज की वसूली में किसानों के घर, खलिहान, खेती के साधन एवं किसान-परिवार की परवरिश के लायक जमीन की नीलामी नहीं हो और किसानों को सहयोगी एवं पंचायती खेती के लिए प्रोत्साहन दिया जाय—किसानों के जीवन के अस्तित्व से सम्बन्ध रखनेवाली ये बातें *भी किसानों की माँग में रखी गई।* *इन माँगों ने किसान-आन्दोलन* को ऊँची सतह पर लाकर खड़ा कर दिया।

अखिल भारतीय किसान सभा का सबसे शानदार सम्मेलन *गया* में हुआ जिसकी *सदारत आचार्य नरेन्द्रदेवजी ने की थी।* इस सम्मेलन में एक लाख किसान शामिल हुए थे और उसका रूपरंग कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशनों-सा ही मालूम पड़ता था। इस सम्मेलन से किसानों के हितेच्छुओं को यह विश्वास हो गया था कि अब किसानों के भाग्य खुलने ही वाले हैं—आगामी क्रान्ति में संगठित किसानों का यह शानदार हिस्सा होगा कि किसान-मजदूर-राज कायम होने में ज्यादा दिन नहीं लगेंगे।

किसान-आन्दोलन का मूलस्रोत प्रारम्भ से ही बिहार रहा है। जब जयप्रकाश ने बिहार में रहना शुरू किया, वह किसान-आन्दोलन में पूरी दिलचस्पी लेने लगे और बिहपुर में हुए प्रान्तीय किसान सम्मेलन का सभापतित्व भी किया। कांग्रेस-मंत्रिमंडल के जमाने में जब प्रान्त भर में बकाश्त-*सत्याग्रह की धूम मची, जयप्रकाश उसकी प्रमुख संचालक-शक्ति थे।* *रेवड़ा* का बकाश्त-आन्दोलन उनके ही योग्य नेतृत्व के कारण हिन्दोस्तान भर में ख्याति प्राप्त कर सका था।

किन्तु, ज्यों ही महायुद्ध शुरू हुआ, किसानों के दुर्भाग्य से, किसानसभा के उन प्रमुख लोगों ने किसान-क्रान्ति के पथ में रोड़े डालने शुरू किये, जिन्हें पार्टी ने किसानसभा के सूत्रधारों में स्थान दे रखा था। पहले रामगढ़-कांग्रेस के अवसर पर किसानसभा का उपयोग कांग्रेस के खिलाफ करने

को चेष्टा की गई इस गलत नारे पर कि कांग्रेस लड़ना नहीं चाहती, किसानो, आजादी की लड़ाई छेड़ो! और जब कांग्रेस ने उपयुक्त समय जानकर लड़ाई के लिए देश का आह्वान किया, तो फिर किसानों से कहा जाने लगा कि इस लड़ाई में तुम क्यों शामिल हो—इस के लिए कम्बल भेजो, और बस तुम्हारा कर्त्तव्य समाप्त! राष्ट्र के उस संकटकाल में किसानसभा की ऐसी छीछालेदर हुई कि उसके स्मरण से आज भी हर किसानसेवक का सिर शर्म से नीचे झुक जाता है।

जयप्रकाश उन दिनों देवली-जेल में थे। किसानसभा की यह दुर्गति उन्हें खल रही थी। किन्तु वे क्या कर सकते थे? संयोग ही कहिये, उन दिनों भी देश में उनके कुछ विश्वस्त साथी बाहर थे। उन्होंने किसानसभा को इस डूबती और डूबती नैया का पतवार अपने हाथों में लिया और श्री अवधेश्वर प्रसाद सिंह के सभापतित्व में अखिल भारतीय किसानसभा का पुनर्संगठन किया। फिर देश के किसानों के कंठ से गूँजने लगा—'साम्राज्य-वादी यह लड़ाई, हम न देंगे एक पाई, एक भाई'! जो लोग इस विश्वयुद्ध को अब 'जनता का युद्ध' कहते थे, उन्होंने जब विहटा (पटना) में किसान सभा के नाम पर डेढ़ चावल की खिचड़ी पकाने का आयोजन किया, इस पुनर्संगठित अखिल भारतीय किसान सभा का शानदार सम्मेलन बेंदौल (मुजफ्फरपुर) में किया गया, जिसके मनोनीत सभापति आचार्य नरेन्द्रदेव थे और जिसमें सेठ दामोदर स्वरूप, डा० लोहिया, श्री मेहरअली आदि पार्टी के प्रमुख नेता सम्मिलित हुए। इस सम्मेलन ने भारतीय किसानों में फिर से क्रान्तिकारी भावना फूँक दी और १९४२ की अगस्त-क्रान्ति में किसानों का जो पूरा सहयोग मिल सका, उसका श्रेय इस सम्मेलन को ही है।

मजदूरों के संगठन की हालत किसानों से कुछ भिन्न ही थी। जिस समय पार्टी का जन्म हुआ, उस समय हिन्दोस्तान में तीन अखिल भारतीय मजदूर संस्थायें थीं, जो अलग-अलग अपनी खिचड़ी पकाती और एक-दूसरे को अपना दुश्मन समझती थीं। इन तीन संस्थाओं के आपसी विग्रह के कारण मजदूरों का संगठन मजबूत क्या हो पाता—बहुत-सी ऐसी जगहें थीं, जहाँ के मजदूर असंगठित पड़े थे? उनकी ओर कोई देखनेवाला तक

जयप्रकाश अमेरिका में अपने अन्तरग मित्र श्री भोला पन्त के साथ

उद्देश्यों की ओर मजदूरों का ध्यान हमेशा खींचती रही और भारतीय क्रान्ति में योग्य हिस्सा लेकर शीघ्र-से-शीघ्र हिन्दोस्तान में किसान-मजदूर-राज कायम करने के लिए मजदूरों का आह्वान करती रही। पार्टी के इसी आह्वान का फल था कि कम्युनिस्टों और लिबरलों द्वारा बहकाये जाने पर भी हिन्दोस्तान के मजदूरों ने १९४२ की क्रान्ति में, बहुत-सी जगहों पर, शानदार हिस्सा लिया।

४. विद्यार्थियों, नौजवानों और स्त्रियों में

किसानों और मजदूरों के अतिरिक्त साम्राज्य-विरोधी शक्तियों के और भी कई समूह हैं, जिनमें कार्य करना पार्टी ने प्रारम्भ से ही आवश्यक समझा। पार्टी के कार्य के ब्योरे की तीसरी मद में लिखा है—"युवक संघ, महिला संघ, स्वयंसेवक संघ वगैरह में हिस्सा लेना और उनका संगठन करना जिससे कि वे पार्टी के कार्यक्रम के समर्थक बन जायँ।"

सन् तीस के पहले के कुछ वर्षों में देश भर में युवक-आन्दोलन की धूम मची थी। इस युवक-आन्दोलन का आरम्भ बम्बई से हुआ था और श्री यूसुफ मेहरअली उसके प्रमुख प्रवर्तकों में से थे। पीछे पं० जवाहरलाल नेहरू ने इस युवक-आन्दोलन को आशीर्वाद देकर उसकी उन्नति में प्रगति ला दी। फिर सरदार भगत सिंह के मुकदमे के सिलसिले में नौजवान भारत सभा की चर्चा इतनी बार आई कि देश भर के नौजवान अपने-अपने हल्कों में युवकसंघों की स्थापना में पिल-से पड़े। देश का शायद ही कोई हिस्सा हो, जहाँ उन दिनों युवकों की सभा या संघ नहीं हो।

भारत का यह युवक-आन्दोलन संसारव्यापी युवक-आन्दोलन की लहर का एक अंग था। चीन और रूस के युवकों ने अपने देश के उद्धार और नवनिर्माण में जो हिस्सा लिया था, उससे संसार भर के युवक अनुप्राणित हुए थे। उन दिनों संसार के प्रायः हर जागृत देश में युवक-आन्दोलन किसी-न-किसी रूप में चल रहा था। पीछे जब एक अन्तर्राष्ट्रीय युवक-सम्मेलन अमेरिका में बुलाया गया, तो भारतीय युवकों के प्रतिनिधि रूप में श्री यूसुफ मेहरअली उसमें सम्मिलित हुए थे।

कि कांग्रेस या कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी से कुछ होने-जाने का नहीं; चलो, हम राष्ट्रीय संग्राम छेड़ें। और, जब १९४२ में अगस्त-क्रान्ति शुरू हुई, तो उसके पहले ही इनके द्वारा विद्यार्थियों को कहा जा चुका था कि रूस के शामिल होते ही यह साम्राज्यवादी युद्ध लोकयुद्ध हो गया, अतः अब तो हमें क्रान्ति से दूर ही रहना है, अंग्रेजों की मदद कर रूस की मदद पहुँचानी है। युद्ध के प्रारम्भ में ही पार्टी के अधिकांश नेता गिरफ्तार हो चुके थे, इससे भी इन्होंने खूब फायदा उठाया। किन्तु, कांग्रेस और पार्टी के अनुयायी विद्यार्थी-नेताओं में जो लोग बचे हुए थे, उन्होंने कम्युनिस्टों के इस जाल में फँसने से इनकार कर दिया। विद्यार्थी-आन्दोलन के दो टुकड़े हो गये—एक के नेता एम० एल० शाह थे, जो पार्टी के सदस्य थे और जिसमें हर विचार के राष्ट्रीयतावादी विद्यार्थी सम्मिलित थे और दूसरा टुकड़ा निखालिस कम्युनिस्टों का था। इतने ही में श्री यूसुफ मेहरअली जेल से बाहर आये और पटना में जो अखिल भारतीय छात्र-सम्मेलन १९४२ के प्रारम्भ में हुआ, उसका सभापतित्व कर फिर उन्होंने देश के विद्यार्थियों को सही राह बताई।

उसके बाद ही अगस्त-क्रांति हुई। अगस्त-क्रान्ति के अवसर पर विद्यार्थियों ने जो हिस्सा लिया, वह भारतीय स्वतन्त्रता-संग्राम में सुनहले अक्षरों से लिखा जायगा। जब जयप्रकाश हजारीबाग जेल से निकल आये और देश के भिन्न-भिन्न वर्गों और समूहों के नाम अपना युद्ध-आह्वान भेजा, तो उस समय उन्होंने विद्यार्थियों को सम्बोधित करते हुए कहा—

"सबसे पहले, ओ मेरे नन्हे साथियो, मैं आपको बधाई देता हूँ, आपके उन शानदार कामों के लिए, जो इस आजादी की अज़ीमुश्शान लड़ाई में आपने कर दिखाये हैं।...जेल की ठंढी दीवारों के नीचे बैठकर जब मैं दिन-ब-दिन आपके बहादुराना कामों की चर्चायें सुनता और आपके बलिदानों की कल्पना करता था, तब मेरा हृदय आनन्द और अभिमान से फूल उठता था।

"किन्तु दोस्तो, अभी न तो अपने पिछले कामों की ओर ध्यान देने का वक्त है, न पतवार रखकर सो जाने का।

"कॉलेज खुलने जा रहे हैं और आप वहाँ जाने की सोच रहे होंगे। यदि मैं कहूँ कि यह समय पढ़ने या इम्तहान देने का नहीं है, तो आप कहेंगे,

किन्तु धीरे-धीरे युवक-आन्दोलन धीमा पड़ता गया। नौजवान दो स्वाभाविक हिस्सों में बँट गये। जो लोग कौलेजों और यूनिवर्सिटियों में पढ़ रहे थे, उन्होंने विद्यार्थी-आन्दोलन का आरम्भ किया और जो बाकी नौजवान थे, वे किसी-न-किसी पार्टी या संगठन में घुलमिल गये।

कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी ने नौजवानों के इन दोनों हिस्सों की ओर ध्यान दिया।

विद्यार्थी-आन्दोलन यों तो बीसवीं सदी के प्रारम्भ से ही शुरू हो चुका था। बिहार में जब डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद विद्यार्थी थे, उन्हीं के प्रयत्न से एक सुसचालित विद्यार्थी-संघ काम करने लग गया था। उसके सभापति के मंच को महात्मा गांधी, श्रीमती सरोजिनी नायडू, आचार्य प्रफुल्लचन्द्र राय ऐसे देश के गण्य-मान्य व्यक्ति सुशोभित कर चुके थे। किन्तु, यह विद्यार्थी-आन्दोलन प्रमुखतः सांस्कृतिक और सामाजिक प्रश्नों की ओर ही ध्यान देता था और उसमें उसने अच्छी सफलता भी प्राप्त की थी। किन्तु १९२१ के असहयोग-आन्दोलन के बाद उसमें भी राजनीति का प्रवेश होना शुरू हुआ। पर, ज्यों ही युवक-आन्दोलन का जोर १९२५ के बाद शुरू हुआ, विद्यार्थी-आन्दोलन फीका पड़ता पड़ता कुछ दिनों के लिए विलीन-सा हो गया।

१९३२ के सत्याग्रह आन्दोलन के बाद विद्यार्थी-आन्दोलन ने फिर करवटें बदलना शुरू किया। जब कांग्रेसी मंत्रिमंडल प्रान्तों में कायम हुए, विद्यार्थियों में अभूतपूर्व जागृति देखी गई। पार्टी ने इस नवोदित आन्दोलन को नेतृत्व देना शुरू किया। प्रायः जितने विद्यार्थी-सम्मेलन होते, सबका सभापतित्व पार्टी के सदस्य या पार्टी से सम्बद्ध सज्जन ही करते। उन दिनों कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्य भी कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी में सम्मिलित थे। उनमें से कुछ को पार्टी ने विद्यार्थी आन्दोलन में प्रमुखता दी। उन्होंने इसका बहुत बुरा फायदा उठाया। जब द्वितीय साम्राज्यवादी युद्ध शुरू हुआ, पार्टी चाहती थी कि कांग्रेस के नेतृत्व में ही राष्ट्रीय संग्राम शुरू हो; किन्तु कांग्रेस की ओर से राष्ट्रीय युद्ध का प्रारम्भ करने में देर हो रही थी। अतः पहले तो इन कम्युनिस्टों ने उतावले विद्यार्थियों को यह कह कर बरगलाया

कि कांग्रेस या कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी से कुछ होने-जाने का नहीं, चलो, हम राष्ट्रीय संग्राम छेड़ें। और, जब १९४२ में अगस्त क्रान्ति शुरू हुई, तो उसके पहले ही इनके द्वारा विद्यार्थियों को कहा जा चुका था कि रूस के शामिल होते ही यह साम्राज्यवादी युद्ध लोकयुद्ध हो गया, अतः अब तो हमें क्रान्ति से दूर ही रहना है, अंग्रेजों की मदद कर रूस को मदद पहुँचानी है। युद्ध के प्रारम्भ में ही पार्टी के अधिकांश नेता गिरफ्तार हो चुके थे, इससे भी इन्होंने खूब फायदा उठाया। किन्तु, कांग्रेस और पार्टी के अनुयायी विद्यार्थी नेताओं में जो लोग बचे हुए थे, उन्होंने कम्युनिस्टों के इस जाल में फँसने से इनकार कर दिया। विद्यार्थी-आन्दोलन के दो टुकड़े हो गये— एक के नेता एम० एल० शाह थे, जो पार्टी के सदस्य थे और जिसमें हर विचार के राष्ट्रीयतावादी विद्यार्थी सम्मिलित थे और दूसरा टुकड़ा निखालिस कम्युनिस्टों का था। इतने ही में श्री यूसुफ मेहरअली जेल से बाहर आये और पटना में जो अखिल भारतीय छात्र-सम्मेलन १९४२ के प्रारम्भ में हुआ, उसका सभापतित्व कर फिर उन्होंने देश के विद्यार्थियों को सही राह बताई।

उसके बाद ही अगस्त-क्रांति हुई। अगस्त-क्रान्ति के अवसर पर विद्यार्थियों ने जो हिस्सा लिया, वह भारतीय स्वतन्त्रता-संग्राम में सुनहले अक्षरों से लिखा जायगा। जब जयप्रकाश हजारीबाग जेल से निकल आये और देश के भिन्न-भिन्न वर्गों और समूहों के नाम अपना युद्ध-आह्वान भेजा, तो उस समय उन्होंने विद्यार्थियों को सम्बोधित करते हुए कहा—

"सबसे पहले, ओ मेरे नन्हे साथियो, मैं आपको बधाई देता हूँ, आपके उन शानदार कामों के लिए, जो इस आजादी की अजोमुश्शान लड़ाई में आपने कर दिखाये हैं। जेल की ठंढी दीवारों के नीचे बैठकर जब मैं दिन-ब-दिन आपके बहादुराना कामों की चर्चायें सुनता और आपके बलिदानों की कल्पना करता था, तब मेरा हृदय आनन्द और अभिमान से फूल उठता था।

"किन्तु दोस्तो, अभी न तो अपने पिछले कामों की ओर ध्यान देने का वक्त है, न पतवार रखकर सो जाने का।

"कौलेज खुलने जा रहे हैं और आप वहाँ जाने की सोच रहे होंगे। यदि मैं कहूँ कि यह समय पढ़ने या इम्तहान देने का नहीं है, तो आप कहेंगे,

यह तो पुरानी बात है, मामूली दलील है। किन्तु, दोस्तो, क्या रूस और चीन के विश्वविद्यालयों या ऑक्सफोर्ड और हारवार्ड के विश्वविद्यालयों के विद्यार्थी भी इस विचार को इसी तरह पुरानी दलील कहकर टाल सकते थे?

"साधारण समयों में विद्यार्थियों का काम है कि वे पढ़ें-लिखें, जिसमें योग्य नागरिक बनकर देश की अधिकाधिक सेवा करें। किन्तु, राष्ट्र के जीवन में ऐसे वक्त भी आते हैं, जब व्यक्ति को अपने विकास की तिलांजलि समाज के जीवन और विकास की वेदी पर देनी होती है। *क्या रूस और चीन के विद्यार्थी अपनी पढ़ाई पूरी करके मोर्चे पर गये हैं? क्या कैम्ब्रिज* और कोलम्बिया में भी विद्यार्थियों से कहा गया कि पहले पढ़ाई खत्म कर लो, तब युद्धभूमि में जाना!

"*नहीं दोस्तो, नहीं!* इतिहास हमारे सामने एक वक्त ऐसा भी पेश करता है, जब व्यक्ति को अपनी जान इसलिए देनी पड़ती है कि राष्ट्र जिन्दा रहे, सभ्यता बर्बाद न हो। आज का समय ऐसा ही है। हमें भी अपनी जानें कुर्बान करनी हैं, तकलीफें झेलनी हैं, अपनेको धूल में मिला देना है, जिसमें हमारा राष्ट्र चिरजीवी हो, हमारी सभ्यता फूले-फले। इसलिए देशद्रोहियों की *बातों में मत फँसिये—खुली बगावत के पथ पर बढ़े चलिये!*

"याद रखिये, संसार के नौजवान आज अपने देशों के लिए राशि राशि हृदय-रक्त दे रहे हैं। चाहे राष्ट्रीय दृष्टि से देखिए या अंतर्राष्ट्रीय दृष्टि से, नैतिक दृष्टि से या भौतिक दृष्टि से, क्या ४० करोड़ व्यक्तियों की बंधनमुक्ति से भी बड़ा और बढ़िया काम कोई हो सकता है? संसार के मानवों के पाँचवें हिस्से की *आजादी के सिपाही होकर* आप *"आजादी, शान्ति और उन्नति"* के अंतर्राष्ट्रीय सैनिकों की अगली पाँत में आ जायेंगे। संसार का भविष्य एशिया पर निर्भर है और एशिया की कुंजी हिन्दोस्तान है।"

अगस्त क्रान्ति की शान्ति के बाद विद्यार्थियों ने अपनी संस्था का पुन-स्संगठन शुरू कर दिया और कम्युनिस्टों की संस्था से बिल्कुल अलग होकर "अखिल भारतीय छात्र-कांग्रेस" के नाम से वे *आजकल काम कर रहे हैं।* इस *छात्र-कांग्रेस का सभापति पार्टी का एक विद्यार्थी-सदस्य है।*

विद्यार्थियों के इस संगठन में सहायता पहुँचाने के अतिरिक्त पार्टी ने

जगह-जगह अध्ययन-केंद्र कायम किये, जिनमें शामिल होने से विद्यार्थियों के सैद्धान्तिक ज्ञान में वृद्धि हुई, उनमें चीजों के असली रूप में देखने और समझने की सूझ आई।

नौजवानों एवं अन्य राष्ट्रीय एवं वर्गसंस्थाओं में काम करनेवाले कार्यकर्त्ताओं के लिए पार्टी ने एक नवीन प्रकार का आयोजन प्रारम्भ किया, जैसा इस देश में पहले कभी नहीं देखा गया था। पार्टी ने देश के भिन्न-भिन्न भागों में सामयिक राजनीतिक विद्यालय खोले, जो लगभग एक महीने तक चलते थे और जिनमें राजनीति और समाजशास्त्र के हर पहलू पर योग्य विद्वानों के व्याख्यान होते थे। ऐसे ही विद्यालयों में एक विद्यालय सोनपुर (बिहार) में खुला, जिसका नाम राजनीतिक ग्रीष्म विद्यालय—Summer School of Politics—था और जिसका आचार्य स्वयं जयप्रकाश थे। बिहार की नई पीढ़ी के जितने प्रगतिवादी कार्यकर्त्ता हैं, उनमें से अधिकांश इस ग्रीष्म विद्यालय के विद्यार्थी रह चुके हैं। १९४२ की अगस्त-क्रान्ति की जड़ खोजते समय बिहार के खुफिया-विभाग का ध्यान बार-बार इस विद्यालय पर जाता था और नजरबंदों से प्रायः ऐसे प्रश्न पूछे जाते थे।

तीस के सत्याग्रह-आन्दोलन के पहले ही डाक्टर हार्डीकर ने कांग्रेस के अन्दर हिन्दोस्तानी सेवादल का सगठन शुरू किया था। सेवादल के बहुत-से कार्यकर्त्ता पार्टी में शामिल हुए और उन्होंने स्वयंसेवकों की ट्रेनिंग को जारी रखा। कांग्रेस के सेवादल के बाहर भी देश के भिन्न-भिन्न हिस्सों में भिन्न-भिन्न नाम से स्वयंसेवकों का संगठन पार्टी की ओर से चलता रहा। बिहार में किसानों और मजदूरों की 'लाल सेना' में हजारों नौजवान शामिल थे और उन्होंने बकाश्त सग्राम और हड़ताल के मौकों पर बहुत काम किया था, बड़ी बहादुरी दिखलाई थी। नागपुर की 'रेड आर्मी' तो ४२ की क्रान्ति में सरकार के लिए हौआ-सी हो चली थी और उसके संचालकों के सिर पर बड़े बड़े इनाम बोले गये थे। पञ्जाब में, युक्तप्रान्त में, बम्बई में पार्टी के अधीन स्वयंसेवकों के अच्छे जत्थे थे। अगस्त-क्रान्ति में 'आजाद-दस्ता' नाम से छापामार स्वयसेवकों का एक देशव्यापी संगठन किया गया था, जिसकी च[illegible]

पार्टी के सौभाग्य से उसे श्री कमलादेवी (चट्टोपाध्याय) ऐसी सदस्या मिलीं, जो हिन्दुस्तान के नारी-आन्दोलन की प्रवर्तिकाओं और संचालिकाओं में से हैं। श्री कमलादेवी ने पार्टी के झंडे को भारतीय महिलाओं के कार्यक्षेत्र में हमेशा बुलन्द रखा है—किन्तु इसका यह मतलब नहीं समझा जाए कि नारी-आन्दोलन में उन्होंने पार्टी के नाम पर काम किया। नहीं, यह कांग्रेस समाजवादी पार्टी का तरीका ही नहीं रहा है। हम जहाँ भी काम करते हैं, उस संस्था का होकर, उस संस्था के व्यापक हितों की दृष्टि से। क्योंकि हम समझते हैं, पार्टी का हित भी हिन्दोस्तान के हित, हिन्दोस्तान की प्रगतिशील ताकतों के हित में सम्मिलित है।

तो, श्री कमला देवी शुरू से ही भारतीय नारी-आन्दोलन में दिलचस्पी लेती रही हैं और जब अखिल भारतीय नारी-शिक्षा-सम्मेलन का प्रथम अधिवेशन हुआ, वह सर्वसम्मति से उसकी प्रधान मन्त्री चुनी गईं; फिर लगातार बहुत वर्षों तक वह अखिल भारतीय महिला-सम्मेलन की संगठन मन्त्री रहीं। श्री कमलादेवी का भारतीय नारी-आन्दोलन में क्या स्थान है, यह इसीसे सिद्ध है कि वह पांच अन्तर्राष्ट्रीय नारी-सम्मेलनों—जनेवा, बर्लिन, प्रेग, इल्सिनोर, कोपेन-हेगन—में भारतीय नारियों का प्रतिनिधित्व कर चुकी हैं। अखिल भारतीय महिला-सम्मेलन भी उन्हें अपनी अध्यक्षा चुन कर उनकी सेवाओं पर अपनी कृतज्ञता प्रगट कर चुका है।

यों भी पार्टी ने हमेशा ही नारी आंदोलन को उत्साहित किया है और जो युवतियाँ देश और समाज के लिए काम करना चाहती हैं, वे पार्टी द्वारा सदा सहायता और प्रेरणा पाती रही हैं। स्वर्गीया श्रीमती सत्यवती देवी, श्री मालती देवी, श्री पूर्णिमा बनर्जी ये नाम भारतीय नारियों के राजनीति की ओर बढ़ते हुए कदम के मील के पत्थरों के सूचक हैं और अब श्री अरुणा आसफअली दिल्ली में सिर्फ बहन सत्यवती की जगह की ही पूर्ति नहीं करतीं, देश के नौजवानों और नवयुवतियों के हृदयों में समाजवाद के लिए स्थायी स्थान की भी सृष्टि कर रही हैं।

५. द्वितीय साम्राज्यवादी महायुद्ध !

निकट भविष्य में एक महायुद्ध होनेवाला ही है और यह महायुद्ध, प्रथम महायुद्ध की तरह, साम्राज्यवादी महायुद्ध होगा और इसमें किसी-न-किसी मंजिल में अँगरेजी सरकार जरूर उतरेगी, यह मान्यता पार्टी की प्रारम्भ से ही रही है। अँगरेजी सरकार इसमें इसलिए उतरेगी कि इंगलैंड संसार का सबसे बड़ा साम्राज्यवादी देश है, अतः संसार के किसी हिस्से पर युद्ध हो, उसका असर अँगरेजी साम्राज्यवाद पर जरूर पड़ेगा और रक्षा एवं प्रसार दोनों ही पहलुओं का यह तकाजा होगा कि वह तटस्थ न रहे, किसी-न-किसी पार्टी का साथ दे। अपने साम्राज्यवादी उद्देश्यों को छिपाने के लिए वह इस युद्ध का अच्छा-से-अच्छा नाम देने की कोशिश करेगा, इसमें संदेह नहीं। किन्तु, पिछले युद्ध की तरह हमें अगले युद्ध में धोखा नहीं खाना है, इस मौके से फायदा उठाना है। यह फायदा हम तभी उठा सकते हैं, क्योंकि ऐसे मौके पर, जब साम्राज्यवाद कमजोर पड़ जाता है, हम उसपर धावा बोल दें और उसे अपने देश से हटाकर ही चैन लें। अपने इसी अभिप्राय को कम-से-कम शब्दों में पार्टी ने अपने कार्य के ब्योरे में यों दिया है —

(४) सब साम्राज्यवादी युद्धों का सक्रिय विरोध और इस प्रकार के या दूसरे संकटों का राष्ट्रीय संग्राम को मजबूत बनाने के लिए उपयोग करना।

राष्ट्रीय संग्राम का एक ही मोर्चा है, कांग्रेस। कांग्रेस से अलग राष्ट्रीय संग्राम का सपना नहीं देखा जा सकता। इसलिए पार्टी ने बम्बई-कांग्रेस (१९३४) में ही एक प्रस्ताव इस सम्बन्ध का पेश किया, किन्तु उस प्रस्ताव को अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटी के सिर पर टाल दिया गया और सरदार पटेल ऐसे सेनानी भी व्यंग करने से नहीं चूके कि ये समाजवादी हमेशा दूर की कौड़ी ही लाया करते हैं। पर, उसके बाद प० जवाहरलाल नेहरू दो बार राष्ट्रपति चुने गये और अपने अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण के कारण उन्हें पार्टी के इस प्रस्ताव का महत्त्व समझने में कोई कठिनाई नहीं हुई और तबसे कांग्रेस के हर अधिवेशन में लड़ाई

सम्बन्धी यह प्रस्ताव किसी-न-किसी रूप में दुहराया जाता रहा है। ज्यों-ज्यों दिन बीतते गये, आनेवाली लड़ाई की धमक भी मालूम होने लगी और जो लोग विरोधी थे, वे भी समाजवादियों की दूरदर्शिता के कायल हुए — भले ही सार्वजनिक तौर से इसे स्वीकार न कर सकें।

आखिर, पहली सितम्बर, १९३९ को युद्ध का नगारा बज ही गया। जर्मनी ने पोलैंड पर चढ़ाई कर दी। उन दिनों पार्टी के प्रमुख सदस्य, एक मीटिंग के चलते, पटना में ही थे। लड़ाई की खबर होते ही पार्टी की ओर से एक आम सभा 'अंजुमन इस्लामिया हॉल' में बुलाई गई, जिसका सभापतित्व आचार्य नरेन्द्रदेवजी ने किया। उस सभा में बोलते हुए जयप्रकाश ने जुमला ध्वनियों के बीच यह घोषित किया—"यह युद्ध साम्राज्यवादी युद्ध है, हम इसका विरोध करेंगे; आज हम सभा करके इसका एलान कर रहे हैं, वक्त आएगा, जब हमें सभा भी नहीं करने दिया जायगा; तब हम सड़कों पर, गली के नुक्कड़ों पर, यहाँ तक कि घरों के छप्परों पर से यही एलान करेंगे और इस मौके का फायदा उठा कर हम अपनेको आज़ाद करने की कोशिश करेंगे।"

इसके बाद ही पार्टी की कार्य-समिति की बैठक लखनऊ में हुई और एक घोषणा प्रकाशित की गई जिसमें इस युद्ध के साम्राज्यवादी स्वरूप पर विस्तृत प्रकाश डाला गया और स्पष्ट कह दिया गया कि पार्टी इस युद्ध में किसी तरह सहयोग नहीं कर सकती, बल्कि वह इसका प्रबलतम विरोध करेगी और उसके नतीजों को भुगतने को भी तैयार रहेगी। वर्धा में पार्टी की कार्य-समिति जब बैठी, तो उसने अपनी इस घोषणा को कार्य में लाने के लिए एक कार्यक्रम तैयार किया, जो यों है—

(१) युद्ध-विरोधी प्रचार जोरों से चलाना। इस सिलसिले में सार्वजनिक और राजनीतिक हड़तालों का संगठन करना।

(२) स्थानीय कांग्रेस कमिटियों को युद्ध विरोधी कार्य के लिए सक्रिय बनाना।

(३) पंजाब और बंगाल के सूबों में, जहाँ आर्डिनेन्सों के लागू किये जाने से युद्ध-विरोधी कार्य करना कठिन ही नहीं, असम्भव हो चला है, जनता

के दरबाद में शिथिलता का आना रोकने के लिए पार्टी के सदस्यों द्वारा कानून का भंग करना और आर्डिनेन्स की हुकूमत के खिलाफ सार्वजनिक आन्दोलन खड़ा करना।

(४) कांग्रेसी सूबों में, जिनमें अब भी मंत्रिमंडल काम कर रहे हैं, अगर पार्टी के सदस्यों पर किसी खास काम के विरुद्ध, जिसका करना उनके लिए आवश्यक हो, रोक लगा दी जाय तो इस प्रकार की पाबन्दी का उल्लंघन करना।

(५) स्वयंसेवकों की भरती के काम को आगे बढ़ाना।

६) पार्टी के अन्य साधारण कार्यों को जारी रखना, विशेष कर किसानों और मजदूरों के मोर्चे पर।

और इस कार्यक्रम को चलाने के लिए पार्टी ने एक युद्ध-समिति भी गठित की। उसी समय, वर्धा में ही, कांग्रेस की कार्य-समिति की भी बैठक हो रही थी और जयप्रकाश उसमें विशेष रूप से आमंत्रित किये गये थे। कार्य-समिति की बैठक में क्या हुआ, वह जयप्रकाश के ही शब्दों में देखिये—

"देश के सामने तीन नीतियाँ थीं। पहली थी महात्मा गांधी की नीति, जो कि ब्रिटेन के बिना शर्त सहायता देने के पक्ष में थी, यद्यपि वह सहायता सिर्फ नैतिक सहायता थी। दूसरी नीति हमारी पार्टी की थी—युद्ध का और ब्रिटिश सरकार का, जो कि हिन्दोस्तान को उसमें घसीट रही थी, बिना शर्त के विरोध करना। इसका अर्थ अविलम्ब जनसंग्राम था। तीसरी बीच की नीति कांग्रेस-कार्य-समिति की थी जो कि वस्तुतः इन दोनों नीतियों का समझौता थी (यद्यपि जानबूझकर दोनों नीतियों में समझौता करने का प्रयत्न नहीं किया गया था)। कार्य-समिति ने ब्रिटिश सरकार से अपने युद्ध-सम्बन्धी उद्देश्यों की घोषणा करने की माँग की थी—विशेष कर हिन्दोस्तान के सम्बन्ध में—और इस शर्त पर अपने को युद्ध से सम्बन्धित करने का वादा किया था, कि इन उद्देश्यों का लक्ष्य साम्राज्य और उसके बाहर साम्राज्यवाद और फैसिज्म का नाश करना हो। इस नीति का भी तर्क-संगत परिणाम सत्याग्रह ही था (क्योंकि ब्रिटेन इस युद्ध में उक्त प्रकार के उद्देश्यों से प्रेरित नहीं रहा है); लेकिन बहुत कुछ अनिश्चित रूप में।"

कांग्रेस-कार्य-समिति ने युद्ध के उद्देश्य की घोषणा के लिए अँगरेजी सरकार से जो अनुरोध किया, वह ठुकरा दिया गया। फलतः कांग्रेसी मन्त्रिमंडलों ने इस्तीफे दे दिये और अब सिवा सत्याग्रह के और कोई उपाय कांग्रेस के सामने नहीं रह गया। इस नवीन परिस्थिति में जयप्रकाश ने पार्टी के प्रधान मंत्री की हैसियत से पार्टी के कार्यकर्त्ताओं के सामने निम्नलिखित कार्यक्रम को रखा—

(१) सभाओं, प्रदर्शनों, हड़तालों, रैलियों, नोटिसों और पुस्तिकाओं के जरिये युद्ध-विरोधी प्रचार। युद्ध का साम्राज्यवादी स्वरूप समझाया जाना चाहिए।

(२) कांग्रेस और स्वराज्य-पंचायत (Constituent Assembly) की स्थिति के सम्बन्ध में प्रचार। कांग्रेस के जरिये राष्ट्रीय एकता के स्पष्टीकरण पर जोर दिया जाना चाहिए और साम्राज्यशाही के हथियार बनकर प्रतिक्रियावादी तथा सम्प्रदायवादी जिस प्रकार देश की उन्नति के मार्ग में रुकावट डाल रहे हैं उसकी पोल भी खोलना जरूरी है। स्वराज्य-पंचायत के स्वरूप की व्याख्या और उसके अर्थ को तोड़ने-मरोड़ने की कोशिशों की आलोचना और विरोध होना चाहिए। स्वराज्य-पंचायत के क्रान्तिकारी महत्त्व पर जोर दिया जाना चाहिए।

(३) मुसलमानों तथा दूसरे प्रकार की अल्पसंख्यक जनता के बीच प्रचार पर विशेष ध्यान।

(४) देशव्यापी सविनय अवज्ञा आन्दोलन चलाने के लिए प्रचार—खासकर कांग्रेसजनों में। सविनय अवज्ञा के अन्तर्गत लगान, मालगुजारी तथा दूसरे प्रकार की करबन्दी पर जोर देना चाहिए।

(५) लगानबन्दी और करबन्दी आन्दोलनों के लिए प्रचार और संगठनात्मक तैयारियाँ।

(६) जनसंग्राम के लिए स्वयंसेवकों की भर्ती और उनके शिक्षण का प्रबन्ध। स्वयंसेवकों की प्रतिज्ञा और उनका शिक्षण किसी समूह विशेष की मनोवृत्ति से नहीं होना चाहिए। जहाँ जहाँ सम्भव हो, कांग्रेस कमिटियों को इस कार्य को हाथ में लेने के लिए तैयार होना चाहिए।

(७) कांग्रेस कमिटियों को सक्रिय बनाना। चवन्नी के सदस्यों और मण्डल कमिटियों के पास पहुंचने की कोशिश करनी चाहिए।

(८) किसानों और मजदूरों के आंदोलन को आगे बढ़ाना। बाजार दर की बढ़ती, संगठन पर रोक और मजदूर-आन्दोलन में भाग लेनेवाले जंगजू कार्यकर्त्ताओं को क्षेत्र से हटाने की कोशिशों आदि को लेकर छोटी-छोटी लड़ाइयों को जोरदार बनाना।

(९) विद्यार्थियों में कार्य। विद्यार्थियों को इस बात के लिए तैयार करना चाहिए कि मुल्क की आजादी की लड़ाई शुरु होने पर वे सामूहिक रूप में पढ़ाई छोड़कर उसमें सम्मिलित हों।

(१०) अनुशासन का पालन करते हुए रचनात्मक कार्यक्रम को पूरा करने में भाग लेना।

किन्तु, एक ओर जहाँ जयप्रकाश और उनकी पार्टी युद्ध-विरोध को ऊँचे-से-ऊँचे स्वर पर पहुँचाने और साम्राज्यवाद पर अन्तिम सफल धावा करने के लिए देश को तैयार करने के प्रयत्न में लगे थे, वहाँ, देश के दुर्भाग्य से, देश के राजनीतिक मंच पर कुछ लोग अजीब धमाचौकड़ी मचा रहे थे। महायुद्ध के पहले त्रिपुरी कांग्रेस हुई, जिसका सभापति दूसरी बार श्री सुभाष चन्द्र बोस चुने गये। सुभाषबाबू के चुने जाने में पार्टी का भी बड़ा हाथ था—पार्टी ने पूरी ताकत लगाकर डा० पट्टाभि सीतारामैया के विरुद्ध उनके विजयी होने में मदद की। किन्तु, उनके चुने जाने के बाद ही महात्माजी ने डा० पट्टाभि की हार को अपनी हार बताई और कार्य-समिति के गाँधीवादी सदस्यों ने इस्तीफे दे दिये। जयप्रकाश ने गाँधीजी और उनके अनुयायियों के इस काम को पसंद नहीं किया और एक वक्तव्य देकर मिलजुल कर काम करने की नीति पर जोर डाला। किन्तु, इस विजय के बाद श्री सुभाषबाबू के इर्दगिर्द जो लोग एकत्र हुए, वे भी गाँधीवादियों को निकाल बाहर करने पर जैसे तुले हुए थे। इस विकट परिस्थिति में त्रिपुरी कांग्रेस हुई। दोनों पक्षों की खींचतानी में मालूम होता था, अब कांग्रेस टूट कर रहेगी। पार्टी हमेशा संयुक्त मोर्चे की हिमायत करती आई थी, भला वह इस खींचातानी में क्यों पड़े? जयप्रकाश ने दोनों पक्षों में मेल कराने की पूरी कोशिश की,

लेकिन जब झगड़ा नहीं सुलझा, तो इस झगड़े से अपने को तटस्थ कर लिया ।

त्रिपुरी में गांधीवादियों की जीत हुई । त्रिपुरी के बाद जब कलकत्ता में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक हुई, जयप्रकाश ने फिर दोनों पक्षों में सुलह कराने की कोशिश की और गांधीवादी यह मान गये कि श्री सुभाषबाबू सभापति और पंडित जवाहरलाल प्रधान मंत्री रहें और पाँच वाम-पक्षी कार्य-समिति में लिए जायँ । सुभाषबाबू का सभापतित्व और जवाहर-लाल का मंत्रित्व—अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति को देखते हुए पार्टी को बहुत उपयुक्त जँचा, किन्तु सुभाषबाबू के पक्ष ने इसे स्वीकार नहीं किया । उसके बाद ही सुभाषबाबू ने फॉरवार्ड ब्लौक नाम से एक दल बनाया और देश में दौरे शुरु किये । कांग्रेस गृहयुद्ध का अखाड़ा बन गई । रामगढ़-कांग्रेस के मुकाबले में वहीं पर समझौता-विरोधी-सम्मेलन का आयोजन किया गया और नई कांग्रेस बनाने की बातें भी उठाई गईं । इस अवसर पर, मार्च १९४० में, जयप्रकाश ने एक लेख लिखकर इस परिस्थिति की गुत्थी सुलझाने की कोशिश की—

"इस समय एक विचित्र वातावरण बन गया है । राजनीतिक हवा दूषित हो गई है । तरह-तरह के सवाल कार्यकर्ताओं को परेशान कर रहे हैं । कई तरह की बातें उन्हें कही जा रही हैं । कहीं काली झण्डियाँ दिखायी जा रही हैं; तो कहीं आग लगाई जा रही है । तरह-तरह के इलजाम एक-दूसरे पर लगाए जा रहे हैं । इस बात का खतरा नजर आ रहा है कि ५४ वर्षों की सङ्कलित शक्ति आज छिन्नभिन्न न हो जाय । कुछ लोगों को यही ख्याल प्रेरित कर रहा है कि कांग्रेस को लात मारकर निकल जाने से ही ब्रिटिश साम्राज्यशाही का ध्वंस हो जायगा । कुछ लोग अभी से ही एक दूसरी कांग्रेस का स्वप्न देख रहे हैं । कुछ इसके प्रतिद्वन्द्वी स्वरूप एक नयी स्वराज्य पार्टी बनाकर आनेवाले चुनाव में खड़ा होना चाहते हैं और अगर अपना बहुमत बना सकें तो वे मन्त्रिमंडल भी कायम कर सकेंगे । कहीं हम देखते हैं कि कांग्रेस-विरोधी शक्तियों—हिन्दूसभा, मुस्लिमलीग, आदिवासी आंदोलन

"दूसरी तरफ एक और ही चित्र है। कांग्रेस मिनिस्ट्रियों के वापिस आने की तारीखें कहीं मुकर्रर हो रही हैं, कहीं केन्द्रीय सरकार के मंत्रियों के नाम तय हो रहे हैं। कहीं ब्रिटिश सरकार से समझौते की शर्तें निश्चित हो रही हैं और कहीं स्वराज्य-पंचायत (Constituent Assembly) के क्रांतिकारी रूप को विकृत कर उसे एक गोलमेज-सम्मेलन का रूप दिया जा रहा है।

"ऐसी परिस्थिति में अपना कार्यक्रम निर्धारित करना अवश्य ही कठिन है। परन्तु मुझे तो इस परिस्थिति में भी अपना फर्ज साफ दीख पड़ता है। आज से पाँच वर्ष पहले कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी इस उद्देश्य से बनाई गई कि कांग्रेस को एक नया कार्यक्रम दिया जाय जिससे साम्राज्यशाही का जल्द खात्मा हो और देश में गरीब जनता का राज्य कायम हो। पार्टी ने कांग्रेस के पुराने कार्यक्रम को नाकाफी समझा और किसान-मजदूर-संगठन का नया कार्यक्रम कांग्रेस में रखा। आज पाँच वर्ष के बाद हम देखते हैं कि कांग्रेस का वही पुराना कार्यक्रम है। यह ठीक है कि बहुत-से कांग्रेसजनों ने हमारे कार्यक्रम को स्वीकार किया और उसका कांग्रेस पर काफी असर हुआ। लेकिन हम कांग्रेस के कार्यक्रम को बदलने में असमर्थ रहे, फलतः कांग्रेस का नेतृत्व भी आज उन्हीं के हाथों में है जो उस पुराने कार्यक्रम को मानते हैं। हमें विश्वास है कि अगर हमें कुछ और समय मिलता तो हम अपने उद्देश्य को पूरा कर सकते और उसके बाद कांग्रेस की नीति हमारे हाथों में होती। लेकिन इस समय जो परिस्थिति है, उसको समझकर हमें अपना रास्ता ठीक करना है।

"आरम्भ से ही हमारे सामने एक दूसरा रास्ता (Alternative) भी था। हमने जब पार्टी बनाई, उस समय हम यह कर सकते थे कि हम कांग्रेस से निकल आते और नये प्रोग्राम के आधार पर जनता का एक दूसरा साम्राज्य-विरोधी संगठन यानी एक दूसरी कांग्रेस बनाते। लेकिन हमने ऐसा करना गलत समझा और कांग्रेस में ही रहकर उसी के रूप और कार्यक्रम को अपने साँचे में ढालने की कोशिश की। ,, इस नीति का नाम संयुक्त मोर्चा की नीति था।

"वर्तमान परिस्थिति में ऐसी कोई नई चीज नहीं हुई है जिससे हम इस नीति को बदलें। हमारे लिये दिक्कत यह हो गई कि इसके पहले कि हम कांग्रेस पर पूरा प्रभाव डाल सकें, हमारे सामने साम्राज्यशाही का मुकाबला करने का सवाल यूरोपीय युद्ध के कारण आ उपस्थित हुआ। इस समय हमारे लिए दो रास्ते हैं। या तो हम अपनी शक्ति को लेकर कांग्रेस से अलग हो जायँ और साम्राज्यशाही से लड़ाई छेड़ दें या कांग्रेस के अन्दर ही रहकर इस बात की कोशिश करते रहें कि पूरी कांग्रेस ही यह लड़ाई लड़े। मेरे ख्याल से मौजूदा हालत में पहला रास्ता अख्तियार करना घातक होगा, क्योंकि हमारी अलग लड़ाई उतनी जोरदार नहीं हो सकती जितनी कांग्रेस के द्वारा ठनी हुई लड़ाई होगी। इस समय यह निश्चित रूप से कहना कि पूरी कांग्रेस की तरफ से लड़ाई होने की कोई सम्भावना नहीं है, बहुत बड़ी भूल होगी। जबतक ऐसी लड़ाई की उमीद है, हमें कांग्रेस के मोर्चे को मजबूत रखना चाहिये और उसकी कमजोरी को दूर करना चाहिये।"

तरह-तरह की जो अफवाहें उड़ रही और तुहमतें लगाई जा रही थीं, उनमें एक यह थी कि गांधीजी और अँगरेजी सरकार से समझौते की बातें गुपचुप चल रही हैं। इस सम्बन्ध में जयप्रकाश ने एक ओर गांधीजी के आलोचकों से कहा—

"मैं उन वामपक्षवालों में नहीं हूँ जिनका विश्वास है कि महात्मा गांधी जनता से डरते हैं या वे भारतीय पूँजीपतियों के दलाल हैं और भारतीय पूँजीपतियों की ओर से ब्रिटिश सरकार के साथ कोई सौदा कर लेंगे। मेरा विश्वास है कि गांधीजी भी उसी प्रकार मुल्क की आजादी चाहते हैं जिस तरह कोई दूसरा वामपक्ष वाला चाहता है और यह आजादी वे सिर्फ स्थिर स्वार्थवालों के लिए ही नहीं, बल्कि करोड़ों की संख्या में अधिकार-वंचित जनता के लिए चाहते हैं। राजकोट-अनशन के बाद ही गांधीजी चीफ जस्टिस के फैसले के सिलसिले में दिल्ली गये हुए थे। दिल्ली में रहते हुए वे वाइसराय से भी मिले थे। मैं गांधीजी से मिलने दिल्ली गया हुआ था। अपनी बातचीत के सिलसिले में एकबार, मैंने उनसे कहा कि बहुत-से लोगों का ख्याल है कि वे संघ-योजना (Federation) के सम्बन्ध में वाइसराय से

किसी प्रकार के समझौते की बातें कर रहे हैं। गांधीजी में बहुत बड़ा आत्म-नियन्त्रण है, लेकिन मैंने देखा कि जवाब देते समय उनके चेहरे का रंग गहरा हो गया; कड़ाई के साथ, जैसा कि बोलने की उनकी आदत नहीं है, उन्होंने कहा—"जयप्रकाश, उनलोगों से कह दो कि गांधी चाहे जो कुछ भी करे, वह कभी अपने देश को बेचेगा नहीं।" अतएव मैं गांधीजी और गांधीवाद की आलोचना करनेवाले अपने साथियों से प्रार्थना करूँगा कि वे अपनी आलोचना में नीयत का कोई सवाल न उठाएँ। महात्माजी और कार्यसमिति की नीयत को दोष देकर हम अपने दावे को बेकार ही कमजोर कर लेते हैं।"

तो, दूसरी ओर उन्होंने महात्माजी और कांग्रेस के सामने यह सवाल पेश किया कि क्या ब्रिटिश सरकार की चालों में फँसकर अपना शोषण होने देना चाहिए। कांग्रेस प्रजातन्त्र और साम्राज्यवाद के नाश में विश्वास करती है। चेम्बरलेन न तो साम्राज्यवाद के विरोध का ही प्रतिनिधित्व करते हैं और न प्रजातंत्र का ही। उन्होंने यूरोप में फैसिज्म के पोषक और पिता का काम किया है और स्वयं एक बड़ी साम्राज्यवादी प्रणाली के अध्यक्ष हैं। उनके साथ समझौता करने का अर्थ यूरोप और दुनिया के दूसरे भागों में उन्हें मनमानी नीति के बरतने के लिए स्वतंत्रता देना होगा। इसका अर्थ संसार में सर्वत्र प्रजातन्त्र और स्वतन्त्रता के प्रति विश्वासघात होगा। इस प्रकार तर्क करते हुए अन्त में जयप्रकाश ने महात्माजी का महान उत्तरदायित्व बताते हुए उनके प्रति कहा—

"संसार के वर्तमान व्यक्तियों में सबसे बड़े होने के नाते महात्मा गांधीजी के कंधों पर बहुत बड़ा बोझ है। इस समय उनकी मुट्ठी में न सिर्फ ३५ करोड़ भारतीयों का ही भाग्य है, बल्कि संसार के भविष्य के भी एक बड़े अंश को बनाने या बिगाड़ने की जिम्मेवारी उनपर है। इतिहास बड़ी कड़ाई के साथ उनकी जाँच करेगा, जैसा कि वह उन सभी की करता है जिनपर संकट के समय किसी बड़े काम की जिम्मेवारी रहती है। कर्नेल हाउस ने लिखा है कि विल्सन महोदय वेल्स के जादूगर, लायड जार्ज, के प्रति कम-से-कम सशंक जरूर थे। महात्मा गांधी को वाइसराय की सचाई में विश्वास है। इसलिए उन्हें दोहरी होशियारी की जरूरत है। अगर वे चेम्बरलेन के साथ समझौता

करेंगे तो वे स्वतन्त्रता और प्रजातंत्र, शांति और न्याय के हत्यारे के साथ समझौता करेंगे। इस युद्ध के गर्भ में ऐसी ताकतें पैदा हो रही हैं जो चेम्बरलेन और जिस व्यवस्था का वे प्रतिनिधित्व करते हैं उसे खतम कर देंगी। उस मरती हुई व्यवस्था के साथ समझौता करके हम उसमें नई जान डालने की क्यों कोशिश करें ?"

किन्तु पार्टी और जयप्रकाश के लिए यह वादविवाद या तू-तू मैंमैं ही सबकुछ नहीं था। वह और उनके साथी युद्धविरोधी कार्यों को करते हुए देश को अंतिम मोर्चे के लिए तैयार करने में जीजान से लग पड़े थे। अँगरेजी सरकार इसे भला किस तरह बर्दाश्त कर सकती थी ? उनके बहुत-से साथी भिन्न-भिन्न प्रांतों में गिरफ्तार किये जाने लगे। अन्ततः जयप्रकाश को भी जमशेदपुर में किये गये एक युद्ध-विरोधी भाषण के जुर्म में रामगढ़ कांग्रेस (१९४०) के पहले ही गिरफ्तार कर लिया गया। मजिस्ट्रेट के सामने जयप्रकाश ने जो बयान दिया, वह उनके युद्ध-विरोधी-विचारों का दस्तावेज है। उसकी कुछ चमकती पंक्तियां देखिये—

"मुझपर यह दोष लगाया गया है कि मैंने युद्ध को सफल बनाने के लिए जिन अस्त्र-शस्त्रों और दूसरे जरूरी सामानों की आवश्यकता है उनके बनने में रोड़े अँटकाने की कोशिश की है और हिन्दोस्तान की रक्षा के लिए जनता के जिस रुख और मनोवृत्ति की जरूरत है उसपर विरोधी प्रभाव डालने की चेष्टा की है। मैं इस दोष को सानन्द स्वीकार करता हूँ।

"क्योंकि इस दोष को मैं अपराध नहीं समझता बल्कि अपना कर्त्तव्य समझता हूँ और उसके लिए मिलनेवाली सजा को हँसहँस कर झेलने को तैयार हूँ। तलवार की ताकत पर कायम रहनेवाली विदेशी हुकूमत के कानून इसको जुर्म समझते हैं, इसकी मुझे कोई परवाह नहीं। इन कानूनों का उद्देश्य उस राष्ट्रीय भारत के लक्ष्यों के सर्वथा विपरीत है जिसका मैं एक तुच्छ प्रतिनिधि हूँ। यह स्वाभाविक ही है, हमारी मुठभेड़ उस कानून से हो।

"मेरा देश इस महायुद्ध में किसी भी रूप में हिस्सा लेने को तैयार नहीं है, क्योंकि वह जर्मन नाजीवाद और अँगरेजी साम्राज्यवाद दोनों को अपना दुश्मन समझता है। वह साफ देख रहा है कि दोनों तरफ के लोग इस युद्ध में

विजय और प्रभुत्व, शोषण और अत्याचार के स्वार्थपूर्ण गर्हित उद्देश्य के लिए लड़ रहे हैं। अँगरेज इसलिए नहीं लड़ रहे हैं कि वे उस नाजीवाद का नाश चाहते हैं जिसे उन्होंने पावपोस कर बढ़ाया है, बल्कि वे अपने एक प्रतिद्वंद्वी को कुचल देना चाहते हैं जो अब उनसे आँखें मिलाने की जुर्रत कर रहा है। वे संसार में अपनी प्रभुता बनाये रखना चाहते हैं और अपनी साम्राज्यवादी शक्ति और गौरव पर आँच नहीं आने देना चाहते हैं। जहाँ तक भारत से सम्बन्ध है, अँगरेज अपने भारतीय साम्राज्य को कायम रखने के लिए लड़ रहे हैं।

"यह साफ है कि भारत ऐसी लड़ाई से कोई सम्बन्ध नहीं रख सकता। कोई भी भारतीय अपने देश के साधनों का उपयोग साम्राज्यवाद की रक्षा करने के लिए होने देना नहीं चाहेगा, क्योंकि ऐसा होने देना अपनी गुलामी को जंजीर को आप ही मजबूत बनाना है। राष्ट्रीय भारत की एकमात्र संस्था के रूप में कांग्रेस ने देशवासियों का ध्यान इस पवित्र कर्त्तव्य की ओर आकृष्ट किया है। कांग्रेस के एक तुच्छ सेवक की हैसियत से मैंने उस कर्त्तव्य की पूर्ति मात्र करने की कोशिश की है।

"इसके विपरीत अँगरेजी सरकार ने भारतीयों की सम्मति को बेरहमी से ठुकरा कर हिन्दोस्तान को इस युद्ध में शामिल होने की घोषणा कर दी है और हमारे स्पष्ट विरोध पर जरा भी ध्यान नहीं देकर हमारे देश के धन-जन और सामानों का उपयोग कर रही है। यह हमारे देश पर वैसा ही क्रूर आक्रमण है जैसा जर्मनी का पोलैंड पर। हिन्दोस्तान इस आक्रमण का सामना करेगा ही। आज हर हिन्दोस्तानी का यह देशभक्तिपूर्ण कर्त्तव्य हो गया है कि वह साम्राज्यवादी उद्देश्यों के लिए की जानेवाली हमारे देश के धन-जन के उपयोग की चेष्टा का खुलेआम विरोध करे। इसलिए मुझपर युद्ध में बाधा डालने का जो दोष लगाया गया है, वह तो मेरे देशभक्तिपूर्ण कर्त्तव्य का पालन मात्र है। जिसे देशभक्त भारतीय अपना कर्त्तव्य समझते हों, उसे अपराध करार देकर यह अँगरेजी सरकार अपने साम्राज्यवादी रूप का आप ही ढिंढोरा पीट रही है।

"मैं कह नहीं सकता कि मेरे इस व्याख्यान ने अपने उद्देश्य में कहाँतक

सफलता पाई है। किन्तु मुझे सबसे बड़ी खुशी तब होगी जब मुझे यह मालूम हो जाय कि मेरे इस व्याख्यान ने सचमुच युद्ध के सफलतापूर्वक संचालन करने में बाधा पहुँचाई है। अपनी इस सफलता के लिए मैं सबसे बड़ी सज़ा भी हँसते-हँसते भुगतने को तैयार हूँ।

"भारत की रक्षा में बाधा डालने का जो दोष मुझपर लगाया गया है, इस इलज़ाम पर क्या कहा जा सकता है भला! लेकिन याद रखिये, गुलाम अपनी जंजीर की रक्षा करने के लिए बाध्य नहीं है। उसका कर्तव्य तो उसे इस बात के लिए बाध्य करता है कि वह उस जंजीर को तोड़ डाले। जब हम आज़ादी हासिल कर लेंगे, तो दुनिया देख लेगी, हम अपने देश की रक्षा किस शान से करते हैं!"

६. वामपक्ष की एकता

पार्टी के जन्म के समय से ही जयप्रकाश की यह आकांक्षा रही कि देश में जितनी समाजवादी पार्टियाँ हैं उन्हें मिलाकर साथ ले चला जाय एवं कांग्रेस में जितने लोग उग्रनीति के हामी हैं, उन्हें पार्टी में लाया जाय या उनसे भी हिलमिल कर काम किया जाय। इसके लिए जयप्रकाश लगातार कोशिशें करते रहे, किन्तु, ये कोशिशें इस तरह बेकार गईं कि आज जब कोई उनके सामने इस सवाल को रखता है, तो उनकी भवों पर बल पड़ जाते हैं, वह झनखा कर मुँह फेर लेते हैं। समाजवादियों या वाम-पक्षियों की एकता वह नहीं चाहते ऐसी बात नहीं है, किन्तु, किसी फारसी कवि के कथनानुसार, जिसे बार-बार आजमाया जा चुका है उसे फिर आजमाना, वह मूर्खता की पराकाष्ठा समझते हैं।

जिस समय कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी कायम हुई, देश में चार पार्टियाँ ऐसी थीं जो अपने को समाजवादी बतलाती थीं। वे थीं—कम्युनिस्ट पार्टी, रायग्रुप, पंजाब सोशलिस्ट पार्टी और बंगाल लेबर पार्टी। हम रायग्रुप से ही शुरू करें।

श्री एम० एन० राय के बारे में पीछे लिखा जा चुका है। कोमिन्टर्न से निकाले जाने के बाद वह १९३१ में हिन्दोस्तान आये और कम्युनिस्ट पार्टी के अन्दर उनके जो समर्थक थे उन्हें लेकर रायग्रुप कायम किया।

इस ग्रूप के कायम होने के थोड़े दिनों बाद ही वह गिरफ्तार कर लिये गये और उनपर प्रशंसात्मक लेख लिखकर पं० जवाहरलाल नेहरू ने उनका रुतबा और बढ़ा दिया। जब कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी कायम हुई, राय साहब जेल में ही थे। किन्तु इस ग्रूप के कुछ प्रमुख नेता प्रारम्भ से ही इस पार्टी के संगठन में दिलचस्पी लेते रहे। फलतः उनके लिए पार्टी ने अपना दरवाजा उदारतापूर्वक खोल दिया और कुछ महीनों के अन्दर ही प्रायः पूरा ग्रूप पार्टी में शामिल हो गया। जिस समय वे लोग शामिल हुए, उन्होंने अपनी पूरी सहमति पार्टी की रीतिनीति से प्रगट की थी। किन्तु, थोड़े दिनों के बाद ही, पार्टी की मेरठ-कान्फ्रेंस के समय, इन्होंने मतभेद दिखाना प्रारम्भ किया। इस ग्रूप द्वारा तैयार हुआ एक कागज मिला था जिसमें कहा गया था कि इस पार्टी को एक समाजवादी पार्टी न होकर कांग्रेस के एक वामपक्षी मंच के रूप में काम करना चाहिये। जब यह कागज पार्टी की कार्य-समिति में पेश किया गया, तो रायग्रूप के सदस्यों ने इस कागज से अपनी असहमति प्रगट की और अपनी पूरी भक्ति पार्टी के प्रति दिखलाई। इसके बाद भी कान्फ्रेंस में जब पार्टी की आफिसियल थीसिस पेश की गई तब रायग्रूप के कुछ सदस्यों ने उसमें संशोधन करना चाहा, किन्तु, वे इसमें बिलकुल नाकामयाब रहे। सिवा इस एक उदाहरण के रायग्रूप हमेशा पार्टी के साथ रहा, जब तक कि स्वयं राय साहब जेल से छूट कर नहीं आये।

१९३६ के अन्त में राय साहब जेल से छूटे और प्रारम्भ में उन्होंने पार्टी से पूरी सहानुभूति ही नहीं प्रगट की, बल्कि उसमें शामिल होने की बातचीत भी वह चलाने लगे। किन्तु, ज्योंज्यों दिन बीतते गये, उनका रुख बदलता गया। "कांग्रेस के अन्दर कोई पार्टी नहीं होनी चाहिये" "कांग्रेस कमिटियों से अलग कोई किसानसभा नहीं बननी चाहिये" ऐसे-ऐसे उनके वक्तव्य निकलने लगे, जो पार्टी की रीतिनीति के बिल्कुल प्रतिकूल थे। उसके बाद ही असेम्बलियों का चुनाव आया और फिर मिनिस्ट्री स्वीकार की जाय या नहीं, इसके फैसले के लिए दिल्ली में कन्वेन्शन बुलाई गई। पार्टी कांग्रेस द्वारा मंत्रिमंडल बनाये जाने के खिलाफ थी; राय साहब

की कम्युनिस्ट पार्टी भी तोड़ दी गई और वे लोग अब पार्टी के साथ मिलकर काम करने को तैयार हुए। क्योंकि उनलोगों का यह रुख मालूम हुआ, जयप्रकाश ने अपनी पार्टी का दरवाजा उनके लिए खोल दिया और वे बड़ी तादाद में पार्टी में शामिल हुए। उनके चार सदस्यों को अपनी कार्य-समिति में लेकर पार्टी ने अपनी सदिच्छा का पक्का सबूत दिया।

किन्तु ज्योंही कम्युनिस्टों की तायदाद पार्टी में बढ़ने लगी, कई जगहों से उनके कारनामों के बारे में चिन्ताजनक रिपोर्टें आने लगीं। आन्ध्र की शिकायतें सबसे प्रमुख थीं; कलकत्ता, बम्बई और कानपुर के मजदूर-क्षेत्रों से भी शिकायतों का तांता लगने लगा। इन रिपोर्टों से जयप्रकाश बहुत ही चिन्तित हुए, किंतु उन्हें सबसे बड़ा सदमा तो तब लगा जब पार्टी की कार्य-समिति की पटना की बैठक (१९३७) में कम्युनिस्टों का एक पर्चा पेश किया गया, जिसमें लिखा था कि कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी किसी भी हालत में समाजवादी पार्टी नहीं है, हिन्दोस्तान में सिर्फ एक ही समाजवादी पार्टी है और वह है कम्युनिस्ट पार्टी।

इस पर्चे के बाद स्वभावतः ही यह निर्णय दिया गया कि अब से कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्यों के लिए पार्टी का दरवाजा बन्द कर दिया जाय। हाँ, पुराने सदस्यों को रहने दिया गया। किन्तु इस चेतावनी का असर कम्युनिस्टों पर कुछ नहीं हुआ। वे चुपचाप अपने सदस्यों को पार्टी में शामिल करते रहे और जब पार्टी की कान्फ्रेंस (१९३८) लाहौर में हुई तब एक बार पूरी ताकत के साथ उन्होंने पार्टी पर कब्जा कर लेने की चेष्टा की। कार्य-समिति के लिए पार्टी ने जो आफिसियल लिस्ट पेश की थी, उसके मुकाबले उन्होंने दूसरी लिस्ट पेश की—किन्तु वे बुरी तरह हारे।

इस हार के बाद भी उनके प्रयत्न जारी रहे, जिसके सबूत में श्री मसानी ने कम्युनिस्टों का एक गुप्त सरकुलर प्रकाशित किया, जिसमें ब्योरेवार यह बताया गया था कि किस प्रकार कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी पर पूरा कब्जा किया जा सकता है। इस सरकुलर के बाद अब इसके सिवा कोई चारा नहीं रह गया था कि कम्युनिस्टों को निकाल बाहर किया जाय। किन्तु जयप्रकाश को अब भी उनसे कुछ आशा बनी हुई थी और उन्होंने उनसे समझौते की बातें नये सिरे से शुरू कीं। इस नीति से असन्तुष्ट होकर सर्वश्री अच्युत

पटवर्धन, मसानी, लोहिया और कमलादेवी ने पार्टी की कार्य-समिति से इस्तीफा दिया। इस इस्तीफे को कम्युनिस्टों ने अपनी विजय समझा, किन्तु, उनके 'फैसले का दिन' भी नजदीक आ रहा था, काश वे यह समझ पाते !

ज्योंही द्वितीय साम्राज्यवादी महायुद्ध प्रारम्भ हुआ (१९३९) कम्युनिस्ट पार्टी ने एक नई थीसिस जारी की, जिसमें यह स्पष्ट उल्लेख किया गया था कि कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी रूस की मेन्शेविक पार्टी की तरह है—यह क्रान्ति विरोधी पार्टी है, इसका खात्मा होना आवश्यक है ! इधर कुछ दिनों से कम्युनिस्टों ने फॉरवार्ड ब्लॉक से दोस्ती गाँठ रखी थी, इस थीसिस में एक दुलत्ती उनपर भी थी, उन्हें 'अग्रगामी' के बदले 'पीछे भागनेवाला दल' घोषित किया गया था और कांग्रेस तो फिर 'अँगरेजों की दासी' बन ही गई थी। इस थीसिस के बाद अब सोच-विचार करने की भी जरूरत नहीं रह गई थी; इधर जयप्रकाश भी जेल चले गये थे, फलतः रामगढ़-कांग्रेस के अवसर पर जब पार्टी की कार्य-समिति (१९४०) बैठी, तो उसने कम्युनिस्टों को निकाल बाहर करने का प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकार किया।

पार्टी से निकाले जाने के बाद कम्युनिस्टों ने १९४२ की अगस्त क्रान्ति के अवसर पर देश को कितना धोखा दिया, अँगरेजों का कैसा साथ दिया—इसकी चर्चा विस्तार से करने की आवश्यकता नहीं। जयप्रकाश जब हजारीबाग जेल से निकल भागे और क्रान्ति का संचालन अपने हाथों में लिया, तब कम्युनिस्ट पार्टी के प्रहार का मुख्य लक्ष्य वही बने और उन्हें पकड़ कर जिन्दा जलाने के लिए अँगरेजों को उसकाने में उसने कोई कोर-कसर उठा नहीं रखी। जयप्रकाश तो पकड़े जाने पर भी नहीं जलाये जा सके, हाँ, अपने पाप की आग में कम्युनिस्ट पार्टी खुद ही जल मरी—आज आप-हम उसके नाम पर जो कुछ देखते हैं, वह उस पार्टी का चिताभस्म मात्र है, जो आगे की आँधी में सदा के लिए उड़ जानेवाला है।

अन्त में हम कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के साथ श्री सुभाषचन्द्र बोस और फॉरवार्ड ब्लॉक के सम्बन्ध को भी संक्षेप में देख लें।

जिस समय पार्टी बनी, श्री सुभाषचन्द्र बोस बीमारी के कारण यूरोप

कुछ शर्तों के साथ उसके पक्ष में थे। फलतः पार्टी को उनके खिलाफ वोट देने पड़े। बस, उनका पारा गर्म हुआ और उन्होंने अपने अनुयायियों को पार्टी से अलग होने का फर्मान दे डाला। जयप्रकाश इसपर लिखते हैं— "शायद उन्हें अब अच्छी तरह मालूम हो गया था कि कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी उनके हाथों का खिलौना नहीं बन सकती; न एक ऐसा मंच ही बन सकती है जिसपर चढ़ कर वह अपनी इच्छित प्रसिद्धि का छोर छू सकें।"

पार्टी से सम्बन्ध-विच्छेद हो जाने के बाद रायमूप ने जो-जो कारनामे किये, वह जगजाहिर है। त्रिपुरी में श्री सुभाषचन्द्र बोस से मिलकर 'सामानान्तर नेतृत्व' के सिद्धान्त की उन्होंने आजमाइश की, फिर कांग्रेस से निकल कर रैडिकल पार्टी बनाई जिसका मुख्य काम हुआ भारत-सरकार से रुपये ऐंठ कर मजदूरों को युद्ध में अँगरेजों को सहायता देने और अपने देश के साथ बगावत करने के लिए बरगलाना। वह मजदूरों को कितना बरगला सके, यह इतिहास के सामने है; किन्तु उनका पाकिट खूब गरम हुआ और उनके कुछ अनुयायी बड़े-बड़े सरकारी ओहदे पा सके, जिनका वे सपना भी नहीं देख सकते थे।

बंगाल की लेबर पार्टी ने शुरू से ही पार्टी के खिलाफ रुख रखा। किन्तु, पार्टी ने उसे हमेशा मिलाने की कोशिश की और अन्ततः वह सफल हुई। बंगाल कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी और बंगाल लेबर पार्टी के बीच एक सममौता हुआ और मिलजुल कर काम करने का तय किया गया। इसके लिए एक संयुक्त कमिटी भी बनाई गई। किन्तु, थोड़े दिनों के बाद लेबर पार्टी कम्युनिस्ट पार्टी से मिल गई और फिर वहाँ से हट कर फौरवार्ड ब्लौक के साथ उसने गठबंधन किया। अब वह पार्टी बिल्कुल ही खतम हो चुकी है और उसके नेता श्री निहारेन्दुदत्त मजुमदार सात घाटों का पानी पीकर आजकल बंगाल की कांग्रेस के शीतल जल में अवगाहन कर रहे हैं।

पंजाब सोशलिस्ट पार्टी मुख्यतः पंजाब की 'नौजवान भारत सभा' के सदस्यों से बनी थी। इसी सभा में सरदार भगत सिंह थे। यह पार्टी कांग्रेस के प्रति अच्छा रुख नहीं रखती थी, जिसके चलते पार्टी के साथ काम करने में कुछ सैद्धान्तिक कठिनाइयाँ उपस्थित होती रहीं; किन्तु, धीरे-

धीरे उसके सदस्य पार्टी में सम्मिलित होते गये और कुछ दिनों में पंजाब सोशलिस्ट पार्टी पंजाब कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी में विलीन हो गई।

कम्युनिस्ट पार्टी की कथा काफी लम्बी और धोखाधड़ी से भरी हुई है। ज्योंही कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी का जन्म हुआ, कम्युनिस्टों ने इस पार्टी को "वामपक्ष की आड़ में पूँजीपतियों की चालबाजी" कह कर पुकारना शुरू किया और इसे हिटलर के 'नाजीवाद का सगा-सम्बन्धी' कहने से भी बाज नहीं आये। हिन्दोस्तानी कम्युनिस्टों की ही यह हालत नहीं थी; उनके आका, इंगलैंड की कम्युनिस्ट पार्टी के व्याख्याकार जनाब पामदत्त साहब ने भी ऐसा ही फर्मान जारी किया था। उस समय कोमिन्टर्न के सामने उसकी छठी कांग्रेस का फतवा था, जिसमें समाजवाद के नाम पर काम करनेवाली हर पार्टी को तोड़ना और बदनाम करना संसार भर के कम्युनिस्टों के लिए एक धार्मिक कर्त्तव्य समझा गया था। इसी फतवे का नतीजा इटली में मुसोलिनी और जर्मनी में हिटलर का अभ्युदय हुआ। किन्तु जब यूरोप पर इन दोनों तानाशाहों का दबदबा फैला, तो कोमिन्टर्न के आफीमचियों की नींद टूटी और अपनी सातवीं कांग्रेस में उन्होंने पिछले फतवे को वापस लिया, लेकिन तबतक तो संसार में समाजवाद के लिए काफी अनर्थ हो चुका था।

और, अपने जन्मकाल से ही कम्युनिस्ट पार्टी की गालियाँ सुनते हुए भी समाजवाद के व्यापक हित पर ध्यान देते हुए और यह समझते हुए कि एक दिन यह अपनी गलती महसूस करेगी, कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी उससे मेलमिलाप की चेष्टा करती रही। पहले मजदूर-क्षेत्र में एक समझौता हुआ। उस समझौते की शर्तों को भी उसके सदस्य बार-बार तोड़ते रहे—किन्तु पार्टी सब बर्दाश्त करती जाती थी और जयप्रकाश स्वयं उसके नेताओं से मिलकर इस चेष्टा में लगे थे कि वे लोग अपनी गल्ती महसूस करें। उन दिनों कम्युनिस्ट पार्टी गैरकानूनी थी, तोभी जयप्रकाश अपने पर खतरा लेकर उनके नेताओं से सम्पर्क रखते और प्रायः हो उनके लिए शरणस्थली का प्रबन्ध करते। जयप्रकाश की इस नीति से पार्टी के कुछ सदस्य असन्तुष्ट भी रहते; किन्तु जयप्रकाश उन्हें भी समझाते और अपना प्रयत्न जारी रखते।

इसी दरम्यान मास्को से कोमिन्टर्न की नई नीति की खबर हिन्दोस्तान

में थे। यहीं से उन्होंने 'इन्डियन स्ट्रगल' नामक एक पुस्तक प्रकाशित कराई थी, जिसको लेकर हिन्दोस्तान में बड़ी चर्चा चली; क्योंकि उस पुस्तक में फासिज्म की प्रशंसा थी। गोरे अखबार उस प्रशंसा को लेकर उन्हें 'फासिस्ट' भी कहने लगे थे। बीमारी से कुछ अच्छे होने के बाद जब सुभाष बाबू हिन्दोस्तान लौटे, तब पार्टी की ओर से श्री मसानी उनसे मिले और समाजवाद के बारे में बातें कीं। सुभाष बाबू ने अपने को समाजवाद के पक्ष में बताया और कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी को हर तरह से सहायता पहुँचाने का वचन दिया। जब वह हरिपुरा-कांग्रेस का अध्यक्ष चुने गये, तब अपने भाषण में उन्होंने पार्टी की खुल कर प्रशंसा की। पार्टी की ओर से सामाजवादी साहित्य के प्रकाशन का एक आयोजन किया गया, तो उसके संपादक-मंडल में उन्होंने अपना नाम भी दिया।

हरिपुरा के बाद त्रिपुरी में कांग्रेस होने जा रही थी। उस समय की स्थिति देख कर, खासकर मुस्लिम लीग की तरक्की पर चिन्ताशील होने के कारण, पार्टी चाहती थी कि मौलाना अबुल कलाम आजाद को राष्ट्रपति बनाया जाय। किन्तु मौलाना को मालूम हुआ कि सुभाष बाबू फिर राष्ट्रपति होना चाहते हैं, अतः उन्होंने खड़ा होने से इनकार कर दिया। अब राष्ट्रपतित्व के लिए दो ही उमीदवार रह गये—सुभाष बाबू और डा० पट्टाभि सीतारामैया। इन दोनों में सुभाष बाबू को ही पार्टी वोट दे सकती थी, फलतः जयप्रकाश ने वक्तव्य निकाल कर पार्टी-सदस्यों को हिदायत की कि पार्टी का एक-एक वोट सुभाष बाबू को ही मिले। चुनाव में सुभाष बाबू जीत गये। इस जीत को वामपक्ष ने अपनी जीत समझा और इसपर खुशियाँ मनाईं।

किन्तु, चुनाव खतम होते ही एक अजीब स्थिति पैदा हो गई। एक ओर गांधीजी ने डा० पट्टाभि की हार को अपनी हार मान ली और सरदार पटेल, राजेन्द्र बाबू आदि ने कार्य-समिति से इस्तीफे दे दिये। तो दूसरी ओर वामपक्ष के नाम पर सुभाष बाबू के इर्दगिर्द ऐसे लोग जमा होने लगे, जिनकी कार्य-पद्धति और राजनीतिक ईमानदारी पर पूरा भरोसा नहीं किया जा सकता था। देखा मालूम होता था कि कांग्रेस के दो टुकड़े होने जा रहे हैं। जयप्रकाश

अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति को देखते हुए समझ रहे थे कि निकट भविष्य में ही एक संग्राम होने वाला है और इस संग्राम के अवसर पर कांग्रेस में फूट रहना देश के लिए बड़ा घातक होगा। अतः वह कभी दौड़ कर गांधीजी के पास जाते रहे और कभी सुभाष बाबू के पास, कि किसी तरह मिलजुल कर काम किया जा सके। किन्तु, दोनों ही दल अपनी-अपनी जगह पर अटल बैठे थे। गांधीजी त्रिपुरी कांग्रेस में आये तक नहीं, राजकोट में अनशन शुरू कर दिया। इधर सुभाष बाबू बीमार पड़ गये; जिससे उनसे भी पूरी बातें करना मुश्किल हो चला था। इस स्थिति में पार्टी ने यह तय किया कि इस झगड़े से तटस्थ ही रहा जाय।

त्रिपुरी कांग्रेस में पार्टी ने तटस्थता की जो नीति अख्तियार की, उसको लेकर तरह-तरह के विवाद खड़े हुए। पार्टी के सदस्य भी इस नीति के औचित्य को पहली नजर में नहीं समझ सके, फलतः कुछ ने बड़ा ही क्रोध प्रगट किया। किन्तु धीरे-धीरे पार्टी की इस तटस्थता की नीति की बुद्धिमानी प्रगट हुई और आज तो विरोधी भी स्वीकार करते हैं कि पार्टी ने उन दिनों कांग्रेस को टुकड़ों में बँटने से बचाकर देश के लिए महान उपकार का काम किया।

जयप्रकाश इसके बाद भी दोनों दलों में समझौता कराने की चेष्टा कर रहे थे और जब कलकत्ते में अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटी की बैठक हुई, ऐसा मालूम होने लगा, जयप्रकाश का प्रयत्न सफल होकर रहेगा। गांधीजी के अनुयायियों ने यह मान लिया कि कांग्रेस का अध्यक्ष यदि सुभाष बाबू बने रहें, तो वामपक्ष के तीन और सदस्यों को कांग्रेस-कार्य-समिति में रखा जाना वे मंजूर कर लेंगे और पं० जवाहरलाल नेहरू को प्रधान मंत्री बनाये जाने पर भी उन्हें उज्र नहीं होगा। आगामी संग्राम का ख्याल करते हुए सुभाष बाबू की अध्यक्षता, पं० जवाहर लाल नेहरू का प्रधान मंत्रित्व और तीन नये वाम पक्षियों का कांग्रेस-कार्य-समिति में लिया जाना—पार्टी ने देश के कल्याण के लिए बहुत ही उपयुक्त समझा। किन्तु, दुर्भाग्यवश सुभाष बाबू के अनुयायियों ने इसे मंजूर नहीं किया। सुभाष बाबू ने इस्तीफा दिया और श्री राजेन्द्र प्रसाद जी कांग्रेस के नये अध्यक्ष बनाये गये। कांग्रेस-

कार्य-समिति में हमेशा पार्टी के दो सदस्य रहते आये थे, किन्तु, इसबार राजेन्द्र बाबू की कार्यसमिति में अपने सदस्यों का रखा जाना पार्टी ने पसंद नहीं किया। यहाँ भी पार्टी ने फिर त्रिपुरीवाली अपनी तटस्थता की नीति कायम रखी।

इसके बाद ही श्री सुभाषचन्द्र बोस ने फौरवार्डब्लौक का संगठन किया और देश भर में दौरे करके वह कांग्रेस के प्रति बगावत की भावना उभाड़ने लगे। त्रिपुरी के बाद रामगढ़ में कांग्रेस हो रही थी। कांग्रेस के अवसर पर ही रामगढ़ में ही उन्होंने समझौता विरोधी-सम्मेलन का आयोजन किया और वहाँ बड़े ही शोरगुल में 'जंगे आजादी छेड़े दिलाम' की घोषणा की। 'आजादी की लड़ाई छेड़ दो'—यह नारा नौजवानों को खूब ही पसंद आया। किन्तु, उन्हें निराशा तब हुई, जब रामगढ़ में आजादी की लड़ाई छेड़ कर सुभाष बाबू कलकत्ता पहुँचे और वहाँ कलकत्ता कार्पोरेशन के चुनाव में अपनी पार्टी के लिए गोटियाँ बैठाने लगे। अंततः जंगे आजादी छेड़ी भी गई, तो उसका रूप हुआ—कलकत्ता के 'ब्लैक हॉल' पर हथौड़ा लेकर जाना और अपने को गिरफ्तार कराना।

इतने पर भी सुभाष बाबू के प्रति जयप्रकाश के मन में कोई दुर्भावना घर न कर सकी और जब वह हजारीबाग जेल से छूटे (१९४१) तो कलकत्ता जाकर उनसे भेंट की और फिर मिलजुल कर काम करने के लिए उनके सामने प्रस्ताव रखा। तब तक कांग्रेस भी लड़ाई की ओर कदम बढ़ा रही थी और बहुत संभव था कि अँगरेजी साम्राज्यवाद के खिलाफ हिन्दोस्तान का एक संयुक्त मोर्चा बन पाता और उसे हिन्दोस्तान से विदाई लेनी पड़ती। किन्तु, कलकत्ता के बाद जब जयप्रकाश बम्बई पहुँचे, वहीं फिर गिरफ्तार कर लिये गये; उधर सुभाष बाबू ने भी स्वदेश छोड़कर छद्मवेश में विदेशों के लिए प्रस्थान कर दिया।

हजारीबाग जेल से निकल भागने के बाद जब जयप्रकाश को मालूम हुआ कि सुभाष बाबू आजाद हिन्द फौज का संगठन कर बर्मा की राह से हिन्दोस्तान आ रहे हैं, तो उनसे संपर्क कायम करने को उन्होंने आसाम के रास्ते से अपना एक आदमी उनके पास भेजने की कोशिश की। जयप्रकाश

ने उन दिनों आजादी के सैनिकों के नाम जो दूसरा खत प्रकाशित किया था, उसमें सुभाष बाबू और उनके कार्यों के बारे में लिखते हुए यों कहा था—

"शायद आपको मालूम हो, श्री सुभाषचन्द्र बोस ने शोनान (सिंगापुर) में एक अस्थायी स्वतंत्र भारतीय सरकार कायम की है जिसे जापान की सरकार ने मंजूर कर लिया है। उन्होंने 'आजाद हिन्द फौज' के नाम से एक सेना भी संगठित की है, जो दिन-दिन बढ़ती जा रही है। ये घटनायें हमारे लिए बहुत महत्व की हैं।......यह आसान है कि श्री सुभाष को देशद्रोही (Quisling) कह दिया जाय। जो लोग खुद देशद्रोही हैं, वे आज आसानी से उन्हें गालियाँ दे सकते हैं। लेकिन, राष्ट्रीय भारत उन्हें एक ज्वलंत देशभक्त के रूप में जानता है, जिसने हमेशा अपने को देश की आजादी की लड़ाई की अगली कतार में रखा है। यह सोचा भी नहीं जा सकता है कि उनके ऐसा आदमी किसी भी हालत में अपने देश को बेचेगा।"

फिर, जबसे जयप्रकाश आगरा जेल से छूटकर आये हैं, अपने व्याख्यानों में हमेशा ही 'नेताजी' श्री सुभाषचन्द्र बोस और उनकी 'आजाद हिन्द फौज' की मुक्तकंठ से प्रशंसायें की हैं। किन्तु, यह बात तो सर्वविदित है कि फौरवार्ड ब्लौक जिस उद्देश्य से कायम किया गया था, वह पूरा हो चुका। साथ ही, यह भी स्पष्ट है कि आदमी वहमों और रूढ़ियों का भी कम शिकार नहीं है, फलतः किन्हीं दो दलों को मिला देना बहुत ही मुश्किल काम है। इस मेलमिलाप का जो तजर्बा जयप्रकाश ने बारह वर्षों में हासिल किया है, उसे देखते हुए अब वह जिस नतीजे पर पहुँचे हैं, उसे उन्होंने 'आजादी के सैनिकों के नाम' लिखे गये अपने तीसरे खत में यों बतलाया है—

"संगठन के सवाल के साथ ही वामपक्ष की एकता का सवाल भी उठता है। मेरे ख्याल से इस बारे में लोगों में बहुत भ्रम फैला हुआ है। वामपक्ष की एकता का सवाल संसार के सबसे ज्यादा उलझन भरे सवालों में से है। यदि वामपक्ष की एकता का मानी सभी वामपक्षी पार्टियों की एकता से हो, तो मेरे विचार से यह एक बिल्कुल असंभव बात है।..........संसार भर के वामपक्षी आन्दोलनों का अनुभव भी यही है कि वामपक्षी पार्टियाँ कभी भी मिलकर एक न हो सकीं और सिवा खास काम के लिए खास मौकों को छोड़

गाँधीजी एवं नेहरू जयप्रकाश की जितनी प्रशंसा करें, हमारे वामपक्षी दोस्त तो उनसे जलेभुने थे। जब जयप्रकाश दो नौ महीने की सजा लेकर जयप्रकाश हजारीबाग जेल पहुँचे, तो, वहाँ जो पहले ही पहुँच चुके थे, उन कम्युनिस्ट और फौरवार्ड ब्लाक के 'पुराने' साथियों ने उनका जो स्वागत किया, उसे क्या वह कभी भूल सकेंगे? स्वामी सहजानन्दजी भी वहाँ पहुँच चुके थे। *उन्होंने तो जयप्रकाश से बोलना तक बन्द कर दिया था।*

इन लोगों के रोष का एक ही कारण था—क्यों नहीं जयप्रकाश उनकी ही तरह कांग्रेस को गालियाँ देते, गाँधीजी को क्रान्तिविरोधी समझते और उनलोगों के *सुर-में-सुर मिला कर राष्ट्रीय संग्राम के नाम पर डेढ़ चावल की खिचड़ी अलग पकाते?* जो ऐसा नहीं करे, उसे भी क्रान्तिविरोधी क्यों नहीं मान लिया जाय? और उसके साथ हर बदसलूकी करने में हर्ज ही *क्या है?*

किन्तु जयप्रकाश इन बातों से न ऊबनेवाले थे, न घबरानेवाले। उन्होंने अपना वही शांत, सौम्य स्वभाव और व्यवहार रखा। धीरे-धीरे उनके साथी भी वहाँ पहुँचने लगे। जयप्रकाश ने राजनीति, अर्थशास्त्र और विज्ञान के क्लास खोल दिये। थोड़े दिनों में ही वे सब भी उनके निकट आने और शिष्यत्व स्वीकार करने लगे, जो उन्हें खरीखोटी सुनाने में भी नहीं हिचकते थे।

जयप्रकाश की 'प्रोफेसरी' शान से चल रही थी, लेकिन, वह इतने से ही सन्तोष करनेवाले नहीं थे। बाहर से सम्पर्क रखने का गुप्त आयोजन उन्होंने किया और थोड़े दिनों के अन्दर ही उनके खत तो बाहर के साथियों को नहीं मिल जाया करते, उनके लेख भी अखबारों में निकलने लगे। "एक कांग्रेस सोशलिस्ट" के नाम से 'सर्चलाइट', 'नेशनल हेरल्ड', 'बाम्बे क्रानिकल' आदि प्रमुख पत्रों में छपे ये लेख किसके लिखे होते हैं—यह बात वे सभी जानते थे जिन्हें जानना चाहिये।

यही नहीं, जेल में रहते हुए इस बार उन्होंने *कांग्रेस-नेताओं से भी* अपना सम्पर्क रखा। फ्रांस के पतन के बाद जब कांग्रेस ने अंगरेजी साम्राज्यवाद से *समझौता कर 'राष्ट्रीय सरकार' बनाने का निर्णय किया*, तो उसके विरोध में उन्होंने जवाहरलाल जी को एक जबर्दस्त खत भेजा और गाँधीजी

के कानों में भी अपनी नाराजी पहुँचाने का प्रयत्न किया। उस समय सुभाष बाबू अनशन के बाद जेल से बाहर किये गये थे—उनके पास भी जयप्रकाश ने एक खत भेजा।

सजा पूरी होने पर '१९४० के अन्त में' जयप्रकाश हजारीबाग जेल से रिहा हुए। रिहा होने के पहले ही वह तय कर चुके थे कि अबकी निकलने के बाद वह अपने को गिरफ्तार नहीं होने देंगे—ज्यों ही ऐसा मौका देखेंगे, झट रूपोश हो जायँगे।

उस समय गाँधीजी का व्यक्तिगत सत्याग्रह चल रहा था। जयप्रकाश ने सोचा, सरकार तबतक मुझे गिरफ्तार नहीं करेगी, जबतक मैं खुलेआम कोई कानून—चाहे व्याख्यान के रूप में ही सही—नहीं तोड़ूँ। फलतः वह देश के प्रमुख स्थानों में घूम कर अपने साथियों को सबकुछ समझा-बुझा देना चाहते थे और फिर कुछ दिनों के बाद अपने को अन्तर्धान कर देने का निश्चय कर चुके थे। जेल से निकलने के बाद वह गाँधीजी से मिले, फिर सुभाष बाबू से। सुभाषबाबू को वह फिर कांग्रेस में लाकर अँगरेजी साम्राज्यवाद को संयुक्त मोर्चा देना चाहते थे। कलकत्ता से लौट कर, बिहार और युक्तप्रान्त होते वह गुजरात गये और वहाँ से बम्बई पहुँचे। रास्ते रास्ते वह गुप्त संगठन की तैयारियाँ भी करते जा रहे थे और बम्बई पहुँच कर वह जिन गुप्त वेशों में घूमते-फिरते, उनके सामान भी एकत्र करने का प्रबंध कर लिया था। किन्तु, उनके सारे हौसले चूर हो गये, जब उन्होंने अपने को एक दिन पुलिस के फंदे में पाया।

बम्बई का आर्थर रोड प्रिजन—फिर देवली का कैम्प।

देवली का कैम्प ? और देवली के वे प्रसिद्ध खत याद आये बिना नहीं रह सकते जिन्होंने एक बार समूचे भारत को आन्दोलित कर दिया था।

१८ अक्टूबर, १९४१। जिन्होंने जिस भाषा का भी अखबार भोर में खोला, मुखपृष्ठ पर मोटे-मोटे शीर्षकों में एक ही खबर देखी—जयप्रकाश हिन्दोस्तान का षड्यंत्री नं० १ है ; उसकी पार्टी अब गुप्त रूप से षड्यंत्रों का संचालन करने जा रही है; वे लोग अब डकैतियाँ डालेंगे; वे बाहर से सम्पर्क स्थापित कर हिन्दोस्तान में सशस्त्र विद्रोह की तैयारियाँ कर रहे हैं—आदि

कर वे कभी भी साथ मिलकर काम नहीं कर सकीं।......अपने देश का अनुभव भी हमें यही बताता है। हमने वामपक्ष की एकता के लिए कोशिशें कीं, लेकिन, हम सिर्फ नाकामयाब ही नहीं हुए, बल्कि इसके चलते और कटुता बढ़ी और काम में नुकसान हुआ। हमारा अनुभव है कि कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी ने जब-जब सोशलिस्ट ग्रूपों और वामपक्षियों के लिए ईमानदारी के साथ अपने दरवाजे खोले और भाईचारे का हाथ बढ़ाया, तब-तब उसके साथ चालाकी खेली गई, 'उसके अन्दर अपने-अपने प्रभाव बढ़ाने की कोशिशें की गई' और उसके मेम्बरों को तोड़ने की साजिशें हुईं', जैसा कि संसार भर में वामपक्षी एकता के नाम पर होता आया है। इसलिए जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है, *वामपक्षी एकता पर से मेरा विश्वास उठ गया है और मैं इस सम्बन्ध में* फिर कोई कोशिश नहीं करने जा रहा हूँ। मेरे ख्याल से वामपक्षियों के निकट एक ही रास्ता है कि वे लोग अपने कट्टरपंथी पागलपन को छोड़ें, डेढ़ चावल की अलग-अलग खिचड़ी पकाना भूल जायँ और वामपक्षी राष्ट्रीयता और समाजवाद की एक व्यापक और विस्तृत पार्टी में शामिल हो जायँ। आज हिन्दोस्तान में वैसी पार्टी सिर्फ एक ही है, वह है कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी।"

४४

पाँचवाँ अध्याय : हजारीबाग जेल से पलायन

१. जेल-जीवन : देवली का विजेता !

"जो घटना हजारीबाग में हुई, उसकी नींव देवली में ही पड़ चुकी थी"—एक लेखक ने हजारीबाग से जयप्रकाश के निकल भागने की घटना की चर्चा करते हुए ऐसा लिखा है। क्या यह बात सच है?

१९४० के जाड़े की एक भोर में श्री फूलनप्रसाद वर्मा के घर पर जयप्रकाश बैठे हुए थे कि एक मित्र ने उन्हें सूचना दी कि परसों आप जरूर गिरफ्तार हो जायँगे। एक काम से आचार्य नरेन्द्रदेव भी पटना आए हुए थे और वहीं बैठकर गपशप कर रहे थे। रामगढ़ में कांग्रेस होने जा रही थी। बिहार में कांग्रेस हो रही हो और जयप्रकाश गिरफ्तार कर लिये जायँ?—यह बात कुछ आश्चर्य-भरी जरूर मालूम पड़ती थी। किन्तु, बात सच निकली। जमशेदपुर में दिये गये एक भाषण के सिलसिले में उनपर वारंट निकल चुका था। वह वारंट पटना से जमशेदपुर गया और वहाँ से तीसरे दिन वापस आकर जयप्रकाश को चाइबासा जेल में डाल कर ही शान्त हुआ!

इस गिरफ्तारी को पं० जवाहर लाल नेहरू ने सरकार की चुनौती मानी और कहा कि इसका जवाब रामगढ़ देगा! गाँधीजी ने इस गिरफ्तारी पर एक लेख लिख कर जयप्रकाश को भारतीय समाजवाद का आचार्य बतलाया और सरकार की इस कार्रवाई पर क्षोभ प्रगट किया!

आदि। अखबारों को यह खबर भारत-सरकार ने भेजी थी, प्रामाणिकता लान के लिए जयप्रकाश के खतों के कुछ अंश के फोटो भी भेजे थे। उन बातों को अपने ढंग से सजाया गया था, उसपर अपनी व्याख्या की गई थी। किन्तु, हिन्दोस्तान भर में सिवा तीन अखबारों के किसी के सम्पादक के मन में यह सवाल भी नहीं उठा कि हम क्यों इस खबर को छापें? जब जयप्रकाश जेल में हैं, हम क्यों उसकी पीठ में छुरा भोंकें? वे तीन अखबार थे— मद्रास का 'हिन्दू', दिल्ली का 'हिन्दोस्तान टाइम्स' और बम्बई का 'फ्री प्रेस'। इन अखबारों ने अखबारनवीसी की शान रख ली। किन्तु, कुछ अखबारों ने तो सरकार के सुर-में-सुर मिला कर जयप्रकाश को खूब गालियाँ भी सुनाई।

सिर्फ अखबारों में ही देकर सरकार को सन्तोष नहीं हुआ, वह रेडियोद्वारा हिन्दोस्तान के कोने-कोने में ही नहीं, संसार के कोने-कोने तक यह खबर फैलाती रही।

चूँकि जयप्रकाश अचानक गिरफ्तार हो गये थे, अतः उन खतों में उन्होंने बतलाया था कि कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी का काम बाहर किस तरह चलना चाहिये। पार्टी के कुछ प्रमुख लोगों को रूपोश होने की सलाह दी गई थी; पार्टी की तरफ से गैरकानूनी अखबार निकालने का आदेश किया गया था, देवली कैम्प से सम्पर्क रखने के लिए तरह-तरह के उपाय बताये गये थे, विदेशों से सम्पर्क करने की झलक भी उसमें थी और पुराने तरीकों से रुपये इकट्ठे करने पर जोर दिया गया था, जिससे योगेन्द्रशुक्लजी की सहमति की चर्चा करने से सरकार ने जिसे राजनैतिक डकैती समझ लिया था। फिर पार्टी के जिन सदस्यों ने धोखे दिये थे उन्हें खरीखोटी सुनाई गई थी और अन्त में कम्युनिस्टों के कारनामों पर विस्तृत प्रकाश डाला गया था। इनमें एक खत प्रभावतीजी के नाम से था और दो खत थी पुरुषोत्तम त्रिकमदास के नाम, जो पार्टी के ऐक्टिंग जेनरल सेक्रेटरी थे।

जेल से बाहर खत भेजना जयप्रकाश के लिए नई बात नहीं थी। किन्तु देवली की नई परिस्थिति में उन्हें कुछ नये उपाय करने पड़े थे। चलिये, हम देवली-कैम्प के गेट पर तमाशा देखें।

आज उनकी धर्मपत्नी श्रीमती प्रभावती देवी उनसे मिलने आ रही हैं।

वह जानते हैं, प्रभावतीजी गाँधीवादी हैं। वह उनके षड्यंत्र में शामिल होंगी या नहीं, इसमें उन्हें शक है। किन्तु वह चेष्टा तो जरूर करेंगे। जो अपना गुप्त-से-गुप्त कागज जेल के गेट से टाइप करके मँगा सकता है, उसे उनके हाथों भेज सकता है जिनके बारे में कोई स्वप्न भी नहीं देख सकता, वह अपनी पत्नी पर एक बार प्रयोग करने में क्यों झिझके!

यह देवली कैम्प का गेट है। बाहर से प्रभावती आती हैं, भीतर से जयप्रकाश। दोनों अगल-बगल बैठ जाते हैं। टेबुल के उस तरफ खुफिया पुलिस का बंगाली नौजवान बैठता है। "अच्छी हो ?" "और सब आनन्द ?" "हाँ हाँ, यह नाप लो, इस नाप का चप्पल खरीद कर दे जाना।" "देख लीजिये साहब, यह नाप है।" जयप्रकाश हाथ बढ़ा कर नापवाला कागज खुफिया को दे देते हैं! वह उसे लेकर गौर से देखने लगता है। कहीं भीतर अदृश्य गुप्त लिपि में कुछ लिखा तो नहीं है? वह उस कागज को देखने में लीन है। तब तक जयप्रकाश खतों का एक पुलिन्दा जेब से निकाल कर टेबल की ओट-ओट प्रभावती की कुर्सी की ओर बढ़ाते हैं। प्रभावती हाथ नहीं बढ़ातीं, तब पुलिन्दे को उनकी कुर्सी पर रख देते हैं। अब सिर्फ इतना ही काम है कि प्रभावती अपने झोले को खोल कर, उसमें उसे रख लें। कोई सन्देह क्यों करता? किन्तु यह प्रभावती गाँधीवादी हैं न? पुलिन्दे को छूती भी नहीं हैं। जरा इस समय दोनों के चेहरे देखिये—एक अजीब उत्तेजना में दोनों के चेहरे लाल बन रहे! और, तब तक खुफिया उस चप्पलवाले कागज को अच्छी तरह देख चुकता है। अब उसका ध्यान इस ओर आ गया, अतः झट जयप्रकाश पुलिन्दे को प्रभावती को कुर्सी से उठा कर अपने हाथ में ले लेते हैं! और, यह बंगाली है न? तुरत भाँप लेता है, टूट पड़ता है, कागज को पकड़ लेता है!

एक हलचल, एक खड़बड़। जयप्रकाश उसे धक्का दे देते हैं। वह गिर पड़ता है, फिर उठता है, फिर उनके हाथ की ओर लपकता है। अब तीन-चार धौल लगते हैं उसे! "गार्ड! गार्ड!"—शोर सुन कर गार्ड आ जाते हैं। जयप्रकाश को घेर लेते हैं। "चलिये, सुपरिन्टेन्डेन्ट के कमरे में।" "चलो।"

"आप क्या कर रहे थे यह?"

"मैं चिट्ठियाँ गुपचुप भेजने की कोशिश कर रहा था।"

"आपके ऐसे सज्जन पुरुष से इसकी मैंने उमीद नहीं की थी।"

"ताज्जुब, आप मुझे सिर्फ सज्जन पुरुष ही के रूप में जानते हैं। सिर्फ सज्जन पुरुष यहाँ इस कैम्प में नहीं भेजे जाते!"

"आपको इस काम पर अफसोस नहीं है!"

"बिल्कुल नहीं। मौका मिला तो फिर करूँगे—हाँ, अफसोस है यह, कि आज मैं पहली बार नाकामयाब रहा।"

जयप्रकाश को थोड़े ही दिन हुए थे यहाँ आये; किन्तु सब पर उनके व्यक्तित्व की धाक जम चुकी थी। जब तक वह यहाँ नहीं आये थे, कम्युनिस्टों का बोलबाला था। किन्तु जयप्रकाश के व्यक्तित्व ने उन्हें बिल्कुल ढँक लिया है। जयप्रकाश ने यहाँ आने के बाद कैम्प में कितने सुधार कराये हैं। कैम्प का सुपरिन्टेन्डेन्ट खुश है कि कम-से-कम एक आदमी तो ऐसा मिला, जो अपनी माँग पर भी डटा रह सकता है और अपने वादे पर भी।

आज वही आदमी उसके सामने है। वह अब क्या बोले!—"आप अपने वार्ड में जा सकते हैं!" जयप्रकाश अपने वार्ड में चले आते हैं। वे खत सरकार के घर पहुँचते हैं। सरकार को जैसे सुनहला मौका मिल गया। उस समय देवली-कैम्प की कुव्यवस्था के खिलाफ देश भर में आन्दोलन उठ रहा था—देवली-कैम्प के राजबंदी अनशन करने का अल्टिमेटम दे चुके थे। सरकार ने इन खतों को अपना ढाल बनाना चाहा। वे खत एक दिन प्रकाशित कर दिये गये।

आज फिर देवली-कैम्प के सुपरिन्टेन्डेन्ट ने जयप्रकाश को अपने दफ्तर में बुलाया है। वह उनके सामने अखबार रख देता है और कहता है—"सरकार ने आपके खत प्रकाशित कर दिये, मैं उसके औचित्य या अनौचित्य पर क्या कहूँ; किन्तु एक बात!"

"क्या बात है?"

"इसमें कम्युनिस्टों का भंडाफोड़ आपने किया है; इस कैम्प में वे ही लोग अधिक हैं; अखबार पढ़ने के बाद शायद वे आपको तंग करें, इसलिए मैंने अभी तक भीतर नहीं आने दिया!" फिर सिर खुजलाते हुए उसने कहा—

"किन्तु, मैं कब तक इस तरह रोक कर रख सकूँगा........."

"रोकने की क्या बात है — आप भीतर जाने दीजिये।"

"मैं चाहता हूँ, आप अपना बिस्तर मँगा लें और कुछ दिनों बाहर के ही कमरे में रहें। मामला शान्त हो जाने पर भीतर जायँ—वे लोग अच्छे आदमी नहीं हैं।"

जयप्रकाश का चेहरा तमतमा उठता है—

"सुपरिन्टेन्डेन्ट साहब, आप यह मेरी तौहीनी कर रहे हैं ! हम क्रान्तिकारी हैं। हमारी जान हमेशा हमारी हथेली पर है। क्या बुरा हुआ, अपने आदमियों के हाथ वह जाय ! गैर की हिफाजत से अपने हाथों बर्बादी अच्छी ! नमस्ते—"

और, यह देखिये, जयप्रकाश दनदनाते हुए कैम्प के अन्दर जा रहे हैं। सुपरिन्टेन्डेन्ट हक्काबक्का उनकी पीठ की ओर घूर रहा है। उफ, यह कैसा आदमी है !

उसके बाद ही देवली-कैम्प में भूख-हड़ताल हुई। जयप्रकाश ने उसका नेतृत्व लिया। कम्युनिस्टों ने धोखे दिये। जयप्रकाश लगभग पचास साथियों सहित अपनी अड़ पर अटल रहे। दिन बीते, हफ्ते बीतने लगे, अब महीना लगने को आया। जयप्रकाश की देह ने खाट पकड़ ली है। बुखार भी आने लगा है। सब कोई उनके लिए चिन्तित हैं। किन्तु, उनके चेहरे पर ओजस्विता है, तेजस्विता है। या तो यह कैम्प टूटेगा; या शरीर छूटेगा—कार्यं वा साधयामि, शरीरं वा पातयामि ! बीच का रास्ता नहीं ! उनकी माँग में प्रमुख माँग यह है कि यह देवली-कैम्प तोड़ दिया जाय ! कैम्प के भीतर से ये एक मुट्ठी लोग इस कैम्प को तोड़ने का सपना देख रहे हैं ! सपना ? नहीं, यह सत्य हुआ ! बाहर कोहराम मच गया। गांधीजी ने इस सवाल को अपने हाथों में लिया। तैंतीस दिनों के बाद, जयप्रकाश को खबर दी गई—अनशन तोड़िये, आपकी माँगें सरकार ने कबूल कर ली !

जिसके दुबले-पतले शरीर का अधिकांश मांस गल चुका है, जो खाट से सटा पड़ा है, जिसके चेहरे पर स्याही की एक पर्त-सी पड़ी है, वही जयप्रकाश इस खबर से मुस्कुरा पड़ता है ! इस मरुभूमि में, अँगरेजों के इस बेस्टाइल में

विजयलक्ष्मी आकर उसके गले में जयमाला डाल रही है !—उफ, अहा!

एक महीने के अन्दर-अन्दर देवली-जेल खाली हो जाता है। और, यह देखिये, देवली का विजेता अपने छोड़ते हुए किले की ओर हसरत की निगाह डालता, अब अपनी जन्मभूमि की ओर लौट रहा है—बिहार की ओर।

२. हजारीबाग जेल : स्थिति और इतिहास

स्टेशन से हमें ढोकर ले जानेवाली बस बढ़ी जा रही है—बढ़ी जा रही है। थोड़ी देर तक दूर-दूर पर गाँव मिलते रहे, फिर जंगल-जंगल। इस जंगल की पथरीली जमीन को काटकर बनाई गई टेढ़ी-मेढ़ी सड़कों पर आपको जब-तब चीते और भालू न मिलें, तो अपनी शुभ यात्रा समझें। बस का ड्राइवर कह रहा है—उस दिन वह बस लिये रात में लौट रहा था, तो एक बड़ा-सा बाघ सड़क पर आ रहा और भोंपू की आवाज को अनसुनाकर तब तक गुर्राया किया, जब तक उसकी आँखों में बस की लाइट सीधे नहीं पड़ी! और, अब हमें ले जानेवाले जमादार साहब कह रहे हैं—बाबू, यह आपलोगों को जेल की सजा मिली है, या बनवास का!

जेल की सजा या बनवास की? सचमुच बिहार-सरकार राजबंदियों को हजारीबाग सेन्ट्रल जेल भेजकर एक ही साथ जेल और बनवास दोनों की सजा पूरी कराती है! यह जेल किसी भी स्टेशन से पचास मील की दूरी से कम पर नहीं है। जंगल-जंगल, पहाड़-पहाड़—उसके बीच बनाया गया यह जेल। रास्ते में जहाँ-तहाँ जो गाँव हैं, उनमें वे आदिवासी बसते हैं जिनके रंग से आपके रंग का मेल खा नहीं सकता, ढंग की तो बात ही अलग!

कहने से लगता है, जैसे यह जेल हजारीबाग शहर में है, किन्तु, यह उससे भी दो-तीन मील दूर है। शहर से दो तीन मील दूर—एक चट्टान पर यह बनाया गया है। पत्थर के बड़े-बड़े ढोंके काटकर, उन्हें सिमेंट से जोड़ कर ऊँची-ऊँची दीवारें बना दी गई हैं। जमाने की गर्दिश ने इन दीवारों पर काफी कालिख पोत रखी है, जिससे उनकी भयानकता और बढ़ जाती है। दीवारों के घेरे पर चारों ओर बुर्जियाँ बनी हैं—जिनमें अगर रात में रोशनी कर दी जाए, तो सारे जेल का तिनका-तिनका दीखे। इन बुर्जियों पर बंदूकें

लिये सिपाहियों के पहरे पड़ें, तो फिर किसकी हिम्मत जो भीतर भी चूं-चरा करे; बाहर जाने की तो कल्पना भी कल्पनातीत।

भीतर जेल के तीन प्रमुख हिस्से हैं। एक हिस्से में एक छोर पर जेल का अस्पताल है, दूसरे छोर पर दूसरे हिस्से में छोकरा किता, जनाना किता, हाजती किता ये तीन किते हैं। बीच के हिस्से में जेल का प्रमुख अंश है। इस हिस्से के बीचोबीच जेल का सेन्ट्रल टावर है। सेन्ट्रल टावर को केन्द्र मानिये, तो आधे वृत्त में छः वार्ड हैं जो बाबू वार्ड कहलाते हैं; एक चौथाई वृत्त में तीन वार्ड हैं, जो 'पंजाबी सेल' कहलाते हैं; और एक चौथाई में एक लम्बा-सा दुमंजिला मकान है जो साधारण कैदियों का वार्ड है। 'बाबू-वार्ड' और 'पंजाबी सेल' इनके क्या मानी? कहाँ बिहार के झारखंड में बना यह जेल और कहाँ सुदूर पंजाब! पंजाबी यहाँ कहाँ? और, 'बाबू' से मतलब यदि बंगाली से है (जैसा कि यहाँ है) तो बंगाली बाबुओं के नाम पर ये वार्ड क्यों प्रसिद्ध हुए?

इस जेल की स्थापना जिस नीयत से हुई हो, किन्तु प्रथम जर्मन-युद्ध (१९१४-१८) के समय में अँगरेजी सरकार ने इस जेल को राजनीतिक रूप दे दिया। उसने इस जेल में उन खूँखार राजनीतिक कैदियों को रखना तय किया, जिन्हें वह किसी कारण से कालापानी नहीं भेजना चाहती थी। कालापानी और इसमें अन्तर भी कम है—जहाँ तक सुरक्षा का प्रश्न है। वहाँ मीलों तक फैला समुद्र—यहाँ मीलों तक फैले जंगल-पहाड़। यदि इन ऊँची संगीन दीवारों को, बुर्जियों की बन्दूकों और रोशनी के बावजूद, कोई पार भी कर ले, तो वह खप नहीं सकता यहाँ के लोगों में—उन काले काले अर्धनग्न जंगली लोगों में। और, यदि वह जंगलों को पार करना चाहे, तो हिंस्र जन्तुओं का शिकार बने! उसकी हड्डियाँ भी घर नहीं पहुँच पायें।

तो, इस 'जंगली कालापानी' में सरकार ने खूँखार राजनीतिक कैदियों को रखना तय किया। वे राजबंदी मुख्यतः पंजाबी और बंगाली थे। बंगालियों में ज्यादातर नजरबंद लोग थे और पंजाबियों में गदर पार्टी के वे पुरुष सिंह जिन्होंने फौज में बगावत की या कराने की कोशिश की थी। बंगाली बाबुओं के लिए छः वार्ड बनाये गये और पंजाबियों के लिए तीन वार्ड।

बाबुओं के वार्ड आरामदेह—हर वार्ड में २६ या २८ सेल, जिनमें दो सेल 'मजिस्टरी सेल'। मजिस्टरी सेल में चक्की लगी, दरवाजा बन्द—जिन्होंने कसूर किया, उन्हींकी किस्मत इनके लायक। बाकी २६ सेलों में उतनी ही जगह जिसमें एक आदमी रह-सह सके। इन सेलों के सामने बरामदे, बाहर खुली जगह। किन्तु पंजाबियों के वार्ड बड़े ही भयानक। न बरामदे, न खुली जगह। सेल के सामने छोटे-छोटे घेरे, नहाना-धोना, जो कुछ करना हो, वहीं।

पंजाब से, बंगाल से राजबंदियों को लाकर सरकार ने इन सेलों में ठूँस दिया। स्वभावत ही वह पंजाबियों से ज्यादा नाराज थी—अत: उन्हें तरह-तरह के कष्ट भी दिये जाने लगे। जहाँ बाबू वार्ड के माले होकर, बकौल पुराने जमादारों के, घी और दूध बहा करते, वहाँ बेचारे पंजाबियों को सूखी रोटियाँ भी भरपेट नसीब नहीं हो पातीं। पंजाबियों ने इस स्थिति को बर्दाश्त करना नामंजूर कर दिया। संघर्ष चलने लगे। एक ओर जेल के नियमों को तोड़ा जाने लगा, दूसरी ओर तरह-तरह की सजायें दी जाने लगीं। कितने वार्डरों के सर लोहे के तवले से टूटे, कितने कैदियों के चूतड़ों की धज्जियाँ कोड़ों से उधेड़ दी गईं।

किन्तु अन्ततः सरकार को इन पंजाबियों के सामने हार माननी पड़ी। कोड़ों के बल पर कब तक जेल चलाया जा सकता है? जेलर और सुपरिन्टेन्डेन्ट की बदली हुई। जो नये जेलर और सुपरिन्टेन्डेन्ट आये, उन्होंने पंजाबियों के सामने सुलह और मेल का पैगाम रखा। तय हुआ, सरकार पंजाबियों को उनके धार्मिक कृत्य करने देगी, उन्हें पंजाबी खाना देगी—रोटी-गोश्त। इसके बदले पंजाबी राजबंदी जेल के नियमों को मानेंगे, जेल के कामों को करेंगे, जेल के अफसरों की कद्र करेंगे। दोनों ओर से सुलह की शर्तों का पालन शुरू हुआ। स्थिति में सुधार हुआ। धीरे-धीरे पंजाबी राजबंदियों को सेल से बाहर आने जाने और एक दूसरे से मिलने की सहूलियत भी हासिल हुई।

"भाई गदा सिंह, तुम्हें तो दामुल की सजा है न?"

"और, तुम्हें? मैंने तो सोच रखा था, तुम्हें फांसी के तख्ते पर झूलना पड़ेगा, केहर!"

"हाकिम बेवकूफ था—"

"या होशियार, यार। एक घंटे की सजा न देकर जिंदगी भर की सजा दे डाली।

"लेकिन बच्चू को दस दिन बाद न मालूम होगा?"

"क्यों? क्या खुदकुशी होगी।"

"खुदकुशी करें मेरे दुश्मन। मैं तो एक दिन चम्पत हुआ...

"अरे, यह क्या कह रहे हो? ये दीवारें, ये बन्दूकें।

"बन्दूकों की बात मत करो, यार। जिंदगी भर बन्दूकों का ही सौदा किया है। हाँ, ये दीवारें। तो, बस तीन साथियों की जरूरत है। फिर बेड़ा पार।"

"बेड़ा पार! या गंडा पार।"

"और बेड़ा पार नहीं? क्या यहाँ अंडे सेया करोगे?"

कानों-कान की बातें सुचासिंह को सुनाई गईं।—"हाँ सुवा, मेरे सरदार, हम जिंदगी भर जेल में नहीं रह सकते। तुमने कहा, मैं राजी हुआ—आमने-सामने की लड़ाई होती—वे मारते मुझे या मैं उन्हें। किस्सा खत्म। लेकिन यह जिंदगी भर की पिसाई। मुझसे नहीं पार लगेगी—मेरे सरदार। उस दिन मैंने तुम्हारा साथ दिया, अब तुम्हारी बारी है। साथ दो या..."

सुवा सिंह ने समझाने की कोशिश की, किंतु कौन सुनता है। तरकीबें सोची गईं और वह भी पंजाबियों के ही लायक। सेल के ऊपर जो ये सुराखें हैं, उन्हीं से दो आदमी रात में निकलेंगे—वे पतले हैं, छरहरे हैं, निकल सकेंगे वे। निकल कर वे बरामदे के छप्पर से वहाँ पहुँचेंगे, जहाँ वार्डर आधी रात को ऊँघता रहता है। उसपर टूट पड़ेंगे, उसकी मुश्क बाँध देंगे, फिर उससे चाबियों के गुच्छे छीन कर इस वार्ड के सभी सेलों को खोल देंगे। इस वार्ड का काम खत्म कर वे दूसरे और तीसरे पंजाबी वार्डों में जायँगे और वहाँ के सभी 'सिंहों' को सेलों से निकालकर दीवाल फाँद कर बाहर होंगे और तब यदि मौका मिला, तो बाहर से छापा मारकर जेल की मैगजीन पर कब्जा करेंगे और अस्त्र-शस्त्र से लैश होकर इस पहाड़ी प्रांत में छापेमारों की लड़ाई लड़ते पंजाब की ओर बढ़ेंगे। क्या ऐसा हो सकेगा? नहीं हुआ, तो

क्या हुआ ? दामुल से कम सजा तो किसीको नहीं; लड़ते-लड़ते मरना अच्छा, या जमीन पर पैर रगड़ते-रगड़ते !

और, एक रात गंडा सिंह सुराख से निकला और छत पर होते सुचासिंह के सेल के नजदीक गया। सुचासिंह सुराख से निकलने की चेष्टा कर रहे थे, किन्तु उनका सीना कुछ ज्यादा चौड़ा था, वह फँस गये थे। "गंडा, जरा जोर से मुझे खींचो। नहीं तो अब खून जमना शुरू हो जायगा, सीना और फूल जायगा और हम कहीं के नहीं रहेंगे।" गंडा ने दीवाल से टाँग अड़ा दी और पूरे जोर से सुचासिंह को खींचा। कुछ खरोंच लिए सुचासिंह बाहर थे।

पूर्व निश्चय के अनुसार वार्डर को पकड़ा गया, उसकी मुश्क बाँधी गई, चाबियाँ ली गईं, सेलों से सिंहों को निकाला गया। फिर सुचासिंह दूसरे पंजाबी वार्ड में गये, वहाँ के वार्डर को भी पकड़ा गया, चाबियाँ ली गईं। किंतु यह क्या ! जल्दी में चाबियों का नंबर मिल नहीं रहा है, ताले खुल नहीं रहे हैं। जहाँ सेकेन्ड की भी कीमत, वहाँ मिनट-पर-मिनट बीते जा रहे हैं। इधर पहले वार्ड के 'सिंहों' के मन में संदेह होता है—क्या व लोग कहीं फँस तो नहीं गये ? तो फिर हम भी क्यों फँसे ! सब लोग दीवाल की तरफ भागे। उनके पैरों की धमधम की आवाज से जेल के दूसरे वार्डर चौकन्ना हुए; शोरगुल, फिर पगली घंटी ! एक ओर मशालें लेकर जेल को घेरने की कोशिश हो रही है, दूसरी ओर एक के कंधे पर दूसरे, दूसरे के कंधे पर तीसरे और फिर दीवाल की उस ओर कूदा जाने लगा। कुछ वार्डरों ने उनके नजदीक पहुँचने की कोशिश की, तो रास्ते के जो बड़े बड़े ताले उन्होंने सेलों से खोले थे, वे उनके हाथों में थे। उनसे एक-दो को दे मारा, जिन्हें लगे, वे धराशायी। फिर किसकी हिम्मत कि आगे बढ़ें। नीचे के दो आदमी रह गये, जिनके कंधों पर और सब पार हुए थे। बाकी चम्पत हो गये !

लेकिन, उनकी विपदा यहीं खतम नहीं हुई। दीवाल पर से कूदते समय कई की टाँगें टूट गई थीं; वे फसल के धनखेतों में रात में तो छिपे पड़े रहे, किंतु, दिन में जब कुछ लड़कियाँ बकरियाँ चराती हुई वहाँ पहुँची, उन्हें देख

कर चिल्ला उठीं। उनलोगों को मारते-पीटते, अधमुए बनाकर, फिर जेल में दाखिल कर दिया गया। सरदार सुचासिंह के पैर में भी चोट आई थी, किंतु उन्हें उनके साथी टाँगटूँग कर ले चले। थोड़ी दूर जाने पर यह देखा गया कि कुछ और लोग भी चलने से लाचार हैं। वे लोग झाड़ियों में छिप रहे, किन्तु कुछ दिनों बाद पकड़े गये और उनकी भी कम दुर्गत नहीं की गई। कहा जाता है, उनमें से एक को जान से मार डाला गया और उसके पैर में रस्सी लगाकर, मरे कुत्ते की तरह घसीट कर, जेल के फाटक तक लाया गया।

जो लोग सरदार सुचासिंह के साथ भागे जा रहे थे, अब उनकी तादाद एक दर्जन के लगभग थी। वे लोग जगल जगल रात भर चलते रहे। दिन आता, वे किसी झाड़ी या गुफा में ठहर जाते, रात होती और चल पड़ते। कई बार उनकी बगल से शेर और भालू निकले, एक बार एक हाथी निकला, एक रात जब वे जेल से लाई हुई कम्बल बिछाकर सोये, तो जगने पर देखा एक गेहुँ-अन साँप उनसे कुचल कर मर गया है! कई दिन हो चले थे, एक मुट्ठी दाना भी उन्होंने मुँह में नहीं रखा था। वे तगड़े थे, फौजी जिंदगी की कठिनाइयों के आदी थे, तो भी उनके पैर अब जवाब दे रहे थे, हिम्मत टूटी जाती थी। एक बार तो एक दिन और एक रात तक पानी नहीं मिला। कठ सख रहे थे, अतड़ियों में ज्वालाएँ-सी जलती मालूम पड़ती थीं। अब बचना तो मुश्किल है। हारदार कर वे एक चट्टान पर लेट गये, जिसकी ठढक उन्हें थोड़ी शांति दे रही थी, किंतु जो मृत्यु की विभीषिका को और भी स्पष्ट किये देती थी!

"सुचासिंह, आखिर हमलोगों की मिट्टी यहीं आकर मिलनी थी!"—किन्तु सुचासिंह क्या जवाब देते? ऊपर चमकते हुए तारे को देखकर उन्होंने एक लम्बी साँस ली! कि, इतने ही में मेढक की आवाज सुनाई पड़ी। मेढक!—तो यहाँ पानी जरूर होगा! किन्तु, किसी दूसरे जानवर की भी तो ऐसी आवाज हो सकती है। मरता क्या न करता? देख तो लिया जाय! उस अंधकार में सुचासिंह उस आवाज का छोर पकड़े बढ़ते जा रहे हैं। थोड़ी दूर गये थे कि आवाज बन्द। क्या मौत हमलोगों के साथ मजाक

कर रही है ? थोड़ी देर खड़ा रहकर वह लौटना चाहते थे कि टिर्रटर्र-टर्र! आखिर, वहाँ पहुँचकर हाथ से टटोला, तो पाया, एक छोटा-सा खड्ड है, जिसमें एक चुल्लू पानी है और उसीमें मेढ़क-महाराज आनन्द से बैठे अपना राग अलाप रहे हैं। सूचासिंह ने मेढ़क को हाथ में उठाया, फिर साथियों से कहा—"बस एक चुल्लू पानी है, आपमें से जिनको जरूरत सबसे ज्यादा हो, वह पी लें।" लेकिन कोई बढ़ता नहीं है, सब एक दूसरे से कह रहे हैं कि तुम्हीं पी लो। अन्त में सूचासिंह ने फैसला दिया—जो सबसे कमजोर था, उसे पानी पीने की आज्ञा दी। बड़ी हिचक के बाद वह बढ़ा, चुल्लू में लेकर पानी पिया। किन्तु ज्यों ही वह देखने को उस खड्ड में हाथ रखा कि कितना पानी बचा है, कि पाता है, खड्ड फिर भर गया है! भाइयो, यह खड्ड नहीं, यह तो सतश्रीअकाल का भेजा अमृत का सोता है! सब एक-एक कर बढ़ते हैं, छक-छक कर पानी पीते हैं; अन्त में अपने हाथ का मेढ़क दूसरे को देकर सूचासिंह भी पानी पीते हैं और फिर बड़े सम्मान के साथ उस मेढ़क को उस खड्ड में रख देते हैं।

कई दिनों के बाद रास्ते में एक गाँव दिखाई पड़ा। इन सबको दाढ़ियाँ थीं; सोचा गया, ज्यों ही ये दर्जन भर दाढ़ियाँ एक साथ दीख पड़ीं तो लोगों का हमपर सन्देह जरूर होगा। अतः एक साथी को गाँव में भेजा गया, वह नागा बाबा बनकर आग माँग लाया। उस आग से लकड़ियाँ जलाई गईं और उन जलती लकड़ियों को दाढ़ियों से लगा-लगा कर दाढ़ियाँ जला डाली गईं। लकड़ियों के जलने से जो राख बनी, उसे भभूत की तरह शरीर में मल लिया गया और जेल के कपड़े को चीर-फाड़ कर लंगोटियाँ बना ली गईं; फिर दो दलों में बँटकर वे आगे बढ़े। एक दल दूसरे से काफी दूर पर रहता, जिसमें कोई संकट आये, तो एक दल तो बचे।

इसी तरह बढ़ते जा रहे थे। अगले दल में सूचासिंह थे। सूचासिंह जब एक गाँव के बाहर निकले, तो उन्होंने देखा, गाँव के बाहर चौपाल में एक खाट पर कुछ लोग बैठे हैं और उनके सामने लाल-लाल पगड़ियाँ रखी हैं। सूचासिंह ने समझ लिया, ये पुलिस के लोग हैं और शायद उन्हीं लोगों की खोज में रास्ते-रास्ते पर बैठे हुए हैं। बात भी यही थी। सरकार

ने हर रास्ते पर, हर पड़ाव पर, हर स्टेशन पर आदमी तानात कर रखे थे, जो भागे हुए सिक्खों की तलाश चौकन्नी आँखों से कर रहे थे। न जाने क्या बात हुई, सुचासिंह का दल आगे बढ़ता गया, किन्तु उन्होंने पूछताछ या छेड़छाड़ नहीं की। सुचासिंह आगे बढ़ कर एक निराले स्थान में रुक कर पिछले दल की प्रतीक्षा करने लगे कि उन्होंने शोर सुना और देखा, उनके पिछले दल के साथी आगे-आगे भाग रहे हैं और पीछे से लोग हल्ला करते उनको खदेड़ रहे हैं। सुचासिंह समझ गये कि बात क्या है? अपने दल को लेकर वह वहाँ से निकल गये।

उसी रात में तय हुआ, अब दल बनाकर नहीं चला जाय। सब आँखों में आँसू भर कर, गले-गले मिल कर, एक दूसरे से अलग हुए। सुचासिंह किस तरह फिर पंजाब पहुँचे, घर गये, वहाँ से फटकार पाकर साधु बन गये; बीस वर्षों तक साधु जीवन व्यतीत कर जब चारों तरफ काँग्रेसी मन्त्रिमंडल बन गये और फरार राजबदी अपने को प्रगट करने लगे, तो फिर किस तरह उन्होंने भी पुलिस को अपने बारे में खबर की, किस तरह पुलिस ने उनसे दगा की, उन्हें गिरफ्तार करा कर फिर हजारीबाग जेल भेजा और वह अपनी 'दामुल' की सजा to be kept in jail till alive भुगत रहे थे, इसपर विस्तृत प्रकाश डालने की आवश्यकता नहीं। जब जयप्रकाश १९४० में हजारीबाग पहुँचे, सरदार साहब ने अपनी सारी कहानी उन्हें सुनाई थी और जब वह १९४१ में छूटे तो महात्माजी से मिलकर उन्हें छुड़वाने की कोशिश की थी। किन्तु इसमें वह सफल नहीं हो सके थे; उल्टे खुद फिर १९४२ में वहीं आकर सरदार साहब के साथी बन गये थे।

जब हम हजारीबाग-जेल की इस स्थिति और इतिहास को ध्यान में रखेंगे, तभी हम समझ पायेंगे कि इस जेल से जयप्रकाश का पलायन कर जाना क्या बात थी।

३. शेर पिंजड़े में छटपट कर रहा !

देवली से अपने प्रान्त में लौटाये जाने पर जयप्रकाश फिर हजारीबाग जेल में ही रखे गये और उन्हें जेल के उस हिस्से में रखा गया, जो 'छोकरा किता' कहलाता है। इस किते में पहले जुविनाइल (नाबालिग) कैदी रखे जाते थे। 'जुविनाइल वार्ड' के लिए 'छोकरा किता' अनुवाद वैसा ही है, जैसा 'विमेन्स वार्ड' के लिए 'रंडी-किता'। समझ में नहीं आता, ये अनुवाद किसने कब किये, किन्तु जेलों में, थोड़े दिनों पहले तक, 'रंडी-किता', 'छोकरा-किता' आदि शब्द ही प्रचलित थे।

१९३० से ही यह छोकरा-किता राजबंदियों के लिए निश्चित किया गया था। १९३० में इसी में राजेन्द्रबाबू, दीपबाबू (भागलपुर) आदि रहते थे और १९३२ में इसीमें सरहदी गाँधी खान अब्दुल गफ्फार खाँ और उनके भाई डाक्टर खान साहब को रखा गया था। खान-बन्धुओं के कारण इस किते के रुतबे में ही नहीं, खूबसूरती में भी वृद्धि हुई थी। उन्होंने वार्ड के सामने की बंजर जमीन को कोड़ कर, कोड़वा कर एक अच्छा बगीचा लगा दिया था। आज भी उनके हाथों के रोपे कुछ गुलाब और मोतिये के झाड़ आप वहाँ पा सकेंगे। सेहन और खिड़कियों में भी कुछ सुधार हुए थे।

जिस कमरे में खान अब्दुल गफ्फार खाँ रहते थे, उसी में जयप्रकाश भी रखे गये थे। १९३७ में अपनी तीन महीने की सजा जयप्रकाश ने इसी कमरे में काटी थी।

जयप्रकाश का स्वास्थ्य इन दिनों बहुत खराब है। देवली जेल के २३ दिनों के अनशन के कारण सिर्फ दुर्बलता ही नहीं आई है, कई पुरानी बीमारियाँ उभड़ गई हैं। खास कर पैर की साइटिका तो रह-रह कर उमड़ आती और चलने-फिरने से भी लाचार कर देती है। आजकल वह बिलकुल फलाहार पर रहते हैं—यह फलाहार उन्होंने गाँधीजी की आज्ञा से प्रारम्भ किया है। गाँधीजी के खत आजकल बराबर आते रहते हैं, जिनमें वह इनके स्वास्थ्य-सुधार के बारे में दरियाफ्त करते और खानपान के बारे में सलाहें भेजा करते हैं।

अगस्त की अगवानी की धमक इस जेल में भी पहुँच रही है। इस बार कुछ होकर रहेगा और वह 'कुछ' ऐसा होगा जैसा कभी नहीं हुआ। क्रान्ति— महाक्रान्ति! और "इस क्रान्ति में मैं क्या इसी जेल में सड़ता रहूँगा"?— जयप्रकाश रह-रह कर सामने की पथरीली दीवारों का देखते हैं, जो मालूम होता है, उनके पौरुष को रह-रह कर चुनौती देती रहती हैं।

हाँ, इन दीवारों की 'अनुल्लंघनीय पवित्रता' पर जयप्रकाश को विश्वास नहीं है। जेल की दीवारें उनकी नजरों में मानवता पर की जानेवाली राज्य की भीषण हिंसा का प्रतीक हैं, और हिंसा यदि पापमय है, तो ये दीवारें पाप की दीवारें हैं। ये जितना जल्द टूटें, ध्वस्त हो जायँ, पस्त हो जायँ, उतना ही अच्छा।

अगस्त शुरू हो रहा था कि उनका एक साथी युद्धविरोध में सजा पाकर हजारीबाग जेल में पहुँचा। वह 'बारू वार्ड' में रखा गया; किंतु, जयप्रकाश ने उससे मुलाकात का इन्तजाम कर लिया। इस फन में जयप्रकाश शुरू से ही उस्ताद रहे हैं। उस साथी ने जब बाहर की सारी हालतें बताईं, क्या क्या होने जा रहा है इसका एक खाका उनके सामने रखा, तब तो वह और अधीर हो गये। साथी ने बताया और जयप्रकाश की दूरदर्शी आँखों ने देखा, कि जहाँ तक कांग्रेस का सवाल है और जनता का रुख है—सरकार को एक ही धक्के में तहस-नहस कर दिया जायगा। किन्तु, सवाल इसके बाद का है। तहस-नहस के बाद क्या हो—इसपर कोई नहीं सोच रहा। तहस-नहस के बाद ही नव-निर्माण नहीं हुआ, तो फिर प्रतिक्रिया का दौरदौरा होकर रहेगा। चोटी का सवाल सिर्फ यह नहीं है कि सरकारी सत्ता को नष्ट कर दिया जाय, बल्कि मार्के का सवाल यह है कि उसके साथ ही तुरत एक नई सत्ता का सृजन हो और यह सृजन का काम सम्भव नहीं हो सकता जब तक जयप्रकाश ऐसे लोग आन्दोलन का प्रारंभ से ही संचालन न करें—यह स्पष्ट था।

वह साथी जमानत पर छूट कर जानेवाला था और अगस्त-क्रांति की तारीख भी उन दिनों दूर मालूम होती थी—क्योंकि ७-८ अगस्त को अखिल भारतीय कांग्रेस कमीटी की बैठक बम्बई में होनेवाली थी और गांधीजी सर-

तब सोचा गया, कुछ चुने हुए साथियों को लेकर ही निकल आया जाय। इसके लिए भी साथी चुन लिये गये और उसका प्रबन्ध नये सिरे से किया जाने लगा। किन्तु, यहाँ भी भद्दा पड़ी। एक दिन देखा गया, समूचे जेल पर सशस्त्र पुलिस का पहरा है। जो सुविधाएँ सिर्फ रातों को चीज थीं; दनादन दिन में बन्दूकों की संगीनें चमकती हैं और रात में गैस की बत्तियाँ। पहले खबर फैली, कांग्रेस की वर्किंग कमीटी के मेम्बर यहीं लाये जा रहे हैं; फिर पता चला, जमशेदपुर के सिपाहियों ने विद्रोह कर दिया है, उन्हीं के नेताओं को लाया जा रहा है। जब तक वे सिपाही वहाँ रखे गये, पुलिस के ऐसे ही सख्त पहरे दिन रात पड़ते रहे और जयप्रकाश और उनके साथी चुपचाप ये दृश्य देखते उसाँसें भरा किये।

हाँ, उसाँसें! क्योंकि अब बाहर से जो खबरें आ रही थीं, वे बताती थीं कि किस तरह गोले से, गोलियों से, किरचों से, हंटरों से अगस्त क्रान्ति को कुचलने की चेष्टायें हो रही हैं और नेताओं के अभाव में किस तरह जनता असहाय होकर दबती, छिपती जा रही है। जैसा पहले सोचा गया था, क्रान्ति के पहले धक्के में ही बहुत जगहों पर समूची अँगरेजी सरकार ताश के घर की तरह भहरा कर गिर गई थी; किन्तु तुरत उसकी जगह पर कोई चीज नहीं बनने से अब फिर अँगरेजी सरकार के पैर वहाँ पहुँचते और जमते जा रहे थे। उजड़े हुए थानों में दारोगाजी लौट रहे हैं और उनके साथ ही अँगरेज सैनिक पहुँच कर लोगों को तबाह और बर्बाद कर रहे हैं। दमन का दौर-दौरा है, चारों ओर त्राहित्राहि मची हुई है। गाँव के गाँव जलाये जा रहे हैं, घर लूटे जा रहे हैं—स्त्रियों के सतीत्व और बूढ़े-बच्चों की जानें भी सुरक्षित नहीं हैं।

देश की यह हालत है, उधर अन्तर्राष्ट्रीय जगत में बड़ी बड़ी घटनायें घट रही हैं। एक ओर से जापान हिन्दोस्तान की ओर बढ़ा आ रहा है—बीच के देशों को जीतते, रौंदते, कुचलते। दूसरी ओर जर्मनी की सेनायें कौकेशिया और अफ्रीका की ओर से, क्षिप्र वेग में, सँड़सी के दोनों मुँह की तरह, अँगरेजी राज्य के आखिरी किले के रूप में इस हिन्दोस्तान को निगलने के लिए, बढ़ती आ रही हैं। जापान और जर्मनी में, जैसे, होड़ लगी हो कि

स्वर्गीय बाबू ब्रजकिशोरप्रसाद (जयप्रकाश के श्वशुर)

कार को पन्द्रह दिनों का अवसर देनेवाले थे। अतः, तय यह हुआ कि वह साथी बाहर जाकर ऐसा प्रबंध करे कि अगस्त-क्रांति के प्रारंभ होते ही जयप्रकाश को जेल से निकाल लिया जाय। इसके लिए एक योजना भी सोच ली गई।

किन्तु, वह साथी बाहर जा भी नहीं पाया था कि ९ अगस्त की शाम को, जब पानी टिप-टिप बरस रहा था, हजारीबाग के दोनों सिंह-बन्धु श्री रामनारायण सिंह, एम० एल० ए० (सेंट्रल) और श्री सुखलाल सिंह (आजकल बिहार-सरकार के पार्लियामेंटरी सेक्रेटरी) कम्बल ओढ़े जेल में दाखिल हुए और उनसे मालूम हुआ—सरकार ने धावा बोल दिया है, गिरफ्तारियाँ शुरू हो गई हैं। गांधीजी ने अपने एक लेख में बताया था, इस बार का आन्दोलन खुली बगावत होगा, इसमें लोगों को जेल में जाना नहीं है। इसका मानी साधारणतः यह लगाया गया था कि लोग गिरफ्तार होने से इन्कार कर देंगे। इसलिए जब इन दोनों भाइयों को, जो काफी दबंग और लोकप्रिय नेता समझे जाते हैं, सरामा सरामा जेल में आते देखा गया, जयप्रकाश और उनके साथियों को आश्चर्य हुआ। किन्तु, यह आश्चर्य तुरत मिट गया जब खबरें मिलने लगीं कि गांधीजी एवं अन्य नेता भी गिरफ्तार हो गये और दो-चार दिनों के अन्दर-अन्दर ही यह हजारीबाग जेल भी कांग्रेस नेताओं और कार्यकर्त्ताओं से भरने लगा।

क्या खुली बगावत का यही रूप है कि लोग अपने को पुलिस-अफसरों को हवाले कर दें और फिर जेल में आकर पहले की तरह इस बार भी चुपचाप चरखा काता करें या अध्ययन किया करें—यह प्रश्न जयप्रकाश के मन में उठने लगा और वहाँ जो प्रमुख कांग्रेस नेता और कार्यकर्त्ता एकत्र हुए थे, उनके सामने उन्होंने इस प्रश्न को रखना शुरू किया। गांधीजी ने गिरफ्तार होते समय एक मंत्र लोगों को दिया "करो या मरो"—क्या इस मंत्र का मानी यह नहीं है कि इस बार जान पर खेल करके भी हमें इस क्रांति को सफल बनाना है? जयप्रकाश के इस सवाल का उत्तर स्पष्ट था, किन्तु वे लोग अपनी लाचारी बताने लगे कि किस तरह वे अचानक ही गिरफ्तार कर लिये गये, वे तुरत सोच नहीं सके कि उन्हें क्या करना चाहिए, हाँ, उन्हें कुछ ऐसा अवश्य लग रहा है कि कहीं कोई गलती उनसे हुई है।

इस गलती को दुरुस्त किए बिना क्रांति की गाड़ी आगे बढ़ नहीं सकती, अतः जयप्रकाश और उनके साथियों ने एक ऐसी योजना तैयार की जिसमें यह पूरा जेल ही खाली कर दिया जा सके। बड़ी दुस्साहसिकतापूर्ण थी यह योजना ! अगर यह काम में लाई जा सकती, तो फ्रांस की क्रांति का बेस्टाइल जेल का तोड़ा जाना भी नगण्य लगता। और उसे काम में लाने के लिए आदमियों का चुनाव और समय का निर्धारण भी हो चुका था। किन्तु, जयप्रकाश का कहना था कि चूँकि कुछ प्रमुख कांग्रेसजन भी यहाँ पहुँच चुके हैं, इसलिए उनमें से चुने हुए लोगों को इसकी खबर तो कर ही देना चाहिए, जिसमें वे लोग हमें यह दोष नहीं दे सकें कि उन्हें खबर भी नहीं की गई थी। कुछ तथाकथित प्रगतिशील लोग भी वहाँ थे। अतएव, उन्होंने एक दिन उनमें से कुछ लोगों को बुलाया और इस योजना की एक झलक बता दी। जहाँ-जहाँ जान पर खतरे आने की आशंका थी, वहाँ-वहाँ जयप्रकाश के साथी ही रखे गये थे, बाकी लोगों को सिर्फ निकल चलना था। इस योजना की विभीषिका पर तो सभी थर्राये, लेकिन, खुली बगावत का ध्यान रखते हुए इसमें कोई ऐसी बात नहीं थी कि सिद्धांत के नाम पर भी जिसका विरोध किया जा सकता।

जयप्रकाश और उनके साथी बहुत खुश हुए और अब इस योजना के ब्योरे पर 'फाइनल टचेज' देने लगे कि इतने ही में कल होकर जो जेल-अधिकारी आये, उन्होंने जयप्रकाश से कुछ ऐसी बातें कीं जिनसे यह ध्वनि निकलती थी कि उन्हें इस योजना की कुछ भनक मिल चुकी है। यह क्या हुआ ? क्या किसीने भंडाफोड़ कर दिया, या उस अधिकारी की यह आशंका-मात्र थी ! उसके बाद ही जब ध्यान से देखा जाने लगा, तो पता चला, आज वार्डरों के पहरे में भी कुछ तब्दीली की गई है और चारों ओर चौकसी का भाव दिखाई पड़ रहा है। इस तब्दीली और इस चौकसी को काट भी सोची गई, किन्तु देश के दुर्भाग्य से उसी समय भागलपुर सेन्ट्रल जेल में बगावत हो गई, जिसमें दो-एक जेल-अधिकारी भी मारे गये। फलतः वहाँ गोलियाँ चलीं, दर्जनों कैदी मार डाले गये और प्रांत के हर जेल की सुरक्षा का नये सिरे से प्रबंध किया गया और यों यह योजना जहाँ की तहाँ रह गई।

कौन पहले हिन्दोस्तान पहुँचता है। क्या इनका विजयी के रूप में हिन्दोस्तान में पधारना कल्याणकर होगा? क्या वे हमारे देश को भी गोरे नाजीवाद और पीले सैनिकवाद के अखाड़े नहीं बना छोड़ेंगे? अँगरेजी साम्राज्यवाद बुरा है, घातक है, तभी हमने कहा—"अँगरेजो, भारत छोड़ो!" उन्होंने भारत नहीं छोड़ा, उल्टे हमें कुचल रहे हैं, पीस रहे हैं। किन्तु यह स्पष्ट है कि जर्मनी और जापान की दुहरी चक्की में पिसने के पहले ही ये भारत छोड़ कर भाग खड़े होंगे। इनका जाना भारत के लिए शुभ होगा, कल्याणप्रद होगा—पुराना कोढ़ दूर होगा। किन्तु उसके बाद क्या ऐसा कोई उपाय नहीं किया जा सकता है कि अँगरेजी सत्ता के खतम होते ही, जापानी या जर्मन सत्ता कायम होते न होते, फिर ऐसी बगावत की जाय कि उन्हें भी भारत छोड़ने को लाचार होना पड़े। इस अगस्त-क्रान्ति ने इतना तो सिद्ध कर ही दिया है कि जनता में वैसी ताकत है कि वह डेढ़ सौ सालों से स्थापित सरकार को भी उलट दे। जिसने शालिग्राम भून डाले, उसके लिए बैंगन का भूनना कौन-सी बात? यदि योग्य नेतृत्व मिले तो जनता डेढ़ दिनों के स्थापित जापानी सैनिकवाद और जर्मन नाजीवाद को बातोंबात में उखाड़ फेंकेगी। वह नेतृत्व हमें देना है—जो साम्राज्यवाद, नाजीवाद और सैनिकवाद तीनों के एक-से विरोधी हैं। नहीं, हमारी जगह जेल में नहीं है। जान पर खेल कर के भी हमें बाहर आना ही है।

तब तक जमशेदपुर के सिपाहियों को सजायें मिल चुकी थीं और वे इस जेल से हटा कर प्रान्त के भिन्न-भिन्न जेलों में भेजे जा चुके थे। फलतः सशस्त्र पुलिस का पहरा भी धीरे-धीरे हटा लिया गया था। जेल के अधिकारी भी अब निश्चिन्त हो चले थे कि यहाँ कुछ होन-जान को नहीं है। प्रान्त के प्रायः सभी प्रमुख नेता यहाँ अब पहुँच चुके थे और जेल की वही सत्याग्रही जिन्दगी मजे में बिताई जा रही थी—सरकार से दस आने का राशन लेना और डटकर खाना, खेलना, हँसना, हँसाना! हाँ, जयप्रकाश और उनके साथियों के भाग्य में यह भी नहीं बदा था—क्योंकि वे लोग यहाँ के सी० डिवीजन के राजबंदियों के प्रश्न को लेकर ऊपर के डिवीजनों की सहूलियतों और आराम को छोड़कर सात पैसे रोजाना के राशन पर ही जिन्दगी गुजार रहे थे।

इस भोजन ने जयप्रकाश के स्वास्थ्य को और भी चौपट कर डाला था,

वह न तेजी से चल सकते थे, न तन कर खड़े हो सकते थे। किन्तु, उनका हृदय और मस्तिष्क और भी मजबूत और दृढ़निश्चयी बन चुके थे। उन्होंने तय कर लिया, वह बाहर जायेंगे ही और अब उसके लिए आखिरी तैयारी भी शुरु कर दी गई।

जहाँ तक दीवार के उस पार जाने का सवाल था, उसके लिए ज्यादा चिन्ता की जरूरत नहीं थी। यह तो पाँच मिनट का खेल था। सवाल था कि बाहर जाने पर क्या हाल हो? सरदार सुचासिंह और विप्लव-बंदियों का इतिहास वहाँ रास्ता रोके खड़ा था। फिर, जयप्रकाश की यह बीमारी। इसलिए पहली जरूरत तो यह थी कि कोई तेज सवारी हो, जो तुरत किसी स्टेशन या शहर तक पहुँचा दे। इस सवारी के लिए भी प्रयत्न किये गये। जयप्रकाश का धीरज जैसे अन्तिम सीमा तक पहुँच चुका था। वे तो ऐसे लोगों से भी माँग करने को तैयार थे, जिनसे पूछने की कोई कल्पना भी नहीं कर सकता। जयप्रकाश को अपने पर असीम विश्वास है न? किन्तु साथियों ने मना किया। तब सोचा गया, एक आदमी एसा खोजा जाय, जो जंगलों की राह से सुरक्षित स्थान तक पहुँचा दे सके और यह सुरक्षित स्थान कमसे कम दूरी पर हो, क्योंकि जयप्रकाश के वर्तमान स्वास्थ्य के लिए लम्बी दूरी ठीक नहीं। कम से कम दूरी के साथ ही ज्यादा से ज्यादा वक्त मिल सके, यह भी सोचना जरूरी था। रात में ही जाया जा सकता है और नौ बजे शाम को वार्डबन्दी शुरु हो जाती है। यदि सात बजे शाम को भी जाया जाय, तो दो घंटे में कहाँ तक निकला जा सकेगा? क्योंकि वार्डबंदी के समय भंडा फूटेगा ही। इसलिए कोई तरकीब सोची जाय, जिससे कुछ ज्यादा वक्त मिल सके। त्योहारों के दिन वार्डबंदी में अमूमन देर होती है—विजयादशमी के दिन देख लिया गया कि आधी रात तक वार्ड खुले रह सकते हैं। विजयादशमी के बाद दीवाली!—बस, यह तारीख भी तय हो गई!

जयप्रकाश का मस्तिष्क वैज्ञानिक है न? उन्हें तो प्रयोग पर विश्वास है। इसलिए जिस तरह विजयादशमी को प्रयोग करके देख लिया गया कि वार्ड देर तक खुले रह सकते हैं, बुर्जियों की रोशनी के बावजूद कई ऐसी जगहें हैं जहाँ दीवार के निकट अंधकार रहता है, वार्डरों और जमादारों को कुछ देर तक

चकमे में रखा जा सकता है; वहाँ दीवार लाँघने का प्रयोग भी वह कर लेना चाहते हैं। एक सेल में इसका प्रयोग कई दिनों तक चलता है; घड़ी देख कर अन्दाजा कर लिया जाता है कि ठीक कितने वक्त में सबके सब निकल जा सकेंगे।

साथियों के चुनाव में दो बातों का ध्यान रखा गया—एक तो यह कि कुछ ऐसे साथियों को जेल में रहना चाहिये, जो उस रात को ज्यादा से ज्यादा वक्त तक वार्डबंदी में देर करा सकें, फिर वार्डबंदी के समय भी कुछ ऐसा तिकड़म लगा सकें कि भंडा न फूटे और ज्यादा से ज्यादा वक्त भागनेवालों को मिल पाये तथा भागने के बाद जो सरकारी उत्पीड़न और कांग्रेसजनों की प्रतिक्रिया हो, उसका मुकाबला कर सकें। जो बाहर जानेवाले थे, उनमें सबसे बड़ी जरूरत साहस और बल की थी। ऐसे लोग हों, जो वक्त पड़ने पर दो-दो हाथ लड़ सकें; जो जरूरत पड़ने पर जयप्रकाश को भागने में मदद कर सकें, जो बाहर में काम के सिद्ध हो सकें, और जो रास्ते की मुसीबतों को बखूबी झेल सकें। इस पलायन-कांड के नेता तो श्रीयोगेन्द्रशुक्लजी थे ही—योगेन्द्रशुक्लजी, बिहार के शेर, बिहार के प्रथम क्रान्तिकारी, जिनकी एक ललकार से ही कितनों की धोतियाँ ढीली पड़ जायँ। फिर सूर्यनारायण सिंह—क्षत्रित्व के जीवंत प्रतीक, बहादुर, जाँ-निसार। गुलाबचन्द या गुलाली—मौलनिया-केस के नायक, दृढ़निश्चयी, वफादार। श्री रामनन्दन मिश्र उड़ीसा से आये और उन्होंने भी जाने की उत्सुकता प्रगट की, वह भी ले लिये गये और राह बताने के लिए शालिग्रामसिंह—हजारीबाग कांग्रेस कमीटी के मंत्री, मौन जनसेवक, सच्चा सिपाही।

यहाँ एक दिलचस्प घटना का उल्लेख अधिक नहीं होगा—जब विजयादशमी के दिन यह प्रयोग चल रहा था कि कितनी देर तक वार्ड खुले रह सकते हैं और कहाँ से भागना सबसे मौजूँ होगा, तो देखा यह गया कि दो राजबंदी एक सीढ़ी खिसकाते दीवार की ओर बढ़ रहे हैं। ये दोनों शहर के अखारों में से थे और उत्साह में आकर कुछ कर रहे थे कि पुलिस ने इन्हें पकड़ कर जेल में रख दिया था। अब ये दोनों आज की इस देर की वार्डबंदी से फायदा उठा कर जेल से भागने की धुन में थे। यदि इन्हें भागने दिया गया,

तो फिर कल से ही लड़ाई शुरू हो जायगी, जेल के अधिकारी चौकन्ना हो जायँगे और दीवाली की योजना पिछली योजनाओं की तरह ही सिर धुनन की बात मात्र रह जायगी। लेकिन इन्हें रोका कैसे जाय? और इस सीढ़ी का क्या हो? झट एक साथी चादर को सिर पर मुरेठे की तरह बाँध कर उस तरफ बढ़ा और जरा खाँस दिया—खाँसी सुन और इन्हें वार्डर समझ कर वे दोनों तो भागे। किन्तु सवाल सीढ़ी का रह गया। अगर सीढ़ी वहीं रही, तो फिर हल्ला मचेगा और चौकसी बढ़ जायगी। लेकिन यदि कोई हटाने गया और किसी ने देख लिया, तब तो वही आदमी भागनेवाला माना जायगा और पकी भद्द होगी। यह असमंजस की हालत थी। खैर, एक साथी को सूझ आई। वह सीढ़ी के नजदीक पेशाब करने के लिए बैठ गये, उसमें झट एक रस्सी बाँध दी, और रस्सी को दूर से जाकर धीरे-धीरे खींचते हुए सीढ़ी को दीवार से काफी दूर तक हटा दिया। तो भी कुछ शक हो सकता था। किन्तु, *मालूम होता है, अब किसी जमादार ने सीढ़ी देखी, अपन पर विपता आने के* डर से वहाँ से उठा कर उसे वहाँ रख दिया जहाँ से वह लाई गई थी।

४. दीवाली फिर आ गई सजनी !

आज की उषा में कुछ अजीब आकर्षण है। आज की प्रभात-किरणों में सोना-ही-सोना है।

हजारीबाग जेल के लगभग एक दर्जन राजबंदी आज कुछ विचित्र सपना देखते उठे हैं। वह सपना—उसमें उत्साह है, उमंग है; आकुलता है, आशंका है।

जयप्रकाश यों कुछ देर से उठा करते हैं – किन्तु, आज सवेरे उठ कर डोकरा किता से बाबू-वार्ड की ओर आ रहे हैं, जहाँ उनके दूसरे साथी हैं। यह जयप्रकाश! लगभग एक सप्ताह से दाढ़ी नहीं बनाई है, काले-उजले बालों की खिचड़ी बनी यह दाढ़ी उनकी दुर्बलता को और भी नुमायाँ कर रही है। आगे के दाँत टूट गये हैं, जिन्होंने उनकी आकृति में ही नहीं, आवाज में भी विकृति ला दी है। आँखें कुछ धँसी हुई—गाल पुचके हुए। चलते हैं तो झुक कर—और जमीन को नापते हुए-से ! उनके एक साथी का हृदयावेग फूट पड़ता है—

"आपकी तन्दुरुस्ती को देखकर हमारा दिल बार-बार सहम उठता है। यों तो आप.........।"

और, यह देखिये, सूखा चेहरा तमतमा उठता है, धँसी आँखें बल उठती हैं, गालों पर एक क्षण के लिए गुलाबी दौड़ जाती है; अपनी पूरी ऊँचाई में तन कर, अपनी वाणी को ज्यादा से ज्यादा स्पष्ट करते हुए, जय-प्रकाश बोल उठते हैं—

"क्या आप समझते हैं जिस्म ही सब कुछ है—स्पिरिट कुछ नहीं !... और जब मैं तय कर चुका, तो इस आखिरी वक्त में यह सब कहने का क्या फायदा ? मुझे जाना चाहिये, मैं जा रहा हूँ—आगे जो होना होगा, होगा !"

फिर, जैसे इस प्रसंग की यह कुछ चर्चा भी सुनना पसंद नहीं करते। वह अपने एक बीमार साथी को देखने के लिए अस्पताल की ओर चल पड़ते हैं। सभी साथी स्तब्ध, निस्तब्ध रह जाते हैं। जिस साथी ने उनसे कहा था, उनकी आँखें सजल हो उठती हैं।

आज दीवाली है। तैयारियाँ हो रही हैं कि आज दिन भर कौन-कौन खेल होंगे ? खाने-पीने को क्या क्या बनेगा ? शाम के बाद क्या खेल होगा और किस प्रकार बारह बजे रात तक हँसी-खुशी में वक्त काटा जायगा ? यहाँ गानेवाले हैं, यहाँ बजाने वाले हैं; यहाँ खेलने वाले हैं, खाने वाले हैं, खिलाने वाले हैं। जयप्रकाश के लिए कई जगहों की दावतें हैं—शाम को उन्हें बैडमिन्टन का मैच भी खेलना है। ताश के तो पुराने खिलाड़ी हैं ही—आज बाजी बद कर खेलना है उन्हें। बैडमिन्टन में भी हारेंगे, ताश में भी हारेंगे। बाबू कृष्णवल्लभ सहाय से बैडमिन्टन में वह क्या खाकर जीत सकेंगे ? और बाबू यदुवंश सहाय से ताश में एक-दो टिन स्टेट एक्सप्रेस जरूर हारेंगे।

गाने बजाने वालों ने तय किया है, शाम को खानेपीने के बाद एक थाल में बयालीस दीपक जलाये जायँगे और जलूस बनाकर वार्ड-वार्ड घूमा जायगा। जलूस में गाने के लिए सिनेमा का वह प्रसिद्ध गीत चुना गया है— 'दिवाली फिर आ गई सजनी।'

थीयोगेन्द्र शुक्ल जो आज सबसे बड़ी मस्ती में हैं। वह अपने एक प्रिय साथी के मेल में बैठे कह रहे हैं—अरे, जरा वह गाना तो सुनाओ—

"वह हिंद का जिन्दा कांप रहा है, गूँज रही हैं तकबीरें।
उकताये हैं शायद कुछ कैदी और तोड़ रहे हैं जजीरें।"

ये दावतें, ये खेल, ये गाने—सब की तैयारियाँ कुछ इस स्वाभाविकता से हो रही हैं कि जेल के राजबंदी समझ भी नहीं पाते कि कुछ अस्वाभाविक घटनायें भी घट सकती हैं। साधारण राजबंदियों की कौन-सी बात—जयप्रकाश की पार्टी के लगभग सौ सदस्य यहाँ हैं, उन्हें भी पता नहीं है कि क्या होने जा रहा है! जानते हैं सिर्फ वे आधे दर्जन लोग जिन्हें जाना है और आधे दर्जन और वे साथी जिन्हें भीतर इन्तजाम करना और स्थिति सम्हालना है।

जो लोग जाने वाले हैं, वे तीन वार्डों में रहते हैं। जयप्रकाश, शुक्ल जी और गुलाली एक वार्ड में और सूरजनारायण छोकरे किते में ही दूसरे वार्ड में। रामनन्दन मिश्र और शालिग्राम जो बाबू वार्ड के पहले नम्बर में।

शाम हुई, झुटपुटा हुआ। चारों ओर दीपक जलने लगे। लोग एक दूसरे से गले-गले मिलने लगे। जयप्रकाश भी उन सब से मिले, जिनसे उनकी घनिष्ठता है। यह मिलन-जुलन—इसमें भी कहीं कोई अस्वाभिकता नहीं दिखाई पड़ती है।

हाँ, कुछ आँखें रह-रह कर पसीज उठती हैं, कुछ साँसें ज़ोर-ज़ोर से चलने लगती हैं। किन्तु कोई किसी से कुछ कह नहीं रहा है। सब के सब एक बड़े नाटक के खिलाड़ी की हैसियत से अपने-अपने पार्ट अदा करने के तैयारियाँ कर रहे हैं।

इस पार्ट का रिहर्सल और तैयारी पहले से किये जा रहे थे। बाहर जाकर पहले देहाती के रूप में जंगल पार करना होगा, फिर स्टेशन के नजदीक पहुँच कर अलग-अलग सूरत-शकल अख्तियार करनी होगी। उसीके अनुरूप कपड़ों का इन्तजाम कर लिया गया है। न-जाने रास्ते में क्या झंझट आ पड़े, इसलिए थोड़ी बहुत खाने की चीजों का भी जोगाड़ कर लिया गया है। पहाड़ी प्रदेश में चलने के लिए खास जूते भी मंगा लिये गये हैं। कुछ नकद रुपये का भी प्रबंध कर लिया गया है।

शाम के पहले फिर एक बार बाहर के लिए सवारी का इन्तजाम कर लेने की कोशिश की जाती है, किन्तु फिर नाकामयाबी मिलती है। अतः अब 'चरणदास की जोड़ी' का ही भरोसा रखकर आगे बढ़ने का तय कर लिया जाता है।

किन्तु, यह क्या ? ज्यों ही थोड़ी रात बीती है, जयप्रकाश के कमरे में जो दो और सज्जन हैं उनमें एक के पेट में ज़ोरों से दर्द शुरू हो जाता है। वह अलसर के पुराने मरीज हैं। दर्द उठना और डॉक्टर आदि का वहाँ आना-जाना शुरू हुआ। अब क्या होगा ? निस्सन्देह, वे दोनों सज्जन नहीं जानते थे कि क्या होने वाला है और यदि जानते भी तो अलसर का यह दर्द रुकने-वाला थोड़े ही था।

इसके चलते थोड़ी देर हो जाती है। किन्तु, आगे चलकर इससे फायदा ही फायदा होता है।

अब उपयुक्त अवसर आ गया। जयप्रकाश अपने एक प्रियजन से अन्तिम बार मिल रहे हैं। अन्तिम ? हाँ, जयप्रकाश ऐसा ही समझ रहे हैं। वह उनसे लिपट पड़ते हैं, कहते हैं—"अब हम नहीं मिल सकेंगे, शायद ?" शायद कहने तक उनका गला भर आता है। वह प्रियजन सुनकर भौंचक हो रहते हैं। 'अब हम नहीं मिल सकेंगे ?' ओहो, जयप्रकाश ने अपनी जान बाजी पर चढ़ा दी है। रोशनी न रहो, न तो दोनों ओर की आँखें और चेहरे अजीब दृश्य उपस्थित करते।

सिर्फ छः मिनट—और, छः अभियानी दीवार के उस पार थे।

इधर जेल के भीतर "दीवाली, फिर आ गई सजनी" का जुलूस निकला हुआ है। हाँ, जुलूस ही। आगे-आगे वह दीपक की थाल है; पीछे गाने-वाले। उसके बाद दर्शकों का झुंड। दर्शकों में छोटे-बड़े सभी तरह के लोग शामिल हैं। सिर्फ कैदी ही नहीं—वार्डर और जमादार भी इस अभूत-पूर्व तमाशे को देखते घूम रहे हैं। छः बाबू वार्डों के कमरे-कमरे में जुलूस जाता है, फिर पंजाबी सेलों की तरफ। पंजाबी सेलों के निकट जाकर एक कैदी बोल उठता है—"चलिए छोकरा किता, जयप्रकाश बाबू की दिखला आया जाय !" और, लोग मुड़ जाते हैं उस ओर। अब क्या हो ! इस प्रवाह

को किस तरह रोका जाय ? झट दो आदमी आगे बढ़ जाते हैं और कहते हैं—"नहीं नहीं, वहाँ एक आदमी सख्त बीमार पड़ गये हैं, वहाँ हल्ला ठीक नहीं।" जुलूस फिर मुड़ जाता है।

इस वार्ड से उस वार्ड—इस कमरे से उस कमरे। उसकी आखिरी तान टूटती है बाबा सच्चिदानन्दजी के कमरे में। वह बेचारे सो रहे थे। उनके कुछ शैतान 'चेले' उनके कमरे के नजदीक जाकर उन्हें चिल्ला-चिल्ला कर जगाने लगे। उनके व्याख्यानों और लाठी-चार्जों का मजा लोग यहाँ प्रायः लूटा करते हैं—इस जेल की एकरसता भंग करने में उनका बड़ा हाथ रहता आया है। इस आधी रात को भी उन्होंने लाठी-चार्ज कर ही दिया। कुछ को चोट भी लगी। सब के सब भागे।

हाँ, अब रात बारह बजे से ज्यादा बीत चुकी है। अब वे लोग सात मील की दूरी पार कर चुके होंगे और निर्धारित अड्डे पर पहुंच गये होंगे। किन्तु कोशिश की जाय—जितनी ज्यादा देर तक भंडा नहीं फूटता है, उतना ही अच्छा।

एक आदमी को जयप्रकाश के कमरे में भेजा जाता है। तब तक वहाँ रह गये वे दोनों सज्जन सो चुके हैं। जो तीन सज्जन बाहर गये हैं, उनके बिछावन की मशहरियाँ पहले से ही गिरा दी गई हैं। तकिये और ओढ़ने को इस सलीके से रख दिया गया है कि मालूम हो, लोग सो रहे हैं। वह आदमी आकर घरके दरवाजे पर एक कुर्सी लेकर बैठ जाता है। ज्योंही जमादार साहब अपने बूटों को चमर चमर करते और चपरासी के कब्जे को झनझनाते आते दीख पड़ते हैं—वह आदमी आगे बढ़ता और हाथ को मुंह पर ले जाकर इस तरह इशारा करता है कि बीमार अभी सोये हैं, आप उधर से ही लौट जाइये। उस समय तक इस जेल में नियम था कि जिस कमरे में बीमार हो, वह बन्द नहीं किया जाता था, डाक्टर और जेलर से कहने पर खुले रखने की इजाजत मिल जाया करती थी। यह प्रथा इतनी प्रचलित थी कि जमादार साहब ने मान लिया होगा कि इजाजत लेली गई है—क्योंकि इस बीमारी की चर्चा शाम को ही जेल भर में हो चुकी थी। रात में जब-जब पहरे वाले और नये जमादार या वार्डर गश्त में आये, तब-तब ऐसा ही

किया गया और किसी ने कमरे को बन्द करने या भीतर घुस कर गिनती लेने की जरूरत भी महसूस नहीं की। बाहर से तो मालूम होता ही था कि लोग सोये हुए हैं।

जरा उस आदमी की भक्ति, साहस और चातुरी के निकट सर झुकाइये, जो रातभर वहाँ बैठा रहा और यों जमादारों को चकमे में डालता रहा; क्योंकि जरा भी भेद खुलता, तो सारा गुस्सा उसी पर उतारा जाता। वह कोई बड़ा आदमी भी नहीं था, जो उसे माफी मिल पाती!

छोकरा किते के दूसरे वार्ड से सिर्फ एक आदमी निकला था—वहाँ वार्ड-बन्दी में दिक्कत नहीं हुई। "सब बाबू आगइल बाड़न?" और जवाब में "हाँ जमदार साहब!" बस, किस्सा खतम। किन्तु, इधर बाबू-वार्ड के पहले नम्बर से दो आदमी भागे थे। एक का कमरा तो बन्द हुआ, दूसरे के कमरे के नजदीक पहुँचने पर वार्डर पूछने लगा—"इसके बाबू कहाँ हैं?" "बाहर तमाशा देखने गये होंगे!"—ऐसा कह तो दिया गया किन्तु, जब तक उस वार्डर का पहरा नहीं बदला, तब तक फिर नये तमाशे का इंतजाम चलता रहा। जब दूसरा वार्डर आया, तब फिर वह कमरा भी रामराम करके बन्द कराया जा सका!

चारों ओर सन्नाटा है। कहीं से गाने की आवाज आ रही है—"पंछी उड़ जा अपने देश!" हाँ, हाँ, उड़ जा, उड़ जा! और, जब गाने की दूसरी कड़ी आती है—

"हौले हौले उड़कर जाना, नन्हें-नन्हें पर न थकाना" तब? जेल का समूचा वातावरण जैसे काँपता, सिहरता-सा मालूम हो रहा है। गानेवाला वह विद्यार्थी क्या जानता था कि वह इस गीत को गाकर अपने दिल को हल्का करने के बदले कितने दिलों की धड़कन को तेज कर रहा था।

भोर होती है। आज का दिन कुछ भारी है। आसमान पर बादल छाये हुए हैं। वे लोग कहाँ होंगे? कैसे होंगे? कपड़े यहीं छूट गये! जूते यहीं छूट गये, खाना यहीं छूट गया, पैसे यहीं छूट गये! उफ, लेकिन, अब तक तो अड्डे पर जरूर पहुँच चुके होंगे। शालिग्रामजी जो साथ में हैं। वह जरूर कोई इन्तजाम कर सके होंगे। किन्तु, अभी कुछ निश्चित क्या

कहा जाय ! क्या कुछ और देर तक इस प्रसंग को छिपाया नहीं जा सकता ! हाँ, हाँ, कुछ और देर...

जयप्रकाश भोर में मार्क्सवाद पर क्लास करते हैं। जेलभर से लोग छोकरा-किते में उनके यहाँ पहुँचते हैं। इस तरफ खबर करा दी गई—"जयप्रकाश की तबीयत खराब है, रातभर नींद नहीं आयी; अभी सोये हैं, आपलोग उनकी ओर न जाइये।" और, छोकरा-किते के लोगों ने समझा—आज सबेरे ही जयप्रकाश बाबू-वार्ड की ओर चले गये हैं।

बाबू-वार्ड की ओर भोर में भी कुछ खेल हुए, कुछ गाने हुए। लोगों का ध्यान और बँटा रहा। किन्तु, दस बजते-बजते मालूम हो रहा है—अब बम फूटने जा रहा है। क्योंकि देखिये, यह बड़े जमादार साहब जयप्रकाशजी की तलाश में वार्ड-वार्ड घूम रहे हैं। बात यों है कि इस जेल में नये सुपरिन्टेन्डेन्ट साहब परसों ही पधारे हैं। आज आफिस में आने के बाद जेल के भीतरी प्रबंध के बारे में कुछ जरूरी निर्णय कर लेने के लिए वह एक-दो परिचित राजबंदी को बुलाते हैं। उन लोगों ने उनसे कहा है कि इस जेल में जयप्रकाश ही सर्वेसर्वा हैं, आप उनसे ही मिलिये। वे राजबंदी बेचारे यह क्या जानते थे कि जयप्रकाश यहाँ हैं नहीं—फलतः वे एक भयानक भंडाफोड़ के कारण बन रहे हैं। खैर, उनकी बात पर सुपरिन्टेन्डेन्ट साहब छोकरा-किता पहुँचते हैं। वहाँ पता चलता है, जयप्रकाश यहाँ नहीं हैं, शायद बाबू-वार्ड की ओर गये होंगे। साहब बैठ जाते हैं जयप्रकाश के कमरे के बरामदे में और जमादार से उन्हें बुला लाने को कहते हैं।

जमादार जब किसी वार्ड में पहुँचता है, तुरत कोई-न-कोई ऐसा निकल ही आता है, जो उसे कहता है कि मैंने जयप्रकाश को अमुक ओर जाते देखा है। वह बेचारा इधर-उधर मारा-मारा फिर रहा है। छः बाबू-वार्ड, पूरा अस्पताल, तीनों पंजाबी-सेल वह खोज डालता है और अन्ततः यह समझ कर लौटता है कि शायद जयप्रकाश अपने कमरे में लौट गये हों। रास्ते में ही जेलर से भेंट होती है, जिसे सुपरिन्टेन्डेन्ट ने देर होते देख कर भेजा है। जेलर जब जमादार के मुँह से सारी बातें सुनता है, चौंक उठता है। कहता है—"देखो तो, शुक्लजी कहाँ हैं?" योगेन्द्र शुक्लजी। बिहार भर के खेल

गुरुजी के नाम से काँपते हैं। जेलर ने बहुत सही समझा—बिना गुरुजी के कौन जेल की दीवार फाँदने की हिम्मत कर सकता है!

थोड़ी देर फिर दोनों की दौड़धूप! जेलर के चेहरे पर हवाइयाँ उड़ रही हैं और जमादार आकर जब कहता है—"हुजूर, गुरुजी भी नहीं दिखाई दे रहे।" "और सूरज बाबू!" "जहाँ तक याद है, उन्हें भी नहीं देखा!" बस, वह सुपरिन्टेन्डेन्ट के पास दौड़ता पहुँचा और अब देखिये, सुपरिन्टेन्डेन्ट का पूरा काफला बेतहाशा जेल-दफ्तर में, गेट की ओर, भागा जा रहा है!

टन-टन-टन! टन-टन-टन! यह पगली घंटी बज उठी। सारा जेल गूँज उठा। सभी वार्डों के फाटक बन्द हो गये। सब सेन्ट्रल टावर की ओर दौड़ पड़े। "क्या दौड़ रहे हो? झूठी पगली होगी!" "जमादार साहब, क्या बात है?" "क्या कहा—जयप्रकाशजी भाग गये!" "वाह साहब, क्या कहने हैं।" तरह-तरह का कोलाहल! पगली घंटी का इस्तेमाल इधर मुद्दत से नहीं हुआ था। घंटी टूट कर नीचे गिर पड़ी। ठहाका पड़ने लगा—"अँगरेजी राज की घंटी टूट गिरी!" घंटी टूटने पर खतरे की लाल झंडी दिखाई जाने लगी। कमाची पतली थी—हवा के झोंके से झंडी निकल कर हवा में तैरती हुई जमीन पर आ रही! "अँगरेजी राज का झंडा गिर गया!"—फिर ठहाके पर ठहाके! "क्या सचमुच जयप्रकाशजी भाग गये हैं!" एक ने कहा—"करें तो क्या? न यहाँ ऊंनी मिलती है न वर्दी, इस जाड़े में कोई यहाँ क्यों रहे!" बात यों है, कि इस जेल के राजबन्दियों को जाड़े में ऊंनी कुर्ता और ऊन की बंडी मिला करते थे; किन्तु इस साल ये अब तक नहीं मिल पाये थे। उसी पर यह किसीने दिल्लगी कर दी। अब ठहाका अट्टहास में बदल गया!

यह ठहाका और अट्टहास कुछ ऐसे संक्रामक हुए कि लगभग दो बजे जब पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट जेल में आये, तो उनके डिपुटी ने एक राजबन्दी को बुला कर कहा—"...जो, जाने दीजिये, बहुत दिल्लगी हुई। अब जयप्रकाशजी को बाहर कीजिये! भला उनके ऐसा आदमी कहीं जेल से भागता है?"

किन्तु, धीरे-धीरे इस घटना की गम्भीरता जेल पर छाने लगी। जेल के अफसरों ने जेल के कोने-कोने को छान डाला—सेल देखे गये, वार्ड देखे

गये—बिस्तरों के नीचे देखा गया, पेड़ों के ऊपर देखा गया, पाखाने देखे गये, रसोई-घर देखे गये। "जयप्रकाशजी सचमुच भाग गये और उनके साथ ही योगेन्द्र शुक्लजी, सूरज नारायणजी, रामनन्दन मिश्रजी, गुलालीजी और शालिग्रामजी भी।

भोर से ही बाबू रामनारायण सिंहजी कई बार शालिग्राम की चर्चा कर रहे थे—यह कहाँ चला जाया करता है, कब खाने आयगा आदि। जिस समय पगली घंटी बज रही थी, वह निश्चिन्त होकर शतरंज खेल रहे थे; क्योंकि वह सोच भी नहीं सकते थे कि जयप्रकाश या कोई राजबन्दी जेल से भागेगा। किन्तु, कितना आश्चर्य—इन राजबन्दियों को जेल से भगाने के अभियोग में सबसे पहले सजा दी गई रामनारायण बाबू को ही! एक रात को उन्हें गेट पर बुलाया गया और श्री कृष्णवल्लभ सहाय (अब माल‌मन्त्री, बिहार सरकार) एवं श्री सुखलाल सिंह (अब पार्लियामेंटरी सेक्रेटरी) के साथ उन्हें चुपके-चुपके भागलपुर जेल भेज दिया गया।

अन्य राजबन्दियों पर जो गुस्सा जेल-अधिकारियों ने उतारा, उसकी चर्चा, ही फिजूल। किन्तु चाहे जो हो, १९४२ की इस हजारीबाग की दिवाली को बिहार का राजनीतिक इतिहास तो भूल नहीं सकता।

५. "कहीं आदमी जेल में रखा जाता है?"

अब जेल के भीतर क्या रखा है भला? चलिये, जरा बाहर चल कर तमाशा देखें।

देखिये, यह सामने दीवाल है। पत्थर की काली दीवाल, जिसे अमावस्या की कालिमा ने और काली-काली बना रखा है। चारों ओर कैसी निस्तब्धता! धान के खेतों में हवा साँय-साँय कर रही है और एक टिटहरी अभी टें-टें करके सिर से निकल गई है।

दीवाल के ऊपर वह देखिये, एक काली-काली-सी आकृति। आकृति हिल रही है। फिर वह दीवाल के सहारे ससर कर जमीन पर आ खड़ी होती है। पहचाना आपने? पहचान सकेंगे कैसे? काली सूरत, काली कमीज, काला पैंट। यह सूरज नारायण हैं। इन सबों में सब से तेज दौड़ सकते

हैं सूरज; यह 'डेअर डेविलरी' में भी किसी से कम नहीं हैं। पहले आये हैं कि यदि कोई गड़बड़ हो तो भाग निकल सकें और नहीं, तो 'औल क्लियर' का सिगनल भीतर भेज सकें।

इधर-उधर देखते हैं, कुछ नहीं। चारों ओर अंधकार है, सन्नाटा है। सिगनल—और, यह दीवाल पर दूसरी आकृति ! यह शालिग्राम हैं ! पथप्रदर्शक तो इन्हें ही होना है न ? यह भी खिसक कर जमीन पर आ जाते हैं और दोनों लेट रहते हैं, कहीं दूर से कोई टौर्च भी डाले, तो दिखाई नहीं पड़े।

फिर तीसरी आकृति ! लम्बी, पतली ! यह जयप्रकाश हैं। शरीर में सिर्फ एक ऊनी बनियाइन है, जिससे शरीर की लम्बाई बढ़ी-सी मालूम पड़ती है। यह भी नीचे आ रहते हैं, एक बार इस ऊँची दीवाल की ओर नीचे से ऊपर तक नजर डालते हैं और फिर दोनों साथियों के नजदीक दुबक कर बैठ जाते हैं।

यह आये रामनन्दन ! अपना कोट हड़बड़ी में उसी पार छोड़ आये हैं—जिसमें रुपये भी हैं।

और, तब शुक्लजी ! इस जहाज के कर्णधार ! इस अभियान के नेता ! जैसा शरीर, वैसी हिम्मत ! उनके पीछे, छाया की तरह गुलाली !

लेकिन यह क्या ? अन्त में डोर के सहारे जो गठरी आने वाली थी, वह आ नहीं रही ! उसी गठरी में कपड़े हैं, जूते हैं, खाने की कुछ चीजें हैं। आती कहाँ तक, धम्म-सी आवाज। क्या गठरी डोर से खुल कर गिर गई ? अब क्या हो ? "मैं लाने जा रहा हूँ !"—गुलाली ने कहा। किन्तु फिर धम्म-सी आवाज ! नहीं नहीं, अब रुकना ठीक नहीं—हम आगे बढ़ें ! जो होना होगा, होगा !

छः मिनट के अन्दर-अन्दर जेल की चहारदिवारी को पार कर छः व्यक्तियों का यह काफला चल पड़ता है।

थोड़ी दूर छाती के बल रेंगते हुए, फिर हाथ और घुटनों के सहारे, तब छाती और सिर झुका कर, अन्त में सिर ताने छः के-छः ये नये अभियानी भारतीय इतिहास में एक नया अध्याय लिखते आगे बढ़ रहे हैं !

हाँ, भारतीय इतिहास में यह नया अध्याय लिखा जा रहा था। सुना कि वारंट कट गया, और फिरार हो गये; जमानत पर जेल से बाहर आये और पूरा इन्तजाम कर एक रात को अन्तर्धान हो गये; एक्का-दुक्का पुलिस को पकड़ में डाल कर चम्पत हो गये—ऐसे उदाहरण भारतीय क्रान्तिकारियों के इतिहास में देखा-सुना गया था। किन्तु, जयप्रकाश ऐसे देशविख्यात व्यक्ति का, बिना किसी बाहरी सहायता के, घोर जंगलों और पहाड़ों के बीच बने जेल से यों एक काफले के साथ निकल भागना और पूरी कामयाबी के साथ, ऐसा पहले कभी नहीं हुआ था।

लेकिन, हम यह इतिहास में क्या उलझ गये—हम जरा इस जीवित इतिहास का पदानुसरण करें।

अरे, यह क्या हुआ? अभी दस कदम भी आगे नहीं बढ़ पाये थे कि सबके सब पानी में चभ चभ करके गिर गये। यह पानी? क्या जेल का नाला है यह? या खेतों को पटाने के लिए बनाया गया नाला। कम्बख्त जो कुछ हो—रहे-सहे कपड़ों को भी तो भिगो डाला! यह नवम्बर की हजारीबाग की रात। सायँ-सायँ हवा। कपड़े भींगे और तेजी से कदम बढ़ रहे। दाँत कट-कट कर रहे, हाथ काँप रहे, किन्तु, कदम, हाँ तेजी से बढ़ रहे।

बढ़े चलो, बढ़े चलो!—अब तो ये दौड़ते चले जा रहे हैं। कहाँ जा रहे हैं? किस ओर जा रहे हैं? रास्ता कहाँ है? छोड़िये इन झंझटों को—बढ़े चलिये! बढ़े चलिये, पहले काफी दूर निकल जायँ, सुरक्षा का इत्मीनान कर लें, फिर रास्ता ढूँढ़ लेंगे। जिसे जेल की दीवाल रास्ता दे सकी, उसे धरतीमाता रास्ता न देंगी? बढ़े चलिये, बढ़े चलिये!

बढ़े चलिये, बढ़े चलिये—किंतु क्या बढ़ियेगा, कहाँ तक बढ़ियेगा? वह पीछे देखिये, जेल के सेन्ट्रल टावर की वह रोशनी आपकी ओर घूर-घूर कर देख रही है और व्यंग के स्वर में कह रही है—हजरात, आपलोग भागे कहाँ जा रहे हैं? मैं देख रही हूँ, देख रही हूँ आपलोगों को! आप लोग कहाँ छिप पायेंगे, कहाँ जायँगे?

उफ़, इस रोशनी से कैसे पिंड छूटे? यह पिशाचिनी कब हमारा पीछा छोड़ेगी? बढ़े चलो दोस्तो, बढ़े चल।

यह हैं जयप्रकाश—जो सीधे तनकर खड़ा भी नहीं हो पाते थे; जो गिन-गिन कर डग रखते थे। इस रात में, इस अंधेरे में, इस खुरदरी जमीन पर, इस ककरीले रास्ते पर किस तरह दौड़े भागे जा रहे हैं।

"देखिये जयप्रकाशजी, यही आप हैं। कहाँ गई कमजोरी, कहाँ गई दुर्बलता। आजाद हवा ने हमारे पैरों में जैसे पंख लगा दिये हों। अरे, आदमी कहीं जेल में रखा जाता है?"

यह शुक्लजी बोल रहे हैं। कविता बोल रहे हैं। शुक्लजी कविता बोल रहे हैं। जिनका शरीर इस्पाती, दिल इस्पाती, मसूबे इस्पाती, इरादे इस्पाती—वही इस्पाती शुक्लजी इस समय जैसे कवि बन गये हों। चट्टान के नीचे झरना होता है—काश, आदमी आदमी के बारे में भी यह सत्य हमेशा याद रखता।

एक घंटा, दो घंटे, तीन घंटे, चार घंटे, पाँच घंटे—हाँ, पाँच घंटों की लगातार दौड़-धूप के बाद जेल की रोशनी से पिंड छूटा। तब, अब देखते हैं, पगडंडियाँ भी गायब हो रही हैं और सामने घनघोर जंगल।

सात मिल पर जो अड्डा था—अब तो उसकी बात भी नहीं सोची जा सकती थी। ये बहुत दूर निकल आये हैं। शालिग्राम अब पथप्रदर्शक नहीं रहे; अब उनका काम असमान के तारों ने ले लिया। यह हैं सप्तर्षि, यह ध्रुव। यह हुआ उत्तर, उसके पीछे दक्षिण; यह दाहिने हाथ की तरफ पूरब, बायें पश्चिम। उस स्टेशन तक पहुँचना, वहाँ के लिए इस दिशा में बढ़ना है। बढ़े चलो, जवानो, बढ़े चलो।

जंगल है—हाथों में जरूर कुछ ले लो। तड़-तड़ करके कई टहनियाँ तोड़ी गई, उनके पत्ते दातुन छोल दिये गये—छः हाथों में अब छः डंडे हैं।

डंडे? आदमी! तुम डंडे लेकर मेरे राज में निर्द्वंद्व घुसे आ रहे? यह गुस्ताखी है तुम्हारी! सरासर गुस्ताखी! एक भयानक गुर्राहट। समूचा वन-प्रान्तर थर्रा उठा। घोंसलों के पंछी चिहुँक उठे। पत्ते काँपते-से दीखे। शेर है? हाँ, शेर है। "सूरज, चलो, साले को मार डालें!"—यह बिहार के शेर बोल रहे हैं। दो शेरों का मुकाबला है। देवताओ, जरा आसमान से इस दृश्य को देखो। लेकिन नहीं। शेर की कद्र शेर जानता है—जानवर

हुआ तो क्या ! जंगल के चौपाये शेर ने दोपाये शेर के रोब के सामने घुटने टेक दिये। "तुम्हारा लोहा मान लिया, भाई—आगे बढ़ो!" वह शेर चलता बना। शुक्लजी के नेतृत्व में उनका काफला आगे बढ़ा। रह-रह कर बादल घिर आते हैं। तारे भी गुम। लेकिन तो भी कदम आगे बढ़ते जा रहे—अब भी कोई रोशनी उन्हें राह बता रही है—हृदय की रोशनी या आदर्श की रोशनी?

यह देखिये, अब लोही लग रही है—अब भोर होने ही को है। जरा अब सुस्ता क्यों न लें? हाँ, हाँ, थोड़ा आराम कर लीजिये। एक पेड़ के नीचे सोने का क्रम होने लगा। किन्तु, कपड़े कुछ तो हवा से सूख गये हैं, कुछ अब भी गीले हैं। रामनन्दनजी सब कुछ भूल सकते हैं, सिगरेट-दियासलाई कैसे भूलें? पेड़ के पत्ते बटोर कर आग जलाई गई—शरीर भी गरम हुआ, कपड़े भी सूखे। फिर तने की उभरी जड़ों को तकिया बनाकर सब लेट गये। किन्तु, नींद आती कहाँ से है? शेर की दहाड़—जंगली जानवरों का चिक्कड़-पों—फिर, यह चिन्ता कि हम कहाँ हैं? कहीं दुश्मन तो निकट नहीं?

और, आनन्द का आधिक्य भी तो नींद नहीं आने देता! आखिर, हम जेल के बाहर हो ही गये! एक असम्भव इस आसानी से सम्भव होकर रहा! हृदय में भावनाओं की तरंगें—मस्तिष्क में विचारों की उधेड़बुन। भावनाओं और विचारों ने कब स्वप्न के रूप धारण किये, किस स्वप्न के रूप धारण किये, हम उसके गोरखधंधे में क्यों फँसने जायँ? देखिये, लोही फट चुकी है, अब किरणें छिटक रही हैं। आज की किरणें—इन्हें बादल ने ज्यादा रंगीन बना दिया है, या हमारी भावनाओं ने? जाड़े से सिकुड़े जिस्म पर ये किरणें स्वर्ण-लेप का काम करती हैं! गरमी मिल रही है, ताजगी मिल रही है।

ताजगी?—हाँ, हाँ, उठिये। कुछ ताजा हो लिये आप लोग, अब उठिये, चलिये, बढ़िये। कहाँ जाना है, मालूम है? कितनी दूर जाना है, मालूम है? यह बगल में ही जो सड़क है, उसीके समानान्तर चलते चलिये। यह सड़क किसी अड्डे पर पहुँचा ही देगी। शालिग्राम साथ में हैं—कोई

अच्छा गाँव या कस्बा आया, उनके जानपहचानी कोई-न-कोई मिल ही जायँगे, फिर तो बेड़ा पार।

भटपट उठते हैं। एक दूसरे को इस रोशनी में अच्छी तरह देखते हैं। उफ, ये ही हमलोग हैं। हूँ, यही हमलोग हैं। काफ्ला बढ़ता है, सूर्य महाराज ऊपर चढ़ते आते हैं, वक्त कटता है, रास्ता भी कट रहा है। किन्तु, अब एक चीज और काटे खा रही है। यह है भूख! रातभर चलते रहे हैं और यह अब दस बज रहा है। अँतड़ियाँ कुलबुला रही हैं। क्या बगल में, सड़क के आसपास, कोई दुकान नहीं है? जरा तलाश तो करें। किन्तु, दुकान तलाश करने के पहले टेंट की तलाशी लें। जो पचास भुने हुए रुपये थे, वे तो मिश्रजी के कोट में ही रह गये। अब सौ रुपये का एक नोट है—किसी छोटी दुकान में वह भुनेगा कैसे? और, इस रूपरंग में सौ रुपये का नोट भुनाते देख क्या लोगों को सन्देह नहीं होगा? तब हो क्या? जेल के सबसे पुराने पंछी शुक्लजी हैं—"मेरे पास कुछ न कुछ जरूर होना चाहिये।" वह अपनी झोली झाड़ते हैं और एक चवन्नी निकल आती है। वह चमचमाती चवन्नी!—लोगों की आँखों की पुतलियाँ भी चमक उठती हैं!!

किन्तु, पुतलियाँ चमकें—पेट की ज्वाला बुझनेवाली नहीं। सड़क की बगल में जो पड़ाव ढूंढ़ा गया, वहाँ खाने को कुछ नहीं मिलता!

६. तीन बेर खाते, वे ही तीन बेर खाते हैं!

उधर पेट में आग लगी है, इधर पाँव की हालत देखिये।

कंकड़ पर, पत्थड़ पर, कुशों पर, काँटों पर चलते-चलते पैर की तल्ली जैसे, घिस गई है। कितनी बार ठोकरें लगी हैं, कई बार गिरते-गिरते बचे हैं। तलवे में पहले फफोले आये, फफोलों में पानी भर आया, फिर किसी कुश-काँटे के लगने से, या ठोकर खाने से, फफोले फूट गये, पानी बह गया। पानी बह गया, फिर फफोले की पतली चमड़ी उधड़ गई। अब समूचा तलवा लाल-लाल—जरा भी कोई खोंच लगी कि खून बहने लगा। यदि कोई पीछा करनेवाला होता, इनके पैर से बहे खून के धब्बों की लकीर को पकड़ कर इन्हें पकड़ ले सकता था।

इन घायल पैरों को घसीटते सब बढ़ते आ रहे हैं। यों तो सब की हालत खराब है, किन्तु तीन तो चलने से बिल्कुल लाचार हुए जाते हैं। जयप्रकाश के पैर में साइटिका का दर्द हुआ करता है, रामनन्दन गेठिया के मरीज हैं और गुलाली के पैर में एक बड़ा काँटा घुस गया है—इस तरह यह भी लाचार हो रहा है।

किन्तु, धीरे-धीरे इन घायल पैरों को घसीटना भी मुश्किल हो रहा है। पेट में अब कुछ जाना ही चाहिये। क्या जाय? हाँ, हाँ, जंगल में कुछ कंदमूल तो मिल ही जाना चाहिये। इन्हीं कंदमूलों ने राम के चौदह साल कटा दिये, प्रताप को अकबर से सामना करने के लिए जिन्दा रखा। हमलोग खोजें तो, वनदेवी जरूर हमलोगों को कोई आहार देंगी।

और, सामने एक गूलर का पेड़ है। गूलर! लीजिये, खाइये। लेकिन ये छोटे-छोटे पकौवे, फिर कितने कम! अच्छा, यह करौंदा लीजिये। जंगली करौंदे, खट्टे-खट्टे। जो पक कर काले पड़ गये हैं, उनको खटमीठी कुछ अच्छी लगती है। और बड़ी देर पर यह झरबेर मिला। किस तरह छः के छः टूट पड़े हैं इनपर! मालूम होता है, जैसे जीवनधन मिल गया। आप खाते हैं और जो अच्छे बेर मिलते हैं, उन्हें साथी की ओर बढ़ाते हैं। भाई, जरा इसको खाओ—यह तुम्हारे ही लायक है! लेकिन यह भी तो बेर नहीं, झरबेर है। गूदा तो नाममात्र, सिर्फ गुठली-गुठली। गुठली के चाटने से तृप्ति भले ही मिल जाय, पेट नहीं भरता। अन्त में यह आँवला। आँवला—आज पाचक के रूप में नहीं, भोजन के रूप में लिया जा रहा है।

यों पेड़ों की डालियों से फल और पहाड़ी सोतों से पानी लेते लहूलुहान पैरों के साथ ये लोग बढ़ते जा रहे हैं। दिन के चार बजे गरम जल का एक झरना मिला। गरम जल में पैर रख दिये गये। पैरों को बहुत आराम मिला। पैरों के आराम के साथ पेट को भी कुछ तृप्ति इसलिए मिली कि यहीं बगल के पड़ाव से शुकुरजी अपनी चवन्नी का चूड़ा खरीद लाये। चूड़ा है, नमक है, लाल मिर्च है! कितने प्रेम से लोग खा रहे हैं। इनके आगे छप्पन भोग मात! "लेकिन भाई, अभी तो पता नहीं, कब तक जंगल-जंगल जाना है, इसलिए आधी ही रसद खाइये, आधी रसद रख दीजिये

आगे की मुहीम के लिए!" छः आदमी में आठ पैसे का चूड़ा लगभग बीस घंटे के बाद खाने को मिला। अंतड़ियों ने शोर किया—नहीं, कुछ और दो, कुछ और दो! दिमाग ने कहा—चुप पगली, चुप, कुछ आगे की भी सोच! आधा चूड़ा, नमक और लाल मिर्चे गठरी में रख लिये गये।

पेट को कुछ शान्ति मिली, पैर को कुछ आराम। किन्तु, देखा गया, थोड़ी देर के विश्राम के कारण खून कुछ इस तरह जमा हो गया है कि खाली पैर जमीन पर नहीं रखे जाते। जयप्रकाश के पैरों की सबसे बुरी हालत है। अतः कपड़े को फाड़ कर तलवों से लपेटा गया। थोड़ी दूर चलने के बाद ही तलवे का कपड़ा खून-खून हो गया, किन्तु रुकना तो असम्भव ही है। साथियों के कंधों का आसरा लिये यह धीरे-धीरे बढ़ रहे हैं।

इस तरह धीरे-धीरे बढ़ रहे हैं कि देखते हैं, आसमान पर हवाई जहाज के गश्त हो रहे हैं। इधर से उधर, उधर से इधर! नजदीक ही राँची में फौजी हवाई अड्डा है, जहाँ से हवाई जहाज जब-तब उड़ा करते हैं। यह हवाई जहाज भी यों ही मटरगश्ती में उड़ रहा है, या हमलोगों की खोज में निकला है? मान लीजिये, खोज में ही है। अब पाँत में मत चलिये, लुकछिप कर बिलग-बिलग चलिये।

किन्तु, चलियेगा क्या? जयप्रकाश की साइटिका अब जोर कर रही है। पैर की नसें तन गई हैं, अब तो उनके लिए चलना मुश्किल ही है। क्या किया जाय? शुक्लजी और शालिग्राम अब उन्हें ढोकर ले चलने लगे। दोनों ने एक-दूसरे का हाथ पकड़ा और बीच में उन्हें बिठा लिया। यह जंगली राह, यह पथरीली जमीन, पूरी रात और पूरे दिन के थके, पैर घायल, अंतड़ियाँ अब भी कुलकुला रहीं—तो भी ये दोनों अपने प्यारे साथी को ढोकर लिये चले जा रहे हैं! यदि कलियुग में आसमान से फूल बरसते, तो सबसे अधिक फूलों की वर्षा उस दिन हजारीबाग के उस जंगल में होती!

कभी साथियों की बाहों के खटोले पर और कभी उनके कन्धों का आसरा लेकर पैरों को घसीटते हुए जयप्रकाश जंगल को पार कर रहे हैं। अब झुटपुटा हो चला, अब फिर रात हो आई। किन्तु विश्राम के लिए समय कहाँ, स्थान कहाँ? अब भी पेट में चूड़े की कुछ गरमी है—हम

बढ़ते चलें, बढ़ते चलें। कुछ दूर जाने पर एक बैलगाड़ी आती हुई दीख पड़ी। गाड़ीवान भाई, जरा हमें अपनी गाड़ी पर लेते चलिये। हमलोग यात्री हैं, रास्ते में डाकुओं ने लूट लिया है। हमारे पास यही घड़ी है, ले लीजिये, बंधक रखिये और हमें लेते चलिये; बड़ा अहसान मानेंगे हम आपका! किन्तु, गाड़ीवान राजी नहीं हो रहा, नहीं हुआ। बस, सिर्फ चरणदास की जोड़ी का आसरा कीजिये, और बढ़ते चलिये!

आधी रात के बाद तक, एक बजे तक, ये लोग चलते रहे। अब पैरों ने साफ जवाब दिया। तब फिर आग जलाई गई, जिस्म को गरमाया गया, पेट में चूड़ा-नमक-मिर्च रखे गये और सो रहा गया! एक पहर सोये ये कि हड़बड़ा कर फिर उठे। चार बज गये थे, कूच कर दिया गया।

लोही लगती है, किरण फूटती है, उजाला होता है, और ये लोग चले जा रहे हैं। घड़ी बीतती है, पहर बीतते हैं। लगभग एक बजे एक ऐसी जगह पहुँचते हैं, जहाँ से शालिग्राम सबसे अधिक काम के सिद्ध हो सकते हैं। हाँ, हाँ, कहीं यहीं बगल में तो गाँव होगा, दुबेजी का गाँव। आपलोग यहीं जंगल में बैठिये, हमलोग जाते हैं, देखते हैं, क्या हो सकता है? जयप्रकाश, रामनन्दन और गुलाली रह जाते हैं—तीनों के पैर बेकार हो गये हैं न? शुक्लजी, सूरज और शालिग्राम गाँव की टोह में चलते हैं। बीच में एक पहाड़ी नाला पार करना होता है। फिर गाँव दिखाई पड़ता है। यह गाँव है, यह खलिहान है। देखिये, वह दुबेजी ही तो हैं? धान ओसा रहे हैं। अरे, आपलोग? हाँ। आपलोगों के भागने का शोर तो चारों ओर मँचा हुआ है। किन्तु होने दीजिये, चलिये, भोजन तो कीजिये। लेकिन शालिग्राम का गाँव में जाना ठीक नहीं। किसी दूसरे ने पहचान लिया तो? चलिये शुक्लजी, सूरजबाबू। दुबेजी का आँगन, रसोईघर—दोनों पलथी मारे किस शान से भात-दाल घी खा रहे हैं। पूरे पैंतालीस घंटे के बाद यह भरपेट खाना मिला है—और इन घंटों के अधिकांश का एक-एक मिनट दौड़धूप में ही बीता है न?

शालिग्राम खलिहान में ही खा लेते हैं। फिर सौ रुपये का नोट भुनाया जाता है। चालीस रुपये के कपड़े खरीदे जाते हैं। पुराने जूते इकट्ठे किये

जाते हैं। चूड़ा, गुड़ और आँटे की टिकरियाँ मोटरी में बाँध कर जंगल की ओर चला आता है।

इधर जंगल का दूसरा ही हाल था। दिन का जो चूड़ा बचा था, उसे रात में ही खा लिया गया था, इसलिए आज सबेरे से ही फिर एकादशी थी। जब तीनों साथी गाँव की ओर चले गये थे, तब जयप्रकाश अपने दो साथियों के साथ जंगल में झरबेर के पेड़ खोज रहे थे और उनके फलों को चूस कर पेट की आग बुझाने की कोशिश कर रहे थे। साथियों के शीघ्र नहीं लौटने पर उनके मनमें तरह-तरह की आशंकायें भी हो रही थीं और चिन्ता में पड़े थे कि कहीं वे लोग पकड़ गये, तो हमारा क्या होगा? इतने ही में सीटी की आवाज सुनाई पड़ी। यह सीटी! दोस्त की या दुश्मन की? शुक्लजी जब गाँव से लौट रहे थे, रास्ता भूल गया था। वे लोग भटक गये थे, कुछ ढूँढ़-ढाँढ़ के बाद अन्त में सूरज ने यह सीटी दी थी। थोड़ी देर के बाद ही इत्मीनान कर लिया गया कि यह सीटी अपने लोगों की है और सीटी का जवाब सीटी से दिया गया। फिर, दोनों दल मिले—दुबेजी की कृपाओं की कहानी सुनकर जयप्रकाश की आँखें छलछला उठीं!

दुबेजी की कृपाओं की सीमा नहीं थी। उन्होंने अपने छोटे भाई को एक बैलगाड़ी लेकर उनकी सेवा में भेज दिया। छोटी बैलगाड़ी थी—उसपर तीनों घायल साथियों को सुला दिया गया। बाकी तीन साथी देहाती किसान के वेश में पीछे-पीछे चले। रास्ते में एक पुलिस-चौकी पड़ती थी। कहीं उन लोगों ने छेड़छाड़ की तो? दो कुल्हाड़ियाँ भी ले ली गई थीं, जिन्हें सूरज और शुक्लजी अपने कंधों पर लिये चल रहे थे। इन कुल्हाड़ियों के कारण एक तो ऐसा मालूम पड़ता था कि ये लोग सचमुच जंगल से लौट रहे हैं, दूसरा, मौके पर इनके सहारे पुलिसवालों से दो-दो हाथ भी कर लिया जा सकता था—क्योंकि चौकी की पुलिस के पास बन्दूकें तो हुआ नहीं करतीं! किन्तु, इन कुल्हाड़ियों के प्रयोग की कोई जरूरत ही नहीं पड़ी। आधी रात से ज्यादा वक्त गुजर गया था। चौकी पर सब लोग खर्राटे ले रहे थे। गाड़ी और काफला मजे में आगे बढ़ गये।

और, अब ये गया जिले में पहुँच चुके हैं। दुबेजी की बैलगाड़ी लौटा

दो जाती है और ये लोग एक जगह सो जाते हैं। भोर में उठकर देखते हैं, हमलोग रातभर काँटों पर सोये हुए थे। थकावट शायद काँटे को भी फूल बना देती है।

सोने के पहले ही विचार कर लिया गया था कि अब आगे का क्या कार्यक्रम हो। तय पा गया था कि अब इस काफले को दो दलों में बाँटना चाहिये। एक दल में जयप्रकाश, रामनन्दन और शालिग्राम रहें; दूसरे दल में शुक्लजी, सूरज और गुलाली। एक दल यहाँ से बनारस जायगा, दूसरा दल उत्तर बिहार। बनारस के दल का एक निश्चित ठिकाना मुकर्रर कर लिया गया, जहाँ उत्तर बिहार वाला दल एक निश्चित अवधि के अन्दर पहुँचेगा। रुपये बाँटे गये, टिकरियाँ बाँटी गईं। अब भी क्या बीतेगी, क्या होगा, कहा नहीं जा सकता था। दोनों दलों ने लिपट कर, आँसू भर कर, एक दूसरे से बिदा ली।

यह शुक्लजी का दल जा रहा है। शुक्लजी पंडाजी बन गये हैं और सूरज एव गुलाली उनके चेले। वही सिर पर पगड़, ललाट पर चन्दन। थोड़ी देर आगे बढ़ते हैं, तो एक गाड़ीवान जाता हुआ दिखाई देता है। क्यों जजमान, पंडाजी को अपनी बैलगाड़ी पर चढ़ा लोगे? कुछ खुराकी ले लेना। सरमाबाजार तक डाइ रुपये में गाड़ीवान पहुँचा देता है। चलते समय गाड़ीवान पंडाजी को पैर छू कर प्रणाम करता है। पंडाजी उसे आशीर्वाद देते हैं—तुम्हारी रोजी बढ़े, गृहस्थी बढ़े! फिर फल्गु नदी पार कर एक गाँव में पहुँचते हैं, जहाँ सूरज की एक रिश्तेदारी है। "आप यहाँ कैसे?" "बोलिये जय गंगा, भेद खोले तो देह पर वज्र गिरे।" पूरी बातें कह दी जाती हैं। वहीं तीन जोड़े केट्स जूते खरीदे जाते हैं, कुछ सिगरेट आदि की भी खरीद होती है। जाकर देखते हैं, तो शुक्लजी खेसारी का सत्तू खा रहे हैं। "चलिये, ससुराली मजा लूटिये!" खूब खा पीकर आगे बढ़ते हैं। किन्तु, आगे जो यह मिलिटरी कैम्प है! शुक्लजी हाथ में खैनी चूना लिये, उसे देहाती की तरह चुनाते, धड़किय ते आगे बढ़े; किसी ने सन्देह तक नहीं किया। दोनों साथी भी पार हुए। रास्ते में प्राय ही लोग पूछ बैठते—आप कौन हैं, कहाँ से आ रहे हैं आदि! "तिरहुत पर है, बाबू की ससुराल

में बैल पहुँचाने आये थे।" तीनों अलग-अलग चलते, लोगों से बचने की कोशिश करते। एक जगह आकर विश्राम कर रहे थे, कि देखा रामनन्दन भी वहाँ जा पहुँचे! अरे, दुनिया गोल है! किन्तु, बिस्तरा गोल कीजिये जनाब! मुसलमानी टोपी खरीदी गई, लुंगी खरीदी गई, कुर्त्ता खरीदा गया! और अब यह नवादा है—सामने थाना; अखबार में भागने की खबर छप चुकी है, सब उसे पढ़ रहे हैं, सब की जबान पर यही चर्चा है, तरह-तरह की कहानियाँ हैं।

लक्खीसराय में शुक्लजी ने अपना मुंडन करा लिया। बढ़ही, फिर मुकामा। आज छठ है। घाट पर बड़ी भीड़। "आपको आश्रम में कभी देखा है!" "दुरजी, हमर जात काहे ले रहल छी!" और, सामने दारोगाजी भी तो खड़े हैं। वहीं शुक्लजी की खैनी और चूना, चुटकी और थपकी। गंगा पार! "ओ, सूरज बाबू छी!"—और सूरज बाबू अपने दोनों साथियों को लिये-दिये भीड़ में अपने को छिपा रहे हैं! यह तेघड़ा है—सामने थाना! उहँ, हमें कौन गिरफ्तार कर सकता है अब! अकड़ते हुए थाने के सामने से निकल गये। बछवारा—बाजितपुर! शुक्लजी की राह अलग हुई—सूरज और गुलाली दरभंगा की ओर चले! शुक्लजी—बिहार का शेर! खम फंदे की ओर बढ़े—एक पुराने साथी ने धोखा दिया—मुजफ्फरपुर पहुँचते-पहुँचते वह गिरफ्तार हो गये! बिहार का शेर फिर पिंजड़े में—समूचे बिहार में मातम छा गया! हाँ, समूचे बिहार में!

लेकिन हम इस दुखद प्रसंग को यहीं छोड़ कर वहाँ चलें, जहाँ जयप्रकाश को छोड़ आये थे!

"७. बाबूजी, आप ऐसे कैसे ?"

जयप्रकाश के नेतृत्व में दूसरा दल आगे बढ़ा। आगे-आगे जयप्रकाश, बीच में रामनन्दन, पीछे-पीछे शालिग्राम।

"यहीं कहीं मेरी ससुराल की कचहरी होगी"। काफले का रुख उसी ओर हुआ।

यह बोधगया है—यहीं कहीं गौतम को बुद्धत्व प्राप्त हुआ था। यहीं कहीं उन्हें ज्ञान की किरण प्राप्त हुई थी। "चरथ भिक्खव, बहुजन हिताय

बहुजन सुखाय !"—के महामंत्र का बीज यहीं कहीं पड़ा था। बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय के ही आदर्श से पगले बन कर ये तीनों आधुनिक भिक्षु यहां आज भटक रहे हैं। उन्हें राह नहीं मिल रही है—प्रकाश उन्हें बुला रहा है।

अब फल्गु नदी पार किया जा रहा है। अच्छी बात हुई फल्गु, कि तू अन्तःसलिला है। नहीं तो इन्हें किस मुसीबत का सामना करना पड़ता तेरे पार करने के लिए।

शाम हो गई, कुछ रात बीत गई है। अब चलने से लोग शक करेंगे—चोर-डाकू समझेंगे। एक देहाती दुकान है, दुकान की मालकिन बैठी है। एक चटाई दे दी उसने। हाथ पैर धोकर लिट्टी बनाने लगे। लिट्टी—आज पूरे सौ घंटे के बाद कहीं उन्हें गरम-गरम खाना मिलेगा। लिट्टी बनती है—जयप्रकाश तो लिट्टी के घर के हैं न? सारन जिला—दिन में सत्तू, रात में लिट्टी। लेकिन रामनन्दन के गले से यह लिट्टी तब तक नहीं उतरेगी जब तक पूरा घी नहीं दिया जाय।

घी लिया जा रहा है और पुष्ट करके। मोदिआइन ताज्जुब से इन तीन देहातियों को देख रही है, जो इतना घी खरीद कर खा रहे हैं। हजारों को देखे परखे हुई मोदिआइन—अब उसकी आंखों में उत्सुकता है, कुतूहल है। "कोई अच्छा असामी फँसा आज क्या?" उसके चेहरे पर उल्लास और हास की रेखाएँ हैं। "जाड़ा है, घर के भीतर सोइयेगा बाबू!" "नहीं-नहीं, बाहर ही पड़ रहेंगे।" भगोड़े के लिए अपरिचित घर के अन्दर सोना वर्जित है न?

मोदिआइन का मुंह लटक जाता है। इधर सन्देह और आशंका के मारे नींद नहीं आ रही। मुंह-अंधेरे ही उठ कर चल पड़ते हैं।

दिनभर चलते रहे। चला नहीं जा रहा—तो भी चलते रहे। और, यह कचहरी वाला गाँव है। जयप्रकाश और रामनन्दन गाँव के बाहर के तालाब पर बैठे रह। शालिग्राम कचहरी की ओर बढ़े। कचहरी में बूढ़े दीवानजी बैठे हैं। "सलाम दीवान जी।" दीवानजी नीचे-ऊपर देख रहे हैं। "पतोर के मेहमानजी आये हैं, तालाब पर बैठे हैं, आपको बुला

रहे हैं।" दीवानजी दौड़े-दौड़े पहुँचे तालाब पर। किन्तु मेहमानजी को देख कर उन्हें विश्वास नहीं हो रहा है। ऊँह, मेहमानजी ऐसे ? इस वेष में ! पतौर के मेहमानजी इस वेष में ? कोई धोखे की बात तो नहीं ? रामनन्दन भाँप जाते हैं। कुछ पते की बातें कहते हैं। दीवानजी उन्हें लेकर कचहरी लौटते हैं।

"यह मेरे दोस्त हैं; और यह बराहिल !" यह समझा कर रामनन्दन ससुराल चले। किन्तु जब मेहमानजी पर ही विश्वास नहीं, तो फिर उनके दोस्त पर क्या विश्वास ? मामूली खातिरदारी। किन्तु, दूसरे दिन त्रिवेणी बाबू (स्वर्गीय बाबू त्रिवेणी प्रसाद सिंह, एम० एल० सी०) का खत पहुँचता है—"दोनों अतिथियों को पूरी खातिरदारी से रखिये।" अब कहाँ बैठायें, कहाँ सुलायें ? रात टूटी खाट थी, आज पलंग है। और, तरह-तरह की तरकारियाँ, अचार, चटनी अलग।

किन्तु, क्या ये खातिरदारियाँ सुहा रही हैं ? रामनन्दन, जैसे, ससुराल में चिपक गये। एक दिन, दो दिन, तीन दिन ! झल्लाहट, झुँझलाहट—रंजिश, नाराजी ? अब हमलोग एक ससुराल के चलते फिर दूसरी ससुराल (जेल) पहुँच कर रहेंगे। अब तक सरकार सजग हो चुकी होगी—रास्ते घिर गये होंगे। मिश्रजी ने यह क्या किया ?

चौथे दिन, मिश्रजी की सवारी पहुँची। हाँ, मेहमानजी पूरे मेहमानजी बने हुए हैं। जूते लाये हैं, धोती लाये हैं, कुरते लाये हैं, रुपये लाये हैं। और, लाये हैं चाँदी का चमचम करता सिगरेट केस और चमर करता पर्स। "जनाब आली, दिहाती वेष में यह सिगरेट केस और पर्स कैसे फबेंगे ?" देखा जायगा, ससुराल की भेंट है। जेब में पड़ी रहेगी।

कचहरी में ही जयप्रकाश अपने सिर के बाल मुंड़ा देते हैं—वे बाल, जिनपर उनको हमेशा नाज रहा है ! यहाँ से बैलगाड़ी पर चलते हैं। रास्ते में एक पहाड़ी के नजदीक जाकर बैलगाड़ी लौटा देते हैं। पहले तय हो चुका है, ससुराल से एक बैलगाड़ी उस जगह खास सरोसामान के साथ पहुंचेगी और उसी पर गया शहर पार करेंगे। इस गाड़ी के आने में देर है। तीनों एक चट्टान में छिप के बैठ जाते हैं। आखिर वह गाड़ी पहुँचती है। गाड़ी के

ऊपर छावनी कर दी गई है। उसके नीचे तीसों के बोरे हैं। बोरों के बीच जगह बना दी गई है। उसी तंग जगह में तीनों सिमट कर दुबक जाते हैं।

रात का वक्त है। बैलगाड़ी जा रही है। यह फल्गु का पुल आया। पुल पर बैलगाड़ी धड़धड़ कर रही है—यहाँ दिल धड़-धड़ कर रहे हैं। अब गया शहर में हैं। ब्लैकआउट का जमाना है। इसे वरदान ही समझिये। सड़कों पर अंधकार—खट-खट करती बैलगाड़ी बढ़ी जा रही है। जल्द शहर क्यों नहीं खतम हो रहा?—बैलों के पैर में पर क्यों नहीं लग जाते? गया शहर आजकल मिलिटरी का अखाड़ा बना हुआ है। बंगाल के बाद सेकेन्ड लाइन ऑफ डिफेंस यहीं पर है। जहाँ-तहाँ कैम्प—नीचे सैनिक,टैंक और ऊपर हवाई जहाज, बम! निकल सकें, तो भाग्य! नहीं तो यहीं किसी कैम्प में कचूमर निकलेंगे!

राम-राम करके गया पार। "गाड़ीवान, अब तुम लौट जाओ; बाबू से कह देना, हमलोग आराम से पहुँच गये!......और यह इनाम भी लो भाई!" यथार्थतः उसने इनाम का काम किया भी था। यहाँ से पैदल ही चले। मिश्रजी को विश्वास था, 'उस गाँव' के 'वह सज्जन' ज्योंही खबर सुनेंगे, दौड़े-दौड़े पहुँचेंगे और आगे का इन्तजाम कर देंगे। किन्तु, उन्होंने कहला भेजा—आगे बढ़ें, हम अमुक जगह मिलेंगे। तब शालिग्राम गाँव में गये और एक बैलगाड़ी कर लाये।

ऊपर छावनी लगी है। नीचे तीनों लेटे हैं। बैलगाड़ी जा रही है। रामनन्दन रह-रह कर अपनी चाँदी का सिगरेट केस निकालते हैं और धुआँ पर-धुआँ उड़ाते जाते हैं। थोड़ी दूर जाने के बाद गाड़ीवान को छोड़ दिया जाता है—शालिग्राम के पास पैसे हैं, उसे दे दिया जाता है। अब फिर पैदल पैदल कुछ आगे बढ़े थे कि रामनन्दन अपना सिगरेट केस निकालना चाहते हैं। अरे, सिगरेट केस गायब! और पर्स भी! रास्ते में हमें झपकी लग गई थी। क्या गाड़ीवान ने हाथ साफ किया? जयप्रकाश कहते हैं, जाने दीजिये; इसका यही हश्र होना था। रामनन्दन को ससुराल की भेंट पर ममता है। शालिग्राम को लेकर बैलगाड़ी की तलाश में लौटते हैं। किन्तु खोई चीज कितने आदमी को फिर मिल सकी है?

गोड़ाक—ओबरा—पामरगंज। सोन के पुल पर तो सख्त पहरे पड़ रहे हैं। नहर पकड़ कर सात मील उतार पर सोन पार करते हैं। अब शाहाबाद जिले में हैं। घुटने तक धोती ; सिर पर धोती की ही पगड़ी ; बाल मुँड़े, दाढ़ी बढ़ी, बदन में गाढ़े का कुरता ; हाथ में कँची लाठी—यह जयप्रकाश हैं, जो इस दल का नेतृत्व कर रहे हैं। कहाँ घर है ? कहाँ जा रहे हैं ! सवालों की भरमार। भोजपुरी-बोली इस समय जयप्रकाश की सहायता कर रही है। पामरगंज से ही एक मित्र को खबर दी गई थी—हमारी सहायता कीजिये, खास कर कुछ रुपये चाहिये। उन्हीं की बताई हुई राह पकड़कर उनके ननिहाल पहुँचा जाता है। यह ननिहाल का गाँव है। गाँव की बगल में एक मन्दिर है। मन्दिर में ही ठहर जाते हैं। मन्दिर के बाबाजी रात में भात-दाल का 'प्रसाद' पवाते हैं। आज दो साल के बाद भी जयप्रकाश कह रहे हैं—सचमुच उस स्वाद की भात-दाल मैंने जिन्दगी भर में नहीं खाई थी।

वह सज्जन रुपये लेकर आ जाते हैं। जयप्रकाश की आँखों में कृतज्ञता के आँसू हैं। अहा, वे दिन कब आयँगे, जब इन मित्रों के नाम यह खुल कर सबके सामने रख सकेंगे ?

यह सामने स्टेशन है। नाम पढ़िये—करवंदिया। झकझक करती पैसेंजर गाड़ी इस स्टेशन पर आती है। छोटे स्टेशन पर छोटी हलचल। थर्ड क्लास के तीन मुसाफिर लपकते हुए आगे बढ़ते हैं और तीनों तीन डब्बे में घुस जाते हैं। सीटी बजती है, गाड़ी मोगलसराय की तरफ चल रही है—तीनों के हृदय की धड़कन से सुर मिलाती। थर्ड क्लास के डब्बे में सिकुड़ कर बैठे जयप्रकाश की सूरत देखिये, दाढ़ी और बढ़ गई है, काली-उजली खिचड़ी दाढ़ी। होठों के ऊपर घनी मूँछें। देहाती कैंची से कुतरे गये सिर के बालों ने सूरत ही बिगाड़ रखी है। कुर्त्ता, जिसे मटमैले रंग में रँग लिया गया है। बगल में देहाती काली कंबल दबाये। सिर पर एक धोती को लपेट लेने से बना देहाती पगड़, पैर में पुराना चमरौंधा जूता, जिस पर धूलों की मोटी पर्त्त जमी। कमी है, तो होठों में एक फाँक खैनी की !—"कहा कहौं छवि आज की ; भले बने हो नाथ !" जाइये, ऊपर, बिस्तरे रखने के स्थान पर, सो जाइये !

मोगलसराय स्टेशन पर तीनों उतर जाते हैं। एक्के किये जा रहे हैं।

किन्तु, रामनन्दन को नाव का चस्का है न ? "चलिये, जरा चाय पी लें !"—"पगले हो गये हैं मिश्रजी, यह रूप और चाय !" शालिग्राम को सीधे बनारस भेज दिया जाता है—अमुक दिन, अमुक स्थान पर, अमुक संकेत से पूछना। यह चलता है, किन्तु यह क्या जानता है, आज जो बिछड़ रहा है, सो फिर निकट भविष्य में मिल नहीं पायगा। शालिग्राम फिर इन लोगों से मिल नहीं सका। लगभग दो साल तक फरार रहा, जब गाँधीजी जेल से बाहर आये, उनकी आज्ञा पर उसने अपने को 'प्रगट' किया, सजा पाई।

रामनन्दन को लेकर जयप्रकाश एक्के पर रामनगर की ओर चले। वहाँ से दो नावें की गईं। दोनों अलग-अलग नाव पर चले। नावें नगवा में लगीं। यह नगवा, यह हिन्दू विश्वविद्यालय !

हिन्दू विश्वविद्यालय—जयप्रकाश यहीं न प्रोफेसरी करना चाहते थे ! यहाँ के प्रोफेसर नहीं हुए, किन्तु, इस जगह का आकर्षण, प्रथम प्रेम की तरह, कभी कम नहीं हुआ। यहां उनके कितने मित्र हैं, कितने साथी हैं। शाम के झुटपुटे के वक्त एक साथी के बँगले के अन्दर घुसते हैं। बाहर सन्नाटा है। दरवाजे पर दस्तक देते हैं; भीतर से कोई आ रहा है। दब कर ऐसी जगह खड़े हो जाते हैं, जहाँ बिजली की रोशनी चेहरे पर नहीं पड़े। न जाने कौन निकल रहा हो ? यह साथी का नौकर है। आकर वह इनके नजदीक खड़ा होता है और अचानक उसके मुँह से निकल जाता है—

"बाबूजी, आप ऐसे कैसे ?"

बाबूजी तो सन्न। इतना रूप बदला, किन्तु एक साधारण नौकर तक पहचान गया ? नौकर जल्दी-जल्दी कहे जा रहा है—घरके मालिक बाहर टहलने गये हैं; थोड़ी देर में आवेंगे, आते ही होंगे बाबू; चलिए, भीतर बैठिये; बीमार पड़ गये थे क्या ? ओहो, कितने दुबले हो गये हैं बाबूजी। किन्तु बाबूजी से तो अब वहाँ खड़ा भी नहीं रहा जाता। आखिर यह नौकर ठहरा—मेरे सिर पर पाँच हजार का इनाम है, कहीं इसका ईमान डोल गया तो। "अच्छा, आते हैं!" कह कर जयप्रकाश चल देते हैं। बँगले के फाटक तक नौकर पीछा करते आता है, वह भौंचक हो रहा है, कुछ नहीं समझ रहा है। जयप्रकाश अन्ततः मैदान के अंधकार में छुप जाते हैं।

छठा अध्याय : अगस्त क्रान्ति का अग्रदूत

१. करेंगे या मरेंगे

सरकार के पास बत्तीस का सफल तजर्बा था—कांग्रेस को धावा करने का मौका नहीं दो, उसके पहले ही छापा मारो—कांग्रेस को गैर कानूनी संस्था घोषित करो, नेताओं को पकड़ कर जेलों में ठूँस दो—दो दिनों तक हो-हल्ला रहेगा, फिर टायँटाय फिस।

बत्तीस के इस तजर्बे को बयालीस में उसने दुहराया। उसने पहले से ही लिस्ट तैयार कर रखी थी—तीन-तीन लिस्ट। किन लोगों को पहले गिरफ्तार किया जायगा, किन लोगों को बाद में, किन लोगों को अन्त में। पहली लिस्ट के वारंट भी तैयार कर लिये गये थे। नौ अगस्त को ही पहली लिस्ट के वारंट जारी कर दिये गये और जो नेता जहाँ पर मिले, उन्हें गिरफ्तार कर जेलों में पहुँचा दिया गया।

किन्तु सरकार की भूल यहीं हुई कि उसने समझा था, क्रान्ति के तजर्बे का हकदार सिर्फ वही है। उसने कुछ तजर्बे हासिल किये थे, तो लोग भी पिछले अनुभवों के आधार पर कम सजग नहीं थे।

और, उन सजग, जागरूक व्यक्तियों में पहला स्थान जयप्रकाश का था। महायुद्ध के छिड़ते ही, जिस तरह बरोमीटर आँधी का आगमन बता देता है, जयप्रकाश भाँप गये थे कि देश में एक क्रान्ति होकर रहेगी। क्रान्ति का उन्होंने एक सामाजिक प्रक्रिया की तरह वैज्ञानिक अध्ययन किया था। उनका अध्ययन, उनका दर्शन, उनका पर्यवेक्षण सब कुछ यही बता रहा था कि भारत में क्रान्ति अनिवार्य है। इस अनिवार्यता के जानने के बाद उसमें अपना और अपनी पार्टी का स्थान समझने में भी उन्हें देर नहीं लगी थी। इस बार की

क्रान्ति बहुत ऊँची सतह पर होगी और उसमें सच्चे क्रान्तिकारियों को अपना जौहर दिखाने के लिए बड़े-बड़े अवसर मिलेंगे, यह समझते थे। एक ओर वह कांग्रेस से आग्रह कर रहे थे कि वह क्रान्ति का पैगाम दे, तो दूसरी ओर अपनी पार्टी के एक-एक सदस्य से उसके लिए तैयार रहने की चेतावनी देते जाते थे। बम्बई में हुई अपनी गिरफ्तारी से उन्हें बहुत सदमा लगा था। किन्तु, उनका सौभाग्य था कि उनके पीछे ऐसे योग्य साथियों का गिरोह था जो उनकी भावना को समझे और उनके परोक्ष में भी उसे काम में ला सके।

गांधीजी के नेतृत्व में एक बहुत बड़ी क्रान्ति होने जा रही है—इसकी घोषणा सबसे पहले मेहरअली ने की थी। मेहरअली उस समय बम्बई के मेयर थे। गांधीजी ने उन्हें बुला कर जो बातें कीं, उन्हीं के आधार पर उन्होंने यह घोषणा की थी। सिर्फ घोषणा करके ही वह या उनके साथी सन्तुष्ट नहीं हो गये। पार्टी के हर सूबे की शाखाओं में इसकी खबर करा दी गई थी और आदेश दिया गया था—खबरदार, इस बार गलती नहीं होने पावे, क्रान्ति की तैयारी किये रहो, मौका मिलते ही टूट पड़ना होगा।

अखिल भारतीय किसान सम्मेलन के बेदौल (मुजफ्फरपुर, बिहार) अधिवेशन में मेहरअली और लोहिया पहुँचे हुए थे। मेहरअली ने पार्टी के सदस्यों की बैठक में स्पष्ट कह दिया था—इस बार पार्टी के जो सदस्य गिरफ्तार हो जायँगे, समझा जायगा, वे निकम्मे हैं।

स्वयं गांधीजी लोगों में गिरफ्तारी के खिलाफ मनोवृत्ति पैदा कर रहे थे। इस बार के आन्दोलन का रूप खुली बगावत का होगा। खुली बगावत में गिरफ्तार हो जाने का सवाल ही कहाँ उठता है? हम हर जगह सरकारी सत्ता को चुनौती देंगे और अन्त तक लड़ते रहेंगे। इसमें समझौते के लिए भी गुंजायश नहीं है—विराम के लिए स्थान कहाँ? यदि किसी तरह दुश्मन के हाथों में पड़ गये, तो वहाँ आमरण अनशन करने तक की बारी आ सकती है। अपने इन्हीं उपदेशों को अन्त में, जैसे, उन्होंने एक मंत्र के रूप में गूँथ दिया था—"करो या मरो!"

"करो या मरो"—इस नारे का क्रियात्मक रूप नौ अगस्त को बम्बई में ही देख लिया गया। समूची बम्बई एक खौलता हुआ कड़ाह, दहकता हुआ

अंगारा बन गई। ट्राम जल रहे हैं, ट्रेनें जल रही हैं, थाने जल रहे हैं, डाकखाने जल रहे हैं—दूसरी ओर, गोलियाँ चल रही हैं, लाठियाँ चल रही हैं, टीअरगैस फूट रहे हैं, मशीनगनें खड़ी कर दी गई हैं। सड़कों पर, गलियों में; मैदानों में, पार्कों में—दोनों पक्ष की जोरआजमाइशी चल रही है। बच्चे, बूढ़े, मर्द, औरत; विद्यार्थी, मजदूर, दुकानदार, बाबू दल!—सब पर आज पागलपन सवार है, जुनून सवार है। "करेंगे या मरेंगे"—आज बम्बई के वातावरण के अणुअणु में यही पुकार ध्वनित-प्रतिध्वनित हो रही है।

भाई कृष्णवल्लभ सहाय ने बम्बई की एक कथा सुनाई थी। नौ अगस्त को जब बम्बई में यह हालत थी, वह एक रेस्टोरां में बैठकर आश्चर्यचकित देख रहे थे—यह क्या हो रहा है। उन्होंने देखा, एक छोटा बच्चा दौड़ता हुआ सड़क पर आया और खड़िया से लिखने लगा—"गाँधीजी गिरफ्तार हो······!" वह पूरा लिखने भी नहीं पाया कि पीछे से एक गोरा आता दिखाई पड़ा और उसने नजदीक पहुँच कर उस बच्चे की पीठ पर ऐसा कुन्दा लगाया कि बच्चा चीख कर जमीन पर लेट गया और उसके मुँह से खून निकलने लगा। देखनेवालों के रोंगटे खड़े हो गये और गोरा राइफल लिए शान से तन कर खड़ा हो गया—मानों, उसने बड़ी विजय प्राप्त कर ली। उसी समय निकट के एक सैलून से एक हजाम निकला, वह चुपके-चुपके पीछे से गोरे के नजदीक आया और उसके नजदीक पहुँच कर पूरा छुरा उसके पेट में घुसेड़ दिया। गोरा बंदूक पटक कर कुछ कदम दौड़ा, किन्तु अंतड़ियाँ निकल आईं, वह मुँह के बल गिर गया। चारों ओर से हर्षध्वनियाँ होने लगीं और वह हजाम सैलून में आकर फिर अपने ग्राहक का अधूरा बाल यों बनाने लगा, जैसे कुछ हुआ ही नहीं।

करेंगे या मरेंगे—की यह तो एक जुनून-भरी शकल हुई। किन्तु, क्रान्ति सिर्फ पागलपन नहीं है। उसके लिए कोई कार्यक्रम चाहिये, कोई योजना चाहिए। यह कार्यक्रम कौन दे? गांधीजी ने कोई निश्चित योजना तो बताई नहीं थी। हाँ, उन्होंने कहा था कि अहिंसा की शर्त के साथ सबकुछ किया जा सकता है और हर आदमी को अपना नेता बन जाने का आदेश दिया था। किन्तु, इतने से भी काम चलनेवाला नहीं था। बगावत के लिए

एक ठोस कार्यक्रम और उपयुक्त नेतृत्व का अभाव सब सब ने अनुभव किया, जो इस बगावत को खेलवाड़ नहीं बनाकर अंगरेजों को भारत से भगाने का साधन बनना चाहते थे। करेंगे या मरेंगे—बात सही है, किन्तु, करेंगे क्या? और मरेंगे कैसे?—इसका निर्णय कर लेना आवश्यक है।

बम्बई में जो बचेखुचे नेता थे, वे उन गोलियों की बौछार के नीचे एक जगह एकत्र हुए। देखिये, इनमें यह कमलादेवी हैं, यह मृदुला साराभाई हैं, यह पूर्णिमा बनर्जी हैं। यह हैं अच्युत पटवर्धन, यह सादिकअली साहब, यह पुरुषोत्तम त्रिकमदास और यह लोहिया। श्री मोहनलाल सक्सेना भी हैं, गिरिधारीजी भी हैं। बिहार से बसावनजी और रामनन्दनजी हैं। ये लोग आज भी जयप्रकाश का अभाव अनुभव कर रहे हैं। सक्सेना कहते हैं—'१९३२ के सत्याग्रह का गुप्त संचालन जयप्रकाश ने किया, काश, वह १९४२ में भी हमारे साथ होते!' तोभी, मिलजुल कर एक कार्यक्रम बना लिया जाता है और उसे काम में लाने के लिए प्रान्त प्रान्त में विशेष दूत भेजने का भी तय कर लिया जाता है। बम्बई की यह बैठक ही पीछे चलकर कांग्रेस के केन्द्रीय संचालक-मंडल की जननी सिद्ध हुई!

केन्द्रीय संचालक मंडल के कर्णधारों में श्री अच्युत पटवर्धन, श्रीमती अरुणा आसफअली, श्रीमती सुचिता कृपलानी, डा० राममनोहर लोहिया, आचार्य युगल किशोर, डा० केसकर, श्री दिवाकर प्रमुख थे। बाबा राघवदास, श्री अन्नदा चौधरी, प्रो० पी० सिन्हा, प्रो० मयराला, प्रो० राधेश्याम, गोपीनाथ सिंह, एल० एम० जोशी, गोरे, साने गुरुजी, श्यामनन्दन सिंह, श्री ज्ञानचंद गौतम, श्री बसावन सिंह का भी संचालक-मंडल के कार्यों के सम्पादन और नीतिनिर्धारण में पूरा हाथ रहा।

किन्तु, जब तक बम्बई की उस बैठक या केन्द्रीय संचालक-मंडल का पैगाम प्रान्त प्रान्त में पहुँचाया जा सके, तब तक तो सारे देश में आग लग चुकी थी—उसकी ज्वालायें सातवाँ आसमान छू रही थीं। नेताओं की इस अचानक गिरफ्तारी से जनता के मन में क्षोभ और क्रोध की यह ज्वाला भड़की कि जिसके दिमाग में जो आया, बिना सोचे-समझे वह कर गुजरा। दो दिनों के अन्दर-अन्दर समूचे हिन्दोस्तान में खुली बगावत का दौरदौरा हो चुका

था—हाँ, उसके रूप में जगह-जगह पर अन्तर थे। इस अन्तर को, भेदभाव को भारतमन्त्री मि० एमरी ने दूर कर दिया। नेताओं की गिरफ्तारी का औचित्य सिद्ध करते हुए उन्होंने पार्लियामेंट में एक वक्तव्य दिया, जिसमें बताया गया था कि लोग खुली बगावत के नाम पर रेलवे-लाइन को उखाड़ने, तारों को काटने, पुलों को तोड़ने, थानों पर कब्जा करने, कचहरियों पर अपनी हुकूमत जारी करने आदि की कोशिश करने जा रहे थे। रेडियो द्वारा यह वक्तव्य देश के कोने-कोने में भिन्न-भिन्न भाषाओं में सुनाया गया। फिर क्या था, लोगों ने मान लिया, हमारे नेताओं का कार्यक्रम यही है और उस कार्यक्रम को पूरा करने में हर तबके का हर व्यक्ति जीजान से जुट पड़ा।

यह अतिशयोक्ति नहीं, बल्कि ऐतिहासिक सत्य है कि एक पखवारे तक हिन्दोस्तान के अधिकांश भाग से अँगरेजी राज बिल्कुल उठ गया था। डेढ़ सौ वर्षों से स्थापित यह राज यों फूँक में उड़ जायगा, लोगों को देख-सुन कर आश्चर्य, महा आश्चर्य होता था।

किन्तु, यह स्थिति ज्यादा दिनों तक कायम नहीं रह सकी। अब बृटिश सिंह का खूनी पंजा सबके सिर पर था। दमन का उल्लंग नृत्य हो रहा था। इस मौके पर केन्द्रीय सचालक-मंडल व्यवस्थित रूप में लोगों के सामने आया। उसके आदेश के अनुसार इस दमन का मुकाबला होने लगा और क्रान्ति की ज्वाला को सुलगाये रखने की चेष्टायें की जाने लगीं।

पूरे आन्दोलन का गुप्त रूप दे दिया गया। फिर कांग्रेस के हरकारे छिपे-छिपे देश भर में घूमने लगे। कांग्रेस के गैरकानूनी अखबार और बुलेटिनें फिर प्रकाशित होने लगीं। कांग्रेस के रेडियो से लोगों को क्रान्ति का सन्देश दिया जाने लगा। क्रान्ति की समिधा को प्रज्वलित रखने के लिए नौजवान कार्यकर्त्ता अपनी जान हथेली पर लेकर घूमने लगे।

लेकिन सरकार के घनघोर दमन के चलते काम करना दिन-दिन मुश्किल होता जाता था। जो कुछ किया जाता था, उसका मूर्त्त रूप जनता के सामने नहीं रहने से उसमें निराशा का वातावरण फैल रहा था। केन्द्रीय सचालक-मंडल के एक-एक सदस्य अपनी जान पर खतरे लेकर काम का अंजाम दे रहे थे, लेकिन वे भी किसी बड़े व्यक्ति का अभाव अनुभव कर

रहे थे। ठीक ऐसे ही समय में एक दिन बिहार-सरकार ने विज्ञप्ति निकाली कि जयप्रकाशनारायण अपने पाँच साथियों के साथ हजारीबाग सेन्ट्रल जेल से निकल भागे हैं, जो उन्हें पकड़ा देगा या पकड़ने में मदद देगा, उसे कुल मिलाकर २१,०००) (इक्कीस हजार रुपये) इनाम में मिलेंगे—जयप्रकाश नारायण के लिए ५०००), योगेन्द्र शुक्ल के लिए ५०००), रामनन्दन मिश्र के लिए ५०००), सूरजनारायण सिंह के लिए २०००), गुलाबचंद गुप्त उर्फ गुलाली के लिए २०००) और शालिग्राम सिंह के लिए २०००)।

जयप्रकाश के निकल भागने के प्रभाव को एक साथी ने अपने जेल के साथी को गुप्त रूप से यों लिख भेजा था—

"प्यारे साथी, तुम सोच नहीं सकते कि जयप्रकाशजी का निकल भागना हमारे लिए क्या सिद्ध हुआ है। हम हारे तो थे ही, थक भी कम नहीं गये थे। हमारे जिस्म जवाब दे रहे थे, दिमाग जवाब दे रहा था। दिल में आग तो थी, किन्तु उसकी ज्वाला बुझ चुकी थी, चिनगारी पर राख की पर्त पड़ती आ रही थी। दमन के चलते लोगों में दहशत थी, भय था। वे हमें श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे, हमारी मदद भी करना चाहते थे; किन्तु दिन में हमारा चेहरा देखना पसंद नहीं करते थे। अगस्त में अपने बल से वे सरकार को उखाड़ चुके थे—वही सरकार जब फिर कायम हुई और उसने भीषण रूप दिखलाया, तो वे इस उम्मीद में सब्र किये रहे कि सुभाषबाबू की सेना चली आ रही है। रेडियो से बराबर आश्वासन दिया जाता रहा, हम अब आये, तब आये। रात में लोग तारों को देखते और उनकी रोशनी को सुभाषबाबू के हवाई जहाज की रोशनी मानने की कोशिश करते। किन्तु धीरे-धीरे आशा की यह रोशनी भी बुझ गई। अब चारों ओर अंधकार-ही-अंधकार नजर आता था कि जयप्रकाश का आगमन हमारे बीच हुआ। उनके नाम की सार्थकता तुम नहीं समझ सकते, हमने समझा है। फिर एक बार चारों ओर प्रकाश-ही-प्रकाश है। कार्यकर्त्ताओं के दिल की चिनगारी फिर चमक उठी है। जनता सोचने लगी है कि हमारे नेताओं को कोई जेल में रख नहीं सकता। जयप्रकाश खुद जेल तोड़कर हमारे बीच में आये हैं; अब हम जेल तोड़ कर गांधीजी और दूसरे नेताओं

को छुड़ायेंगे। जनता में एक अजीब जोश और हिम्मत आ गई है। अब हम विजयी होकर ही दम लेंगे, यह हमारी पक्की आशा है—ध्रुव आशा। "चालीस करोड़, नहीं दबेंगे।" "करेंगे या मरेंगे।"

और, जयप्रकाश का जेल से यों जान हथेली पर लेकर निकल भागना ही क्या 'करेंगे या मरेंगे' का सर्वोत्तम उदाहरण नहीं था। नेतृत्व सिर्फ उपदेश ही नहीं माँगता, उदाहरण भी तलब करता है न।

२. आजादी के सैनिको, बढ़े चलो !

यों, आजादी के सैनिकों के अंधकारमय हृदयों में फिर प्रकाश की रेखा खींचनेवाले जयप्रकाश ने हिन्दू-यूनिवर्सिटी के मैदान के अंधकार में छुप कर ही अपने को सुरक्षित नहीं समझा। उस रात रामनन्दन के परिचय के ही एक स्थान में ठहरा गया, किन्तु, उस जगह की सुरक्षिता पर भी जयप्रकाश को विश्वास नहीं हुआ। दूसरे दिन से फिर परिचितों की तलाश हुई—और अन्ततः एक निश्चिन्त स्थान प्राप्त किया जा सका।

निश्चिन्त होते ही जयप्रकाश ने रामनन्दन को बम्बई भेजा, अच्युत एवं दूसरे साथियों से सम्पर्क स्थापित करने को। और, खुद कलम-कागज लेकर अगस्त-क्रान्ति के दूसरे दौर की पूरी योजना तैयार करने लगे।

सबसे पहले उन्होंने प्रचार के लिए कुछ विज्ञप्तियाँ लिखीं। वे विज्ञप्तियाँ खुली चिट्ठियों के रूप में थीं—(१) आजादी के सैनिकों के नाम, (२) अमेरिकन फौज के अफसरों और सैनिकों के नाम, (३) विद्यार्थियों के नाम, (४) किसानों के नाम (५) बिहार की जनता के नाम (६) बिहार के पुलिस सिपाहियों के नाम आदि। इन विज्ञप्तियों के पढ़ने से आज भी आदमी अपनी नसों में खून की नई रवानी अनुभव करने लगता है।

दमन की प्रचंडता के कारण, मालूम होता था, जैसे क्रान्ति समाप्त हो चुकी है। जयप्रकाश ने गरजते हुए कहा—"नहीं, यह समझना गलत है कि क्रान्ति दबा दी गई, कुचल डाली गई। क्रान्ति के इतिहासों को देखिये — आप पायेंगे कि क्रांति कोई छिटपुट घटना नहीं है। क्रान्ति एक दौर है, एक सामाजिक प्रक्रिया है। क्रांति के विकास के सिलसिले में ज्वार आते हैं, तो भाटे

भी रहते हैं। आज हमारी क्रांति की लहर नीचे की ओर जाती दिखाई पड़ती है, किन्तु यह तुरत ऊपर उठेगी, विजय-पर-विजय प्राप्त करेगी।"

आगे जयप्रकाश ने आज़ादी के सैनिकों के सामने अगस्तक्रान्ति के पहले दौर की त्रुटियों को रखा। त्रुटियाँ दो थीं—एक तो, कोई युक्त संगठन नहीं था, जो जनता की उमड़ी हुई ताक़तों को व्यूहबद्ध कर उन्हें विजय-पथ पर बढ़ाये। दूसरी त्रुटि यह थी कि जहाँ जनशक्ति ने विजय भी प्राप्त की, तो उस विजय को टिकाऊ बनाने, उसे मूर्त्त रूप देने का कोई कार्यक्रम क्रांतिकारियों के पास नहीं था। जयप्रकाश कहते हैं—"क्रान्ति का अर्थ सिर्फ संहार नहीं है, क्रान्ति के साथ निर्माण की महान शक्ति भी सन्निहित है। जो क्रान्ति सिर्फ संहार करना ही जानती है, वह जीवित नहीं रह सकती। अगर उसे जीवित रहना है, तो जिस सरकारी सत्ता का उसने नाश किया है, उसके बदले तुरत दूसरी सत्ता का वह सृजन करे।" अगस्तक्रान्ति में बड़ी भूल यह हुई कि हमने थानों पर कब्ज़ा किया, कचहरियों पर कब्ज़ा किया, सब्ज़ानों पर कब्ज़ा किया, स्टेशनों पर कब्ज़ा किया, किन्तु, कब्ज़ा करने के बाद हम अपने-अपने घरों में जाकर सो गये कि हमने मैदान फतह कर लिया। "जिन-जिन हल्कों में विदेशी राज की हुकूमत के साधनों को हमने नष्ट किया, उनके अफसरों को हमने भगा दिया, अगर वहाँ-वहाँ हम 'इन्कलाबी सरकार' कायम किये होते और उस सरकार की रक्षा के लिए अपनी पुलिस और अपनी फौज भरती कर लिये होते, तो इससे एक ऐसी रचनात्मक शक्ति पैदा हुई होती जो एक हल्के से दूसरे हल्के में फैलती; और क्रान्ति की लहर आसमान को छूती हुई ऐसे वेग से आगे बढ़ती कि साम्राज्यशाही का जर्जर जहाज टूक-टूक हो गया होता और आज हम अपने देश में पूर्ण स्वराज्य का सुख भोगते होते।"

ख़ैर, गलतियाँ तो हो चुकीं, अब क्या हो! जयप्रकाश इस सवाल पर एक दूसरा सवाल हमसे पूछ बैठते हैं—"जब कोई सेनापति कोई मैदान हारता या जीतता है, तो वह क्या करता है?"

सिकन्दर जब हार गया, तो उसने क्या किया? और भी कितने उदाहरण हैं। अब काम यह है कि अपनी बिखरी सेना को फिर एकत्र किया जाय,

शिक्षित किया जाय, व्यूहबद्ध किया जाय, अनुशासित किया जाय। साथ ही, हमें किसानों में, मजदूरों में घुसना चाहिये "क्योंकि हमारा काम सिर्फ षड्यंत्र करके छापा मारना नहीं है, हमें तो पूरी जनता को विद्रोह-पथ पर ले चलना है।" इन किसानों और मजदूरों से हमें नये-नये सैनिक भी मिलते जायँगे। हमें अँगरेजी सरकार की हिन्दुस्तानी फौज में भी घुसना है, उसमें क्रान्ति की आग सुलगानी है। सरकारी नौकरों के दिमाग को भी बदलने की कोशिश करनी है। लेकिन इन तैयारियों का मतलब लड़ाई बंद कर देना नहीं है। "नहीं-नहीं—सैनिक शब्दों में 'छिटफुट मुठभेड़' 'सरहदी कार्रवाइयाँ', 'हाथापाई' 'गश्त लगाना' और 'निशाने लेना', यह सब भी चलते रहना चाहिये।" अन्त में वह कहते हैं—

"जनता में पूरा विश्वास और अपने उद्देश्य पर पूरी आस्था रखते हुए हम आगे बढ़ते चलें। हमारे पैर मजबूती से अड़े रहें, हमारे हृदय दृढ़ता से ओतप्रोत हों और हमारी नजरों में धुँधलापन न आने पावे। देखिये, वह हिन्दोस्तान की आजादी का सूरज आसमान पर चमकने लगा है। कहीं हमारी आशंका और कलह, कार्यहीनता और विश्वासहीनता के बादल उसे ढँक न लें; हम कहीं फिर अंधकार में नहीं ढकेल दिये जायँ—सावधान!"

जयप्रकाश अमेरिका में सात वर्षों तक रह चुके थे। इसलिए उस समय जो अमेरिकन अफसर और सैनिक हिन्दोस्तान में जापान का सामना करने के लिए इकट्ठे किये गये थे, उनके नाम भी उन्होंने एक पत्र प्रकाशित किया। उस पत्र में उन्होंने उस समय की याद दिलाई थी जब वह कालिफोर्निया, इयोवा, विस्कौंसिन और ओहायो में पढ़ते थे और हो सकता है, उन विश्वविद्यालयों के छात्र भी अमेरिकन फौज में आये हों, अतः उनसे उन्होंने खासकर निवेदन किया था—"मैं एक वैसे युद्ध-बंदी की हैसियत से आपको लिख रहा हूँ, जिसने दुश्मन की कैद से निकल भागने के अपने जन्मजात अधिकार का उपयोग किया है। मैं हाल ही हजारीबाग जेल से भाग आया हूँ इस उद्देश्य से कि मैं अपने देश को आजाद कराने में क्रियात्मक भाग ले सकूँ। हमारे दुश्मन—इस अँगरेजी साम्राज्यशाही सरकार ने मुझे पकड़वाने के लिए इनाम की घोषणा की है, जैसा कि मैं कोई दागी कैदी

होऊँ। आप में से जो कोई भी कदाचित युद्धबंदी बनाया जायगा, वह मौका मिलते ही दुश्मन के कैम्प से भाग आना कर्त्तव्य समझेगा और उसे आप और आपके देशवासी निस्सन्देह ही 'हीरो' मानकर आदर करेंगे। 'हीरो' कहलाने जाने का हौसला मैं नहीं रखता, लेकिन मैं अपने को दागी कैदी भी नहीं समझता। मैं अपने को सिर्फ देश की आजादी की वेदी पर बलिदान करना चाहता हूँ।"

इस पत्र में जयप्रकाश ने अँगरेजों के झूठे प्रचार पर सख्त चोट की थी और उसका पोल खोला था—"आप लोगों ने नाजियों की झुठाई की कहानियाँ सुनी होंगी। डा० गोयेबेल्स अपनी झुठाई के लिए संसार भर में बदनाम है। लेकिन चर्चिल, हैलिफैक्स, एमरी एँड कम्पनी की झुठाई उससे भी बदतर है—क्योंकि उसके ऊपर पोलिश की हुई होती है और वह गहरी मार करती है।"

जयप्रकाश ने अमेरिकन सैनिकों से तीन प्रकार की सहायता माँगी थी— (१) अँगरेजों ने हमारे साथ जो पैसिस्ट लड़ाई छेड़ रखी है, उसमें आप अँगरेजों का साथ न दें। (२) हिन्दोस्तान के बारे में सही बातें अपने देशवासियों को बतायें और इस तरह अँगरेजों के घृणित प्रचार को बेकार बना दें। अन्त में (३) उनसे आग्रह किया था कि आपलोग उन अँगरेज सैनिकों को समझायें जो बेचारे व्यर्थ अपनी जान अँगरेजी पूँजीपतियों के फेर में पड़कर दे रहे हैं। अँगरेज सैनिक अमूमन ईमानदार और बहादुर होते हैं और उन्हें धोखे में रखकर ही उनसे कुकर्म कराये जाते हैं—"उनसे कहिये कि यदि वह सचमुच एक नई दुनिया के निर्माण के लिए लड़ रहे हैं तो फिर उनके लिए मुनासिब नहीं है कि पैसिस्टों की तरह औरतों और बच्चों पर गोली चलायें, घरों को जलायें और लूटें तथा इस अति प्राचीन एशिया के जर्रे-जर्रे को रौंद देने वाली इस महानतम आजादी की लड़ाई को बेरहमी से कुचलें। उनसे कहिये, हम उनसे लड़ना नहीं चाहते, उनका कोई नुकसान करना नहीं चाहते, उनका बुरा भी नहीं चाहते। हमारी लड़ाई सिर्फ साम्राज्य से है, हम उसे ही नष्ट करना चाहते हैं, क्योंकि वह आजादी का दुश्मन है, मानवता के सुख और वैभव का शत्रु है। उनसे कहिए, ज्यों ही हम आजाद

होंगे, अँगरेज सैनिकों के साथ कंधे-से-कंधे मिला कर हम सभी तरह के शोषणों, उत्पीड़नों और पशुताओं से लड़ेंगे—चाहे उसका नाम नाजीवाद हो, साम्राज्यवाद हो या पूँजीवाद। इनपर विजय प्राप्त करके ही हम सब मिलजुल कर इस पृथ्वी पर एक नई दुनिया बसा सकेंगे।"

विद्यार्थियों, किसानों, बिहार की जनता एवं बिहार के पुलिस-सिपाहियों के नाम से जो पत्र उन्होंने प्रकाशित कराये, सब में देश के नाम पर, आजादी की इस अन्तिम लड़ाई को अन्त तक लड़ने की, अपील की गई थी।

एक ओर ये अपीलें तैयार की जा रही थीं; दूसरी ओर साथियों को बुला-बुलाकर बातें भी चल रही थीं। बिहार से बसावन आये, श्यामनन्दन बाबा आये, सूरजनारायण आये। बी० पी० सिन्हा काशीविद्यापीठ के पूरे गरोह के साथ आ मिले। हिन्दू-यूनिवर्सिटी का भी पूरा दल एकत्र हुआ। बम्बई से अच्युत दौड़े-दौड़े आये। तय हुआ, दिल्ली में केन्द्रीय संचालक-मंडल की बैठक बुलाई जाय और देश भर में एक निश्चित योजना पर पूरी मुस्तैदी से काम चलाया जाय।

बनारस से ही फरार जिन्दगी के लुत्फ उठाने के मौके आते गये। बसावनजी एक परिवार में टिके हुए थे। वे लोग समझते थे, यह अमुक स्थान के एक रोजगारी हैं। एक दिन निश्चित अड्डे पर कुछ खटका समझ जयप्रकाश और अच्युत को लिये-दिये बसावन उस परिवार में पहुँचे और बताया, यह भी हमारे साथी रोजगारी हैं। दोनों को आदर-सत्कार से रखा गया। फिर घर के मालिक बसावन को अलग बुलाकर कहते हैं—"यह जयप्रकाशजी को आप कैसे-कैसे यहाँ ले आये?" बसावन लाख समझाने की कोशिश करते हैं यह सज्जन मानते नहीं। "मैंने बीसों बार देखा है, भाषण सुना है, कुछ बालों और कपड़ों की उलटपुलट से आदमी को कैसे भुलाया जा सकता है!" लेकिन जयप्रकाश को रखने से उन्हें गर्व है, आनन्द है, वह सब खतरा लेने को तैयार हैं। लेकिन उनका आग्रह है कि उनकी पत्नी को नहीं मालूम हो कि यह जयप्रकाश हैं—"औरत की जात, न-जाने भूलकर किसी से मनक दे!" उधर थोड़ी देर में घर की मालकिन, बसावन को अलग लेकर कहती हैं—"यह दूसरे सज्जन तो अच्युत हैं, हाँ, अच्युत पटवर्धन। मैंने इन्हें देखा है,

मैंने इनसे बातें की हैं। वाह, मैं भूल किस तरह कर सकती हूँ ?" देवीजी भी प्रसन्न हैं कि अच्युत ऐसे देशभक्त उनके घर आ पहुँचे हैं। किन्तु, उनका कहना है कि यह बात उनके पति को नहीं मालूम हो, क्योंकि वह निरछल व्यापारी ठहरे, घबरा जायँगे।

ऐसे घर में ज्यादा दिनों तक तो नहीं ही रहा जा सकता है। अब जयप्रकाश एक सम्भ्रान्त सज्जन के घर पर जा टिके हैं, कि एक दिन एक आगन्तुक सज्जन कह उठते हैं—'बउलजी!' यह घर की बोली। यह प्यार सूचक सम्बोधन! किन्तु, इस सम्बोधन के सुनते ही, जयप्रकाश के सिर के बाल खड़े हो जाते हैं। नहीं, यह स्थान भी छोड़ना ही पड़ेगा।

कितने घर बदले जाते हैं, कई रूप धरे जाते हैं। सामने आदमकद आईना रख कर अलग-अलग वेषों की परीक्षायें की जाती हैं। आइये, यह देखिये तो। यह सामने आईना है। उसके सामने जयप्रकाश खड़े हैं। बड़ा-सा पगड़, भभाड़ कुरते पर कामदार सदका, घाँघरेदार पाजामा, काबुली चप्पल—कहिये, यह पूरा आगा बन चुके हैं या नहीं? अलस्सलाम आगा!

३. दिल्ली, बम्बई, कलकत्ता, नेपाल

जिस दिल्ली में लौर्ड लिनलिथगो और वैवेल की गुप्त-कौंसिलें बैठती रही हैं, वहीं आगस्तक्रान्ति के केन्द्रीय संचालक-मंडल की बैठक होने जा रही है। शाही दिल्ली में ही साम्राज्यशाही के कट्टर दुश्मनों का जमावड़ा, खुफिया पुलिस की आँखों में धूल झोंक कर, फौजी खुफिया की सारी अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति पर स्याही पोतते हुए, जुटने जा रहा है। देश के कोने-कोने से क्रान्ति के पुजारियों की सवारी 'नाना वाहन पर, नाना वेष में' पहुँच रही है।

जयप्रकाश भी बनारस से दिल्ली के लिए प्रस्थान करते हैं—उनके साथ सिर्फ एक आदमी हैं, बाबा श्यामनन्दन!

मिर्जापुर! यह है मिर्जापुर-स्टेशन। गाड़ी स्टेशन पर पहुँचते ही अवध के एक रईस साहब उनके डब्बों की ओर लपकते हैं। चुननदार धोती है,

मलमली कुर्ता है, धूपवाला चश्मा है, किश्तीनुमा टोपी सिर पर है और पैर में सलेमशाही जूते हैं। पीछे उनके, उनका एक कारिन्दा है। लेकिन डब्बों में जगह कहाँ मिल रही है। कलकत्ते में बमबारी हो चुकी है। अजीब भगदड़ मच रही है। डब्बे ठसाठस भरे हैं—थर्ड की क्या बात, इन्टर, सेकेन्ड, फर्स्ट—किसी क्लास में जगह नहीं। और, यह गाड़ी अब खुलने ही पर है। हरी झंडी दिखा दी गई, सीटी बज उठी।

एक फर्स्ट क्लास डब्बे के निकट आकर श्यामनन्दनबाबा आरजू-मिन्नत करते हैं। भीतर एक मारवाड़ी युवक है। उसका बर्थ रिजर्व है। एक बार वह इस 'अवध के रईस' को देखता है। झट दरवाजा खोल देता है। भीतर आने के बाद वह अपना पूरा बर्थ खाली कर देता है। रईस साहब सो जाते हैं। उनके कारिन्दाजी लोगों से बातें करने लगते हैं—

"क्या कहें साहब, अजीब परेशानी में पड़े हैं। बाबूसाहब बीमार हैं। विन्ध्याचल ले आये थे। बड़े-बड़े वैद्यों से दवायें हुईं; यहाँ की जलवायु से भी कुछ फायदा नहीं दीखता है। घर के अकेले। इन्हींपर सब दारमदार है। अब दिल्ली लिये जा रहे हैं—वहीं हकीमों से दिखलायेंगे। दिल्ली के हकीमों का बड़ा नाम है न! देखिये, क्या होता है—भगवान ही मालिक!"

इधर अवध के रईस, जो चादर से मुँह ढँके सो रहे थे, मन-ही-मन हँस रहे हैं! आगे के एक जंक्शन पर टि० टि० सी० देख पड़ा। उससे कहा गया, जरा हमारा टिकट बदल दीजियेगा। रास्ते में इस टिकट बदलाई में वह कुछ ज्यादा पैसे ले लेता है, किन्तु, चुपचाप दे दिए जाते हैं—यद्यपि साथ के पैसिंजर इस ज्यादती को बर्दाश्त करना नहीं चाहते। उन बेचारों को क्या मालूम कि ये दोनों किसी अफसर से आमना-सामना होने की कल्पना से ही किस तरह घबरा उठते हैं!

यह गाजियाबाद स्टेशन है। यहीं इन दोनों के लिए कार रहेगी। रईस साहब तो अब भी लेटे हैं। एक आदमी हर डब्बे में अजीब तरह से झाँकता फिरता है। श्यामनन्दनबाबा अनुभव करते हैं, यह अपना आदमी है। किन्तु, भय लगा हुआ है। तब तक गाड़ी चल देती है! अब यह दिल्ली स्टेशन। स्टेशन के सदर दरवाजे से 'अवध के रईस' और उनके कारिन्दा निकले चले

आ रहे हैं और, वहाँ से एक ताँगे पर अपने निश्चित अड्डे पर आ जाते हैं। श्यामनन्दनबाबा इसके पहले एक बार दिल्ली आकर इस अड्डे को देख आ चुके थे।

दिल्ली में केन्द्रीय सचालक-मंडल की बैठक हो रही है। मंडल के मेम्बरों के ये चेहरे! तीन महीनों के क्रान्तिकारी संघर्षों ने इनके चेहरों में कितने परिवर्तन ला दिये हैं। चेहरों से भी ज्यादा परिवर्तन तो आत्माओं में दीख पड़ता है। फ़ौलाद जलाये जाने के सिलसिले में इस्पात बन चुका है, सोना तपकर कुन्दन बन गया है। इनमें बूढ़े हैं, नौजवान हैं; स्त्रियाँ हैं, पुरुष हैं; गांधीवादी हैं, समाजवादी हैं! लेकिन सारे भेदभाव के मैल क्रांति की ज्वाला में जल चुके हैं। सबकी एक ही आन है, एक ही शान है—"चालीस करोड़ नहीं दबेंगे", "करेंगे या मरेंगे!" तीन महीनों से ये भर-नींद सोये तक नहीं हैं। भोजन और विश्राम की तो बात दूर। चेहरों पर रुक्षता है, जिस्म पर कितने ही घावों के निशान हैं। ये घाव बाहर-बाहर न दीखें, भीतर-भीतर खाये जा रहे हैं। लेकिन, इनकी ओर ध्यान देने की भी फ़ुर्सत कहाँ? एक ही ध्यान है—हिन्दोस्तान से इस लुटेरी सरकार को किस तरह भगा पावेंगे, कब भगा पावेंगे!

इस ऐतिहासिक बैठक में आज एक नई हस्ती आई है—जयप्रकाश आये हैं। जयप्रकाश के आगमन से ही सबों के चेहरों की झुर्रियाँ भर गईं-सी दीखती हैं! खिंचे चेहरों पर हास्य की रेखा दौड़ती नज़र आती है। प्रारम्भिक मिलन-जुलन, कुशल-वार्ता! फिर देश की, क्रान्ति की गम्भीर समस्यायें। जयप्रकाश अपना कार्यक्रम बनारस से ही तैयार कर लाये हैं। सबके सामने रखते हैं। सब उसे स्वीकार करते हैं, सब एक स्वर से जयप्रकाश को नेता मान लेते हैं।

यह कार्यक्रम अगस्तक्रान्ति के दूसरे दौर की तैयारी का था। अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति दिनदिन गम्भीर होती जा रही थी, तो देश की दशा भी दिन दिन क्रान्ति के अनुकूल हो रही थी। बाजारों में चीजों की कमी होती जा रही थी, देहात तक में अन्न का अभाव हड़कम्प मचाये था। यातायात के साधनों की कमी कोढ़ में खाज पैदा कर रही थी। हिन्दोस्तानी फ़ौज में

असन्तोष फैला हुआ था; पुलिस की नैतिकता भ्रष्टता तक पहुँच चुकी थी। कलकत्ता पर जो बमबारी हुई थी, उसके कारण लोगों में अजीब आतंक और भगदड़ मच रही थी। यदि इन परिस्थितियों का सम्यक् उपयोग किया जाय, तो अगस्तक्रान्ति की राखदँकी चिनगारी से फिर ज्वालायें फूटने लगें। लेकिन, सिर्फ ज्वालायें फूटने से ही काम चलनेवाला नहीं, यह बात पहले दौर में ही स्पष्ट कर दी थी। जरूरत यह भी थी कि क्रान्तिकारियों के शिक्षित दस्ते तैयार किये जायँ और उन्हें सभी साधनों से लैस किया जाय, जिसमें जब कभी क्रांतिकारी परिस्थिति परिपक्व हो, तुरत धावा बोल दिया जाय और पहले ही धावे में शाहशाही की पूरी इमारत को ध्वस्त-पस्त कर दिया जाय। ऐसा न हो कि जब पुल तोड़ने की जरूरत पड़े, तो कोई घन चला रहा है, कोई गाँती भाज रहा है, तो कोई डेनामाइट के लिए दौड़ा जा रहा है! नहीं, अगस्तक्रांति की खामियों और गलतियों को पहले से ही दुरुस्त कर लेना है।

मजदूरों में, किसानों में, विद्यार्थियों में काम करने के लिए अलग-अलग विभाग बनाये गये। मजदूरों को अगस्तक्रान्ति के समय कम्युनिस्टों ने काफी गुमराह किया था, अतः उस ओर ज्यादा ध्यान देने की जरूरत महसूस की गई। किसानों को बुरी तरह कुचला गया था, उन्हें ढाढ़स बँधाने की जरूरत थी। दिमागपस्त लोगों की स्वाभाविक कमजोरी विद्यार्थियों में परिलक्षित हो रही थी, वे फिर कॉलिजों की ओर भागे जा रहे थे—उन्हें रोकना जरूरी माना गया। फौज में काम करना तो दूसरे दौर के कार्यक्रम का प्रमुख अंग समझा गया। पुलिस में काम करने की योजना भी तैयार की गई। विदेशों से सम्पर्क करने की तजवीज भी पेश और पास हुई। प्रचार के कार्य के लिए साइक्लोस्टाइल, प्रेस और रेडियो का प्रबंध किया गया। 'आजाद-दस्ता' के नाम से अगस्त के क्रान्तिकारियों का गुरिल्ला संगठन करने एवं उन्हें शिक्षित करने की योजना को सबसे अधिक आवश्यक माना गया। यह काम जयप्रकाश ने अपने हाथों में रखा।

दिल्ली में यह कार्यक्रम स्वीकृत हो जाने के बाद जयप्रकाश बम्बई की ओर चले। यह यात्रा उनकी मोटर से हुई। राजपुताने के रेगिस्तान को पार करते जयपुर होते जयप्रकाश अहमदाबाद आये। फिर गुजरात की हरी भूमि

को नमस्कार करते वह बम्बई पहुँचे। अगस्तक्रान्ति की जन्मभूमि में इस समय बहुत कुछ शांति हो चली थी, किन्तु, महाराष्ट्र अपने शिवाजी की परम्परा शान से निभाये जा रहा था। बम्बई के मित्रों की राय हुई कि जयप्रकाश यहीं ठहरें, यहाँ सुरक्षा का सब प्रबंध आसानी से किया जा सकता है, साथ ही साधनों की भी कमी यहाँ पर नहीं होगी। किन्तु, जयप्रकाश सिर्फ सुरक्षा की खोज में नहीं थे। तोभी उन्हें बम्बई में तीन महीने रह जाना पड़ा—क्योंकि इसी दरम्यान गांधीजी का आगाखाँ महल में सुप्रसिद्ध अनशन शुरू हुआ। जयप्रकाश उस अनशन के असर को उत्सुक दृष्टि से देखते रहे। शुरू में ऐसा मालूम हुआ, क्रान्ति का दूसरा दौर शुरू होने जा रहा है, किन्तु फिर उत्तेजना दब गई। जयप्रकाश इससे निराश नहीं हुए। क्योंकि अभी तयारी कुछ नहीं हो सकी थी।

बम्बई से मद्रास होकर वह कलकत्ता के लिए रवाना हुए। यहाँ से उन्होंने श्री अच्युत पटवर्धन की छोटी बहन विजया को अपने साथ ले लिया। पूरा साहबाना ठाठ है—सूट और हैट के बीच बड़ी-बड़ी सघन मूँछें ही हिन्दोस्तानियत की लाज बचाये हुई हैं। साहब फर्स्टक्लास के डब्बे से कम में क्या सफर करेंगे? साहब के साथ उनकी यह लड़की है—लड़की भी, प्राइवेट सेक्रेटरी भी। साहब की तबीयत कुछ अलील है। देखिये, उनको दुलारी बेटी दिनरात किस तरह सेवा में सजग, चौकस रहती है!

यह है हावड़ा-स्टेशन। एक दिन सरेआम जयप्रकाश गाड़ी से वहाँ उतरते हैं और पहले से खड़ी एक कार पर कलकत्ता शहर में पहुँच जाते हैं। कलकत्ता पहुँच कर वहाँ गुप्त संगठन का एक जाल-सा बुन दिया गया। जगह जगह पर 'सेल्स' बनाये गये, सम्वाद के ले जाने, ले आने के लिए 'कोड' बनाये गये। नेपाल के काम का सीधा सम्पर्क यहीं से रहेगा, अतः, यहाँ पर जबर्दस्त संगठन की आवश्यकता महसूस की गई और उसे पूरा किया गया।

श्यामनन्दनबाबा और सूर्यनारायण जयप्रकाश को नेपाल ले जाने के लिए कलकत्ता पहुँच चुके थे। सूरज को लेकर जयप्रकाश नेपाल के लिए रवाना हुए। कलकत्ता से कटिहार तक तो फिर वही साहबी पोशाक, किन्तु, कटिहार से बंगाली जमीन्दार का रूप पकड़ा गया। यह हैं मिस्टर ए० बो०

सिन्हा और यह हैं कुमारी सिन्हा, उनकी लड़की; और यह हैं उनका मुसा-हब। कटिहार में फर्स्टक्लास डब्बे की कमी है। मुसाहब रेलवे-स्टाफ के एक व्यक्ति से मिलता है—"हुजूर आपको इनाम देंगे, डब्बे का इन्तजाम कर दीजिये।" डब्बे का इन्तजाम होता है, इनाम मिलता है। यह है मनसी स्टेशन, जहाँ से गाड़ी मधेपुरा के लिए बदलेगी। जमीन्दार साहब अपनी लड़की के साथ गाड़ी से उतरकर दूसरी गाड़ी में जा चढ़ते हैं; किन्तु मुसा-हब जब टिकट दिखाने लगता है, पता चलता है, टिकट मनसी का नहीं मनसाली का है। "टिकट बाबू कुछ इनाम लीजिये, नहीं तो हुजूर को यह गलती मालूम होगी, तो मेरी नौकरी चली जायगी।" नौ रुपये उसके हाथ में रख दिये गये—झंझट खतम!

झंझट खतम!—नहीं-नहीं; सूरज को अभी मालूम हुआ है, जैसे कोई उसका पीछा कर रहा है! वह अरहर के खेत होकर निकल जाता है। लेकिन इससे जयप्रकाश को दिक्कत नहीं होनेवाली। एक लड़का—ब्वाय (boy) के रूप में उनके साथ है—वह जानता है, उन्हें कहाँ उतारना पड़ेगा!

सोनबरसा से एक अजीब काफला नेपाल की ओर आ रहा है। देखिये, यह आगे-आगे हाथी है, इसपर कौन बैठे हैं यह? ढीली धोती, फर्सी जूते, रेशमी 'पंजाबी, घुँघराले बाल—यह हैं श्री ए० सी० सिन्हा, बंगाली जमी-न्दार। हाथी के पीछे सम्पनी है, जिसमें जमीन्दार साहब की एकलौती बेटी बैठी है—महाराष्ट्री विजया पुरी बंगबालिका की सूरत में। उसके पीछे बैल-गाड़ी है, जिसपर जमीन्दार साहब के सभी सामानों के साथ उनका मुसाहब बैठा है—सूरजनारायण, अपनी पूरी शकल में पक्का मुसाहब जँच रहा है आज!

४. आजाद दस्ता : इन्कलाबी गुरिल्ले!

नेपाल में जयप्रकाश 'आजाद-दस्ता' का संगठन और शिक्षण का प्रबंध करने आ रहे थे, इसलिए पहले हम 'आजाद दस्ता' के बारे में कुछ ब्यौरे से जान लें।

अगस्त-क्रान्ति में कुछ जगहों में 'पंचायती राज' कायम भी किया गया, तो सबसे बड़ी गल्ती यह हुई कि उस राज के शासन को उसके विरोधियों

से मनवाने और उसकी रक्षा करने के लिए फौज या पुलिस का संगठन करने की कोशिश नहीं की गई। जिन जिन थानों को लूटा गया, वहाँ-वहाँ से कुछ बंदूकें क्रान्तिकारियों के हाथ लगी थीं; देहातों में भी जहाँ-तहाँ बड़े लोगों के पास बन्दूकें थीं, कई जगहों पर सैनिक छावनियों से अस्त्र-शस्त्र मिल सकते थे और मिले—लेकिन, इनका कोई अच्छा उपयोग नहीं किया गया। जो अस्त्र-शस्त्र हाथ लगे, उन्हें लेकर थोड़े दिनों तक खेलवाड़ चला, फिर या तो वे नदियों और कुओं में फेंक दिये गये या जमीन में गाड़ दिये गये। कांग्रेस अहिंसा मानती रही है, किन्तु राज की ओर से होनेवाली हिंसा को उसने हमेशा स्वीकार किया है। कांग्रेस-मंत्रिमंडलों ने प्रायः ही गोलियाँ और लाठियाँ चलवाईं और अगस्तक्रान्ति के कुछ घंटे पहले अँगरेजों से कहा गया था कि यदि आप भारत छोड़ने को तैयार हों, तो हम आपका साथ देकर जर्मनों और जापानियों से लड़ेंगे। यों, जहाँ तक कांग्रेस का सवाल है, वह राज की हिंसा को, लाचारी ही सही, हमेशा से लाजिमी मानती रही है। फिर कोई कारण नहीं था कि अगस्त के जमाने में उन अस्त्र शस्त्रों को लेकर 'पंचायती राज' अपनी फौज क्यों नहीं कायम करता?

लेकिन यह गलती तो हो चुकी थी। अब क्रांति के दूसरे दौर में यह गलती नहीं होने पावे, इसके लिए जरूरी था कि देश के नौजवानों का एक दल पहले से ही संगठित किया जाय, जिसे जहाँ तक सम्भव हो, अस्त्र-शस्त्रों के प्रयोग से वाकिफ करा दिया जाय, जिसमें ज्योंही फिर क्रांति हो, पंचायती राज को तुरत एक बनी-बनाई फौज मिल जाय। जब तक क्रान्ति का दूसरा दौर नहीं आता, उसके दरम्यान भी, ऐसे दल की सख्त जरूरत थी। क्योंकि कांग्रेस के 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव के बाद यहाँ की सरकार भारतीय जनता की नजरों में एक ऐसी सरकार थी, जो जबर्दस्ती मुल्क के सीने पर बैठी हुई थी और उसे हर तरह से तंग करना, लाचार करना भारतीय राष्ट्र का परम कर्त्तव्य था। यूरोप में उन दिनों जिन देशों पर जर्मनी ने कब्जा किया था, वहाँ-वहाँ छापेमार दस्तों—गुरिल्ला बैंड—का संगठन किया गया था और वे छापेमार जर्मनों को नाकोदम किये हुए थे। हम भी अपने देश में अँगरेजों को नाकोदम कर दें—इसके लिए छापे-

मार दस्ते कायम किये जायँ। ऐसा सोचना उस स्थिति में बिल्कुल स्वाभाविक था।

इन्हीं दो उद्देश्यों को दृष्टि में रखकर जयप्रकाश ने 'आजाद दस्ता' का संगठन शुरू किया, किन्तु चूँकि क्रांति के दूसरे दौर में देर थी और इस समय का काम सरकार को तंग करना, उसका शासन चलाना नामुमकिन कर देना—यही प्रमुख था, इसलिए 'आजाद दस्तों' का पहला काम तोड़-फोड़ (dislocation) ही समझा गया था। 'आजाद-दस्ता' की हस्त-पुस्तिका नं० २ में कहा गया है —

"तोड़फोड़ गुलाम और पीड़ित जनता का एक अमोघ अस्त्र है, जिसके द्वारा वह अपने शासकों से लड़ती आई है। जनता को गुलाम बनाये रखने और उसे चूसने-दूहने के लिए जिन साधनों का निर्माण शासकों ने कर रखा है, उनका संहार करना, उनके कलपुर्जों को चकनाचूर करना, यातायत के साधनों को बेकाम कर देना, इमारतों और भंडारों को भस्मीभूत कर देना—ये सब काम तोड़फोड़ के अन्दर आते हैं। इसलिए यदि तार काट दिये जाते हैं, रेल की पटरी हटा दी जाती है, पुल उड़ा दिये जाते हैं, कारखानों का चलना बंद कर दिया जाता है, पेट्रोल की टंकियों में आग लगा दी जाती है, थानों को जला दिया जाता है, सरकारी कागजों को नष्ट कर दिया जाता है—ये सब-के-सब तोड़फोड़ में आ जाते हैं और इनका करना जनता के लिए सर्वथा उचित है। किन्तु यदि बाजार पर, स्कूल में, धर्मशाला में बम फेंका जाता है, तो निस्सन्देह यह काम शैतानों का है, शैतानों का है। यह तोड़फोड़ नहीं है।

"लेकिन हमें यह भी समझ लेना है कि तोड़फोड़ ही हमारा एकमात्र कार्यक्रम नहीं है और न सिर्फ यही हमारा उद्देश्य है। हमें याद रखना है कि हम तो जन-क्रांति के हिमायती हैं और अन्ततः जनता की क्रान्ति पर ही सब कुछ निर्भर करता है। सिर्फ तोड़फोड़ करनेवाले गुप्त दस्तों से ही क्रान्ति नहीं की जा सकती। तोड़फोड़ करनेवाले दस्तों का भी क्रान्ति में एक बहुत बड़ा हिस्सा होता है, लेकिन इससे ज्यादा उनका महत्त्व नहीं है।

"तीसरी बात हमें यह समझ लेनी है कि तोड़फोड़ को कामयाब होने के लिए जरूरी यह है कि वह बड़े पैमाने पर की जाय—वह खुद ही एक जन-आन्दोलन का रूप धारण कर ले।"

उसके बाद वह पुस्तिका तोड़फोड़ के भिन्न-भिन्न रूपों की व्याख्या करती है। पहले तोड़फोड़ को तीन हिस्सों में बांटा गया है (१) यातायात के साधनों की तोड़फोड़—जिसमें तार, टेलिफोन, डाक, बेतार के तार, रेलवे, सड़क, पुल, इंजिन और लौरी-बस शामिल हैं, (२) औद्योगिक साधनों की तोड़फोड़—जिसमें फैक्टरी, मिल, खान और जहाजी भट्टे शामिल हैं और (३) अग्निकांड—जिसमें सरकारी कागजपत्रों, इमारतों, पेट्रोल की टंकी और गोले-बारूद के भंडारों में आग लगाना शामिल है। तरीके के ख्याल से तोड़फोड़ की दो किस्में हैं—(१) औजार से काम लेना—जिसमें रेती, आरी, हथौड़ा, कुदाल, बाल्ट आदि शामिल हैं और (२) रसायन से काम लेना—आग लगाने और विस्फोट करनेवाले रासायनिक द्रव्यों का इस्तेमाल।

तोड़फोड़ के इन रूपों और तरीकों को *सफलतापूर्वक काम में लाने के लिए दो तरह के संगठन की जरूरत बताई गई है। यातायात के साधनों एवं अग्निकांड के लिए 'आजाद-दस्ता' का व्यापक संगठन होना चाहिये,* किन्तु औद्योगिक तोड़फोड़ तभी कामयाब हो सकती है, जब आजाद-दस्ता के सदस्य उसमें घुसकर चुपचाप काम करें। यों ही तोड़फोड़ के लिए हमेशा महत्व की चीजों को ही चुनना चाहिये, छोटे-छोटे कामों में शक्ति बर्बाद नहीं करनी चाहिये। साथ ही ऐसी तोड़फोड़ कभी नहीं करनी चाहिये, जिससे सरकार के बदले जनता को ही ज्यादा तकलीफ उठानी पड़े। तोड़फोड़ तभी सफल होती है, जब जनता का पूरा समर्थन उसे प्राप्त हो। जब जनता को तकलीफ होगी, उसमें और तोड़फोड़ करनेवाले दस्ते में एक खाई पड़ जायगी—फिर, न तो वह दस्ता काम कर सकता है, न तोड़फोड़ का काम चल सकता है।

'आजाद दस्ता' की आवश्यकता बताते हुए उसकी पहली हस्तपुस्तिका में बताया गया है कि किस तरह अगस्त-क्रान्ति के बाद बहुत-से नौजवान

चारों ओर मारे-मारे फिर रहे हैं और जिनके मनमें जो आता है, करते फिरते हैं। इससे देश को नुकसान हो रहा है। बहुत से नौजवान हथियारों के लिए अत्र परीशान हैं और एक पिस्तौल, एक बम या एक दर्जन बुलेट के लिए वे जान पर भी खेलने को तैयार हैं। यह पागलपन है या बेसब्री? काश, हमारे ये दोस्त जानते कि एक हथौड़ी, एक छेनी, एक आरी, एक रेती, कुछ गज तार और रस्सी, एक कुदाल, एक लाठी, और एक सीढ़ी से वे इस समूची साम्राज्यशाही की नींव सालों तक हिला सकते हैं—कुछ रासायनिक द्रव्य भी उन्हें मिल जायँ, तो फिर क्या कहना है? हिन्दोस्तान में लगभग २५० जिले हैं, हर जिले में लगभग २० थाने हैं। यदि हर थाने में पाँच नौजवान भी निकल आवें, तो वे इन साधारण औजारों से बिना किसी एक व्यक्ति की हिंसा किये ही, अँगरेजी राज का चलना असम्भव बना सकते हैं।

डा० राममनोहर लोहिया ने 'क्रान्ति की तैयारी करो' नामक अपने लेख में इन दस्तों की उपयोगिता के बारे में यों लिखा था—

"धुन के पक्के और शिक्षा पाये हुए पाँच-पाँच आदमियों के दस्ते ऐसे तैयार किये जायँ, जो ज्यों ही क्रान्ति शुरू हो, आगे बढ़ कर जनता का नेतृत्व करें और उसे कामयाबी तक पहुँचायें। बड़ा-से-बड़ा बलिदान कर के भी आप-से-आप विद्रोह के लिए खड़ी हुई जनता जो काम पूरे तौर से नहीं कर सकती, वे ही काम इन दस्तों के चलते आसानी से सम्पन्न हो सकेंगे। जुलूस पर गोली चलाने के लिए भेजे गये या अँगरेजी सरकार के केन्द्रों की रक्षा पर तानात किये गये सैनिकों के हथियार छीनने की बात हो; या सड़क काटने, तार काटने, रेल की पटरियाँ उखाड़ने और रेलगाड़ियों का चलना बन्द करने की बात हो; या थानों पर, जेलों पर, कचहरियों पर, और सेक्रेटेरियट पर जनसमूह को लेकर धावा करने की बात हो—इन कामों के लिए पहले से ही विशेष शिक्षा प्राप्त किये हुए नौजवानों से बने ये दस्ते कमाल कर दिखायेंगे। जिन-जिन क्षेत्रों में ऐसे दस्ते होंगे, वहां क्रान्ति शुरू होते ही अँगरेजी राज का खात्मा चुटकी बजा कर कर दिया जा सकता है और इनसे प्रोत्साहन पाकर दूसरे क्षेत्रों

में भी क्रान्ति की ज्वाला धधक उठेगी और अँगरेजी राज को स्वाहा कर देगी।"

युक्तप्रांत के साथियों के नाम प्रकाशित 'आजाद राज कैसे बने?' अपनी पुस्तिका में डा० लोहिया कहते हैं—"मैं दावे के साथ कहता हूँ कि अगर अपने सूबे के हर जिले में सौ मजबूत और तैनात आदमी हों और एक जिले का दूसरे जिले के साथ ऐसा संगठन किया जाय कि सारे सूबे में एक साथ कुछ हो सके, तो हम फिर से एक जबर्दस्त और सफल क्रान्ति कर सकते हैं।"

५. नेपाल की कैद से उद्धार !

जयप्रकाश का नेपाल में पहुँचना था कि सारे बिहार के क्रान्तिकारियों में हलचल मच गई। जितने फरार और रूपोश क्रांतिकारी थे, सब नेपाल की ओर मुँह किये चल पड़े। जयप्रकाश को देख कर ही सब के मन में अजीब उत्साह का संचार हो जाता था। क्रान्ति के दूसरे दौर की तैयारी और इसके दरम्यान तोड़फोड़ के काम को व्यापक बनाने की जो योजना उनकी थी, सब ने उसे सहर्ष स्वीकार किया।

नेपाल को ही अन्ततः आजाददस्ता का अखिल भारतीय केन्द्र बनाया जाय, ऐसा भी सोचा जाने लगा। कोसी-नदी के कछार में 'बकरो का टापू' नामक एक स्थान है, वहाँ पर जयप्रकाश के लिए फूस का मकान बनाया गया। घर बनाये गये, कुआँ खोदा गया। बाहर से सम्पर्क रखने के लिए दो घोड़े खरीदे गये, बैलगाड़ी खरीदी गई। डाकखाना और स्टेशन से अखबार लाने का प्रबंध किया गया। जहाँ जयप्रकाश का घर बनाया गया, उससे कुछ दूर पर आजाददस्ता का बिहार प्रान्तीय दफ्तर बनवाया गया। दो हरकारे रखे गये, जो जयप्रकाश और प्रान्तीय दफ्तर में सम्पर्क बनाये रखें। जयप्रकाश के घर से कुछ दूर पर सामने एक पहाड़ था; इन्तजाम किया जाने लगा कि वहाँ रेडियो का स्टेशन बनाया जाय—उसके लिए ट्रांसमीटर और बैटरी वगैरह लाने का भी प्रबंध किया गया। रेडियो एवं प्रचार-विभाग के अध्यक्ष डा० लोहिया को लेकर बाबा श्यामनन्दन भी आ पहुँचे।

जयप्रकाश के साथ एक डाक्टर भी थे। वहाँ यह प्रचार किया गया था कि नये डाक्टर साहब यहाँ प्रैक्टिस करने आये हैं और उनके साथ उनका परिवार भी आया है। विजया की उपस्थिति से परिवार की तस्वीर पूरी हो जाती थी।

प्रान्तीय दफ्तर काफी दूर पर था। बाहर से जो लोग आते, वह प्रान्तीय दफ्तर में पहुँचते। प्रांतीय दफ्तर को जब उनपर विश्वास हो जाता, तब जयप्रकाश को उनके नाम और काम की सूचना दी जाती। जब जयप्रकाश स्वीकृति देते, तभी उनसे मुलाकात का प्रबंध किया जाता।

बिहार के लिए एक आजाद-कौंसिल का संगठन कर लिया गया था, जिसका सयोजक सूरजनारायण बनाये गये थे। प्रान्तीय कौंसिल ने तीन शिक्षण शिविर खोलने का निर्णय किया था और तीनों ही शिविरों के लिए आजाद-दस्ता के सैनिकों की भरती भी जिले-जिले में शुरू कर दी गई थी।

नेपाल में जो पहला शिविर खोला गया था, उसमें ३५ ऐसे सैनिकों को लिया गया, जो जिलों में जाकर आजाददस्ता का संगठन और शिक्षण का प्रबंध कर सकें। यह शिविर मुख्यतः अफसरों का शिविर था। इसके मुख्य शिक्षक श्री नित्यानन्दजी थे, जो पीछे सोनबरसा (भागलपुर) में पुलिस से लड़ते हुए गोली खाकर शहीद हो गये। शिविर के लिए अन्न का प्रबंध नेपाल के लोगों ने ही किया था।

जयप्रकाश नेपाल में दो महीने रह चुके थे। विजया महाराष्ट्र लौट चुकी थी। शिविर का काम चल रहा था। मालूम होता था, अब सफलता निकट पहुँच चुकी है कि चारों ओर कुछ भनक सुनाई पड़ने लगी। अँगरेजी सरकार के कहने पर नेपाल सरकार जयप्रकाश की खोज में लगी है. चारों ओर सुफिये दौड़ रहे हैं, किसी भी दिन जयप्रकाश के घर पर या शिविर पर छापा मारा जा सकता है—ऐसी चर्चायें कानोंकान होने लगी थीं। यहाँ से हट कर बाराह क्षेत्र की ओर क्यों न चला जाए जहाँ जगल-ही-जगल, पहाड़ ही-पहाड़ हैं, ऐसा सोचा जाने लगा।

रुपये की कुछ कमी हो चली थी, उसके प्रबंध में श्यामनन्दन बाबा बैल-गाड़ी पर चले। थोड़ी दूर जाने पर उन्होंने देखा, नेपाली सैनिकों का एक

दस्ता आ रहा है। दस्ते ने श्यामनन्दन को घेर लिया। "आप कौन हैं! कहाँ जा रहे हैं?" इसके उत्तर में बाबा ने बता दिया—'पूर्णिया-जिला घर है, न्यौते में आये थे, अब लौट रहे हैं।" लेकिन दस्ते के कप्तान को इससे सन्तोष नहीं हुआ, दो सिपाहियों को उनकी देखरेख करने को छोड़ कर वह आगे बढ़ा। बाबा समझ गये, यह धावा जयप्रकाश के घर पर होगा। दोनों सिपाहियों को बहला दिया और गाड़ीवान को भेजा कि दौड़कर जयप्रकाश को खबर कर दे। लेकिन जब तक गाड़ीवान पहुँचे, तब तक तो वहाँ जयप्रकाश और लोहिया दो अन्य साथियों सहित गिरफ्तार कर लिये गये थे।

पहले जयप्रकाश के घर पर पहरे पड़ते थे, किन्तु इधर कुछ निश्चिन्तता आ गई थी। अचानक बरसा घर घिरा हुआ देख कर चारों आदमी भौंचक रह गये। जयप्रकाश बरामदे पर बैठे थे; सोचने के लिए कुछ समय लेने के ख्याल से वह भीतर रसोई घर की तरफ बढ़े। पीछे से सिपाही आ धमका और कहा, आपलोग गिरफ्तार हैं, हनुमाननगर चलिये। 'हमलोगों को क्यों गिरफ्तार किया जा रहा है?' यह पूछने पर कप्तान ने सिर्फ यह कहा कि ये सब बातें वहीं बड़े हाकिम से मालूम होंगी। वे सबके सब सशस्त्र थे, अतः उनके पीछे हो लिया गया। थोड़ी दूर आने पर बाबा भी इस गिरोह में आ मिले।

कोशी नदी को पार कर रात में एक जगह ठहरा गया। सशस्त्र सिपाही चारों ओर घेरा डाले हुए थे। श्यामनन्दन बाबा ने कप्तान से बातें शुरू कीं। उन्हें मालूम था, नेपाल की पुलिस और अफसरों में घूसखोरी का दौरदौरा है। क्यों नहीं घूस देकर निकलने की कोशिश की जाय? यह भी मालूम था कि जिसे प्राणदंड की सम्भावना होती हैं, उसे पकड़कर अँगरेजों को सौंपना नेपाल-सरकार मुनासिब नहीं समझती। ब्राह्मण तो वहाँ अवध्य समझे ही जाते हैं। अतः, बाबा ने एक कहानी बनाई—जयप्रकाश एक बड़े घर के एकलौते सपूत हैं। उनका घर सीतामढ़ी के नजदीक है, जाति के भूमिहार ब्राह्मण हैं। उनका एक पट्टीदार है, जिससे खान्दानी दुश्मनी है। पट्टीदार की दोस्ती थानेदार से है। हाल ही सीतामढ़ी का एस० डी० ओ० मारा गया है। अब पट्टीदार चाह रहा है कि अपने दोस्त थानेदार से

मिलकर उन्हें उस करल के केस में फँसा दें और यदि उन्हें फांसी हो जाय, तो हमेशा के लिए यह झंझट से मुक्त हो जाय। क्योंकि वह भाई में अकेले हैं, पिता मर चुके हैं—सिर्फ मां बची हुई हैं और युवती पत्नी है। "हजूर, जरा बुढ़िया मां की तरफ ध्यान दीजिए और उस नवयुवती पत्नी के सुहाग की तरफ खयाल कीजिये। ज्योंही उन्हें यह खबर मालूम होगी, वे जान दे देंगी, हजूर।

यों आरजू मिन्नत होती है, फिर फुसफुस कर कानों में कहा जाता है—हुजूर, आप जितना रुपया कहिये, मैं ले आता हूँ; बुढ़िया माँ अपने बेटे के लिए सर्वस्व बेंच देगी, हजूर।......बताइये हजूर, कितना चाहिए, पाँच सौ, एक हजार, डेढ़ हजार, दो हजार......।" किन्तु कप्तान बातें टालता जा रहा है—घबराइए मत, आपलोग छूट जाइयेगा। कुछ बड़े क्रांतिकारी लोग यहाँ आ गये हैं, हम उन्हीं की तलाश में हैं। आपलोगों से सिर्फ पूछताछ कर छोड़ दिया जायगा।

दूसरे दिन भोर में चलने के लिए बैलगाड़ियों की तलाश में जब नेपाली सिपाही गाँव में घूम रहे थे, दो सज्जन और पकड़े गये जो जयप्रकाश से मिलने को जा रहे थे। अब पाँच से सात हुए। तीन बैलगाड़ियों पर इन्हें लादकर ले चला गया। सबके चेहरे उतरे हुए हैं। सबके हृदयों में आँधियाँ चल रही हैं। कोई किसी से बोलता तक नहीं। बाबा देखते हैं, यह स्थिति तो असह्य है। कहते हैं—अब मैं तो हँसूँगा। और सबके चेहरे पर हँसी दौड़ जाती है। अब सब हँसते-बोलते हनुमाननगर की ओर चले।

इधर भोर में एक बात और हुई थी, जिसने पीछे सारी घटना पर एक नया रंग ला दिया। भोर में जयप्रकाश शौच के लिए नदी की तरफ चले। साथ ही बंदूक लिये सिपाही थे। सिपाही इधर खड़े हो गये, जयप्रकाश नदी के कछार में शौच के लिये बढ़े। नदी के उस पार उन्होंने एक लड़के को देखा। अरे, यह तो परिचित आदमी मालूम होता है। कौन है? शशि तो! उधर शशि की आँखों से आँसू की धारा निकल रही है। उसे इशारा करते हैं, बैठ जाओ। वह बैठ जाता है। फिर उसे

कहते हैं—प्रताप (सूरजनारायण) को जाकर खबर दो, अब हमें अँगरेजी सरहद में ले जाया जाय, तो चाहे जिस कीमत पर हो हमें छुड़ाने की कोशिश करें।

रात में ये लोग हनुमाननगर पहुँचे। उसी समय बड़ा हाकिम आया और इन्हें देखा। फिर उसने टेलीफोन पर काठमांडू से बातें कीं। इन लोगों को गार्ड रूम में रखा गया। भोर से ही कचहरी शुरू हुई।

जरा इस कचहरी का रंग देखिये। एक ओर बड़ा हाकिम बैठा है। दूसरी ओर ये सात अभियुक्त। चारो ओर सख्त पहरे पड़ रहे हैं। एक-एक कर अभियुक्तों को पूछा जाता है, वे अपना बयान दिये जा रहे हैं।

सबसे पहले बाबा श्यामनन्दन आते हैं। बाबा अपनी उपर्युक्त कहानी दुहरा जाते हैं, फिर कहते हैं—"जैसा आप खुद देख सकते हैं, हजूर, हमारे मालिक (जयप्रकाश) बिलकुल सीधे-सादे आदमी हैं, धर्मभीरु व्यक्ति हैं। कभी किसी की हानि न की, कभी किसी का बुरा नहीं चाहा। तो भी इनके पीछे दुश्मन पड़े हैं। भाग कर बाबा पशुपतिनाथ की शरण में आये थे; किन्तु अभाग्य यहाँ भी पीछा करता आया। खैर, यदि आप समझते हों कि आपके राज्य में आकर हमने गलती की, तो जुर्माना कीजिये, हम जुर्माना देने को तैयार हैं।" जयप्रकाश अपने स्वामिभक्त मैनेजर (बाबा) की बात की सिर्फ ताईद करते हैं, उन्हें कुछ ज्यादा कहना नहीं है। किन्तु लोहिया ने तो काफी वक्त लिया। लोहिया जयप्रकाश के लँगोटिया यार हैं। आई० ए० तक पढ़े हुए हैं। वह हाकिम को बताते हैं कि हम शरणार्थी हैं। नेपाल हिन्दू राज्य है, क्षत्रिय राज्य है। हिन्दू राजा, क्षत्रिय राजा कभी अपनी शरण में आये व्यक्ति को कष्ट नहीं देते, बल्कि अपराधी शरणार्थी की भी रक्षा में अपने सर्वस्व की बाजी लगा देते हैं। हमने कोई अपराध नहीं किया है, हमें क्यों कष्ट दिया जा रहा है? वह कुछ कानूनी बातें भी पेश करते हैं। नेपाल स्वतंत्र राज्य है। एक स्वतंत्र राज्य को हैसियत से वह बाध्य नहीं है कि अँगरेजों के अपराधी को उन्हें सौंपे या दंड दे। अँगरेज अगर ऐसी माँग करते हैं, तो नेपाल की स्वतंत्रता पर आघात करते हैं, उसका अपमान करते हैं। दुनिया भर के राजनीतिक अपराधी इंगलैंड

की जमीन पर पैर रखते ही अपने को निरापद समझने लगते हैं। नेपाल की भूमि क्या इगलैंड की जमीन से कम पवित्र है? हिन्दोस्तान भर में सिर्फ नेपाल की भूमि ही स्वतन्त्र है, इसी की ओर हिन्दोस्तान भर के स्वतन्त्रता प्रेमियों का ध्यान लगा है। यह स्वतन्त्रता एक धरोहर है, इसकी रक्षा आप करते आये हैं, आज भी कीजिये।

शेष चार व्यक्ति भी अपने बयान देते हैं। उनके बयान मामूली होते हैं—हम सीधे-सादे किसान हैं, अँगरेजों के डर से भागकर नेपाल आये हैं, अँगरेज हिन्दोस्तान में जुल्म कर रहे हैं, जिसको चाहते हैं, गोली मार देते हैं, फाँसी पर चढ़ा देते हैं। हम हिन्दू हैं, आप हिन्दू राजा हैं, म्लेच्छों से हमें बचाइये, सरकार!

बीच बीच में हाकिम जिरह भी करता जाता है और रह-रहकर टेलिफोन पर काठमडू से बातें करता है। उसके पास कुछ फोटो भी हैं। उन फोटों से वह इनके चेहरों की मिलान करता है। शायद किसी का चेहरा मिल नहीं रहा है—हाँ, लोहिया का चेहरा गुलाली के फोटो से थोड़ा मिलता है, किन्तु इसमें जयप्रकाश नहीं हैं, यह तो उसे विश्वास हो चला है। अन्त में वह अभियुक्तों से कहता है—आपलोग घबड़ायें नहीं; बाबा पशुपतिनाथ की कृपा हुई, तो आप जल्द ही छूट जायँगे!

और, हाकिम का यह कहना कुछ घंटों के अन्दर ही सच सिद्ध हुआ!

शशि ने अपने काम की जिम्मेवारी समझी और दूसरे दिन सुबह-सुबह शिविर में यह खबर पहुँच गई कि जयप्रकाश गिरफ्तार हो गये और उन्हें छुड़ाना चाहिये। लोगों में यह धैर्य नहीं था कि अँगरेजी राज की भूमि में आने पर उन्हें छुड़ाया जाय—न जाने बीच में क्या हो? सूरज नारायण शिविर के सैनिकों से कहते हैं, जो मरने को तैयार हों, वे मेरे साथ फौरन रवाना हो जायँ! ३५ के ३५ सैनिक जाने को उद्यत हो गये और उन्हें लेकर तुरत कूच कर दिया गया। वहाँ से लगभग तीस मील की दूरी पर हनुमाननगर है। आज रात में ही नेपाल जेल को तोड़ना है। इसलिए, सिवा डबल मार्च के और कोई उपाय नहीं है।

सब जा रहे हैं, दौड़े जा रहे हैं! रास्ते में सिर्फ पहाड़ी नालों

बाबा जयप्रकाश को लेकर एक ओर भाग गये, लोहिया दूसरी ओर भटक गये। 'जयप्रकाश कहाँ हुए'—बेचैनी से खोज होने लगी। जयप्रकाश मिले, 'तब लोहिया कहाँ हैं'—इसकी खोज शुरू हुई। 'लोहिया नहीं हैं'—यह सुनते ही जयप्रकाश व्याकुल हो उठते हैं। खैर, वह भी मिले। किन्तु, लोहिया से चला तो नहीं जाता। एक बारात से एक घोड़ा लौटा कर ले आया जा रहा है। सईस से कहा जाता है, घोड़ा दे दो, कल तुम्हारे गाँव पर घोड़ा पहुँच जायगा। इन्हें डाकुओं का गिरोह समझ कर वह चुपचाप घोड़े पर से उतर जाता है। और यह देखिये, जिस घोड़े पर दिन में दुलहा जा रहा था, उसी घोड़े पर रात में आजादी के दुल्हे श्रीमान डा० राममनोहर लोहिया साहब चले जा रहे हैं।

६. आजाद हिन्द फौज से सम्पर्क की चेष्टा!

रात भर चला किये, चला किये। दिन हुआ, एक परिचित सज्जन के घर पर ठहर गये। वहाँ भीतर लेटे हुए थे। दरवाजे पर तरह तरह की गप्पें चल रहीं। गप्पों का विषय एक ही—हनुमान नगर से किस तरह क्रान्तिकारी लोग निकल भागे। एक कह रहा था—तीस हजार की फौज लेकर वे लोग जेल पर टूट पड़े; उनके पास बिजली की तोप थी। हाँ, हाँ, बिजली की तोप। बड़ा हाकिम ज्योंही निकला, उसकी नजर बिजली पर पड़ी, वह बेहोश होकर गिर गया। बाहर के इन गप्पों से भीतर के लोग हँसी के मारे लोट-पोट हो रहे हैं।

जयप्रकाश और लोहिया को लेकर सूरज स्टेशन की ओर चले। साथ में वह डाक्टर, जिसके प्रैक्टिस करने के नाम पर घर बनाया गया था। जयप्रकाश किसानों की गंदी धोती पहने हुए हैं—कुर्त्ता भी फटाचिटा है। दाढ़ी बढ़ गई है। लोहिया साहब के बड़े-बड़े बाल गर्दन के पीछे जुल्फ की तरह लटक रहे हैं। करारी मूँछें भी हैं। चश्मा नहीं होने से चलने तक में दिक्कत हो रही है। मैंफारोघाट पहुँचे। खूब भूखे थे, एक दुकान पर खाने को बैठे। मिठाइयाँ खाई जा रही हैं, मलाई मँगाई जा रही है। क्रान्तिकारियों के भागने का हल्ला था ही; कुछ लोग सन्देह की नजरों से इन्हें देखने लगे हैं।

यहाँ से नाव पर चलना है—नाववाला तरह तरह के बहाने करके देर कर रहा है। उसने पुलिस को खबर कर दी है और किसी तरह इन्हें उलझा कर रखना चाहता है।

जयप्रकाश भाँप जाते हैं, वह खिसककर बगल के बगीचे में चले आते हैं। अन्य साथी भी आ मिलते हैं और तेजी से बढ़ते हैं। पहले तेज कदम, पीछे भागना शुरू होता है। थोड़ी दूर आगे बढ़े होंगे कि पीछे से हल्ला सुनाई पड़ता है। मुँड़ कर देखते हैं, तो २५ आदमी इन्हें खदेड़े आ रहे हैं। थोड़ी दूर दौड़कर भागने की चेष्टा करते हैं, किन्तु, पीछा करनेवाले नजदीक होते जाते हैं। तब रुक जाते हैं। जयप्रकाश रिवाल्वर भर देते हैं—सूरज रिवाल्वर तान कर कुछ कदम आगे बढ़ जाता है और कहता है—"रुक जाओ!" हाथ में रिवाल्वर और यह फौजी हुक्म। खदेड़नेवाले के पैर जैसे बँध जाते हैं। सब खड़े हो गये। सूरज फिर हुक्म देता है—"पैर मिलाओ!" बेचारे सब फटपट पैर मिलाने लगते हैं। सूरज कड़क कर कहता है—"शर्म नहीं आती कि हमारा पीछा कर रहे हो! हम चोर-डाकू नहीं हैं, हम स्वराज के सिपाही हैं; स्वराज सबके लिए होगा; हम तुम्हारे लिए लड़ रहे हैं, तकलीफ उठा रहे हैं और तुम हमें पकड़ने आ रहे हो! शर्म करो, अपना चेहरा छुपाओ! हम तुम्हारा मुँह देखना नहीं चाहते;—मुँह मोड़ो।" सबके सब कल के पुतले की तरह घूम गये। एक ने कहा—"हुजूर लोगों को दारोगाजी बुला रहे हैं।" सूरज की आवाज में अब बिजली कड़क उठी—"भागो; देखो, मैं एक दो तीन बोलूँगा और तीन कहते ही जो नहीं भागेगा, उसे गोली से उड़ा दूँगा। भागो—एक, दो, तीन..." और देखिये, सब नौ दो ग्यारह हो रहे हैं!

लोहिया कह रहे हैं—यह तो पूरी अहिंसा है भाई! किन्तु यह स्थान हिंसा-अहिंसा की बहस का नहीं है। अपने लक्ष्य की ओर सब बढ़े जा रहे हैं। पैर में फफोले निकल आये हैं, फोड़े फूटकर पानी बह गया, फिर चमड़ा उधड़ गया, अब खून निकलने की बारी आई है। कोसी का किनारा पकड़े बढ़ते जा रहे हैं। कोसी के झाड़फंखाड़ में भैंस भी घोड़े के रूप में दिखाई देते हैं—क्या हम फिर घेर लिये गये, ऐसी आशंका रहरहकर होती है।

का पानी पोसे जाते हैं। शाम को एक जगह दो रुपये को मिश्री मिली, तो उसी की एकाध डलियाँ सबके कंठ में गईं।

हनुमाननगर के निकट पहुँच कर एक जगह विश्राम किया गया और यहीं कैद से उद्धार करने का पूरा प्रोग्राम बना लिया गया। नेपाल के जो लोग साथ देते रहे, उनके चलते पता चल गया कि कहाँ पर किस तरह से उन्हें रखा गया है। सबसे पहली जरूरत यह थी कि ज्योंही हमला हो, काठमांडू का टेलिफोन का तार काट दिया जाए। दो आदमियों को उसके लिए मुकर्रर कर दिया गया। इन लोगों के पास सिर्फ तीन बंदूक, दो राइफल, एक डिनामाइट और दो रिवाल्वर थे। बाकी लोगों के हाथों में बाँस चीरकर खुरदरे फट्ठे दे दिये गये। बाँस के इन फट्ठों की मार से नेपाली सैनिक बहुत घबड़ाते हैं। जिस गार्ड रूम में इन्हें रखा जाता था उसकी बगल में एक फूस की झोंपड़ी थी। गार्ड रूम के सामने गैस की रोशनी होती थी। तय हुआ दो लड़के झोंपड़ी के नजदीक जायँगे, उस पर किरासन डाल कर आग लगा देंगे। घर में आग लगती हुई देखकर सन्तरी उस ओर दौड़ेंगे, तबतक ये लोग गार्ड रूम पर धावा कर देंगे। गार्ड रूम के ठीक सामने जो रोशनी हो रही थी, गोली मार कर उसे बुता देना भी जरूरी समझा गया।

आधी रात के लगभग छापेमारों का यह दस्ता हनुमान नगर कचहरी के नजदीक पहुँचा। दोनों लड़के (जिनमें एक शशि भी था) फूस के घर की ओर बढ़े, तेल छिड़का, दियासलाई जला कर उसपर फेंकी। किन्तु आग नहीं लगी, वे घबरा कर भागे। सूरज ने उन्हें रोका और उन्हें फिर भेज कर आप गार्ड रूम की तरफ बढ़ा। उसके साथ में नित्यानन्दजी (सरदार) थे। देखा गया, सन्तरी निशाने पर नहीं है। उसी समय एक किसान उधर से निकला, जब तक वह हल्ला करे, उसकी गर्दन पर सूरज का हाथ था। डर के मारे उसने बता दिया कि सन्तरी किधर है। सरदार ने राइफल का निशाना लिया। किंतु, राइफल फेल कर गई। तब सूरज ने रिवाल्वर चलाई, जो रोशनी में जा लगी। उसका शीशा फूट गया। इतने में सन्तरी की तरफ से एक गोली आई और सूरज की कनपट्टी होकर सन्-से निकल गई। अब सूरज

ने अपनी रिवाल्वर सरदार को दे दी, वह लगातार गोलियाँ चलाने लगे। इधर सूरज ने दौड़ कर सन्तरी को पकड़ लिया, उससे राइफल छीन ली। फिर तो कुहराम मच गया, दोनों ओर गोलियाँ चलने लगीं—पैंतीसों छापेमार जोरों से हल्ला करते हुए टूट पड़े।

आज दिन को निगहरिया में जयप्रकाश ने देखा था, एक परिचित सूरत किसान के वेष में सामने के पेड़ के निकट खड़ा है। वह पेशाब करने के बहाने धीरे-धीरे उस तरफ बढ़े और सुना—'सब ठीक है'! इतना कह कर वह चला गया। किन्तु, इससे यह तो पता चलता नहीं था कि आज ही धावा होगा। यदि यह पता होता, तो शायद कुछ और तरकीबें भी सोची जातीं। मई का महीना था, गर्मी की रात थी। थोड़ी जगह में ही सातों कैदी सट-सट कर सोने को लाचार थे। सामने दो सन्तरी बंदूक लिये पहरे दे रहे थे, बाकी सन्तरी सो गये थे।

ज्योंही गोलियाँ चलने लगीं, लोहिया बोल उठे—"What a hell is this?" यह क्या खुराफात है? श्यामनन्दन बाबा उनकी बगल में सोये थे, बोले—Perhaps they are our men शायद अपने ही लोग हैं! बाबा ने सिर उठाकर झाँकना चाहा; लोहिया ने कहा—"सिर मत उठाओ, गोली लग जायगी!" किन्तु, तब तक तो शीशे का एक टुकड़ा बाबा की भौं पर आ गड़ा था और खून-खून हो रहा था।

किन्तु, इस खून की ओर कौन ध्यान दे ? सतरी सब भाग रहे हैं, सूरज नजदीक पहुँच कर कह रहे हैं, भागिये, भागिये। सातों कैदी भी भाग रहे हैं। किन्तु अजीब हुरदंग मच गया है। अपना ही आदमी कोई आता है और बाबा की पीठ पर एक लाठी जमा देता है, दुश्मन समझ कर। सूरज दुश्मन समझ कर झुके हुए लोहिया को जोरों से दबोच देते हैं—"अरे भाई, चश्मा खोज रहा हूँ।" तब उन्हें फुर्सत मिलती है। सबसे बढ़ कर तो आफत आई जयप्रकाश पर। एक तरफ काँटे का घेरा है, दूसरी ओर से एक आदमी उनकी छाती पर रिवाल्वर ताने खड़ा है, दुश्मन समझ कर। यह संकट देख बाबा झपटते हैं और चिल्लाते हैं, यह जे० पी० हैं! तब कहीं उनकी जान बच पाती है, किन्तु काँटे से पैर तो घायल हो ही गये।

एक मित्र के घर पर पहुँचे, तो पता चला, वह नहीं हैं। अब विश्राम की जगह कहाँ? लोहिया के पैर इतने घायल हैं कि वह कोसी के किनारे मुलायम पाँव देखदेख कर उधार चलने की कोशिश करते हैं। कड़ी धूप है, बड़ी गरमी है। जयप्रकाश कहते हैं—"लोहिया, गरम बालू पर चलो, गरम बालू पर। इसकी गरमी घायल पैरों में कम्प्रेशन (सेंक) का काम करेगी, भाई!" बाहरी कम्प्रेशन! लोहिया इस सूझ पर मुस्कुराते हैं।—"भाई, तुम, क्रान्तिकारी गलती से हो गये, तुम्हें कवि होना चाहिये था।"

शाम को एक ग्वाले के बथान में ठहरे। उसने डेढ़ सेर दूध मोल दिया किन्तु, उसे पीये कौन? सबके सब बेहोश लेटे हैं। जयप्रकाश दूध लेकर एक-एक को उठाते हैं, दूध पिलाते हैं। दूध पीकर सब फिर बेहोश लेट जाते हैं। रात में खूब वर्षा होने लगती है। जयप्रकाश अब सबके शरीर को कम्बल से ढँक रहे हैं। क्या भाईचारे का इससे उत्कृष्ट उदाहरण कोई और हो सकता है?

अब उस डाक्टर के साथ लोहिया दूसरी राह से चले, सूरज के साथ जयप्रकाश दूसरी राह से। रास्ते में दफादार मिलता है, चौकीदार मिलता है। सूरज चौकीदार से ही रास्ता पूछता है—"जेहलपट्टी इसी रास्ते पर है न!" रास्ते में एक जगह मूढ़ी बिक रही थी, उसे खरीदते समय मालूम हुआ, खोआ भी मिलता है। मँझारीघाट वाली घटना याद थी, डरते-डरते खोआ लिया और चल दिये। रास्ते रास्ते मूढ़ी फाँक रहे हैं और चुराचुराकर खोआ मुँह में रख लेते हैं।

यह है राघोपुर डाकबँगला—पुलिस यहाँ अड्डा डाले हुई है। किन्तु उसके सामने ही पानी पीया जाता है। वहाँ से बैलगाड़ी करके एक मित्र के घर। और, जमाई बनकर वहाँ कुछ दिनों विश्राम किया जाता है। हाँ, उस मित्र ने अपना बहनोई बनाकर जिस आदर और सम्मान के साथ, जिस खतरे को अपने ऊपर लेकर, जयप्रकाश को रखा—क्या वह या उनके साथी उस उपकार को कभी भुला सकते हैं?

फिर कलकत्ते की ओर। पार्वतीपुर, दिनाजपुर और यह है स्यालदह स्टेशन! महानगरी कलकत्ता में जयप्रकाश कहाँ विलीन हो गये, अब कौन पता लगा सके?

यहाँ पर एक प्रसंग की चर्चा अत्यावश्यक है। जब जयप्रकाश हजारीबाग जेल पार कर बाहर आये, तबसे ही वह सुभाष बाबू से सम्पर्क करने की चेष्टा में लगे। उन्होंने इसके लिए काफी परेशानी उठाई। उन्हें आश्चर्य यह हो रहा था कि सुभाष बाबू ने आजाद हिन्द फौज की स्थापना के बाद अपने कई दूत हिन्दोस्तान भेजे, लेकिन वे दूत ऐसे लोगों के पास आये, जिन्होंने डर के मारे उनसे बातें तक नहीं कीं। बम्बई के एक सज्जन के पास उनका दूत आया, तो उस सज्जन ने तबसे अपने मकान पर रहना ही छोड़ दिया। कलकत्ता में भी ऐसे लोगों के पास ही उनके आदमी आये, जो उनकी छाया से ही थर-थर काँप उठे। उन्होंने कभी कांग्रेस के संचालक-मंडल या उसके सदस्यों से सम्बन्ध स्थापित करने की कोशिश नहीं की। हजारों की तायदाद में जो क्रान्तिकारी देश के कोने-कोने में अगस्त-क्रान्ति की धूनी जगाये हुए थे, उनकी खबर उन्हें न हो, यह आश्चर्य की बात मालूम होती थी। जयप्रकाश हजारीबाग जेल से भाग गये हैं, यह समाचार जापानी रेडियो से भी कहा गया था, किन्तु जयप्रकाश से भी सम्बन्ध कायम करने की कोशिश उन्होंने नहीं की थी। जयप्रकाश के मनमें उनके प्रति कोई दुर्भावना न थी, इसकी सूचना उन्हें पहले भी कई बार मिल चुकी थी। फिर भी उनकी इस उपेक्षा का क्या कारण है—जयप्रकाश को समझ में नहीं आता था।

लेकिन जयप्रकाश यह आवश्यक समझते थे कि आजाद हिन्द फौज और आजाद दस्ते में सहयोग प्राप्त हो। बाहर के हमले से कुछ न होगा, यदि भीतर से उसका प्रबलतम सम्पर्क न हो। यह सब सोचकर उन्होंने एक आदमी आसाम की राह से बरमा भेजने का तय किया। भागलपुर के एक धनीमानी सज्जन का आसाम में हाथी का रोजगार होता था। बेचारे को राजनीति से कोई संसर्ग नहीं था, लेकिन देश की आजादी की भावना ने उन्हें अपने ऊपर खतरा लेने को तैयार कर दिया। वह जयप्रकाश का दूत बन-कर आसाम की ओर चले। अपना पूरा साजसामान हाथी के व्यापारी का-सा ही रखा। तोभी उनपर सन्देह हो ही गया। वह बेचारे रास्ते में फौजी खुफिया विभाग द्वारा पकड़े गये—कैद किये गये। किन्तु उन्होंने

ऐसा स्वांग रचा कि अन्ततः उन्हें निरछ व्यापारी समझ कर छोड़ दिया गया। छूट कर यह बरमा की सरहद तक गये और वहां से ऐसे रास्तों का पता लगा लाये, जिनसे बरमा में पहुँचा जा सकता था। वह अगस्त में लौटे, तबतक घनघोर बरसात पहुँच चुकी थी। आसाम में जाना मुश्किल हो गया था। अतः इस समय बरमा की ओर जाने का प्रयत्न बेकार समझ कर अक्टूबर के लिए स्थगित कर दिया गया।

१ सितम्बर ४३ को जयप्रकाश का "आजादी के सैनिकों के नाम दूसरा खत" प्रकाशित हुआ। उसमें उन्होंने इस प्रसंग में यों लिखा है—

"शायद आपको मालूम हो कि श्री सुभाषचन्द्र बोस ने शोनान (सिंगापुर) में एक अस्थायी हिंदुस्तानी राष्ट्रीय सरकार कायम की है, जिसे जापान की सरकार ने मंजूर कर लिया है। उन्होंने आजाद हिन्द फौज का भी संगठन किया है, जिसकी तायदाद दिनदिन बढ़ रही है। इन घटनाओं का हमारे लिए बहुत महत्व है। आपकी जानकारी के लिए मैं यह भी बता देना चाहता हूँ कि सुभाषबाबू की सरकार ने सबसे पहला काम यह किया कि बगाल के अकाल-पीड़ितों के लिए चावल भेजने का सन्देश भेजा किन्तु अँगरेजी सरकार ने हमें पिल्लुओं की तरह मरने देना ही पसद किया।

"यह आसान बात है कि हम सुभाषबाबू को देशद्रोही (क्विजलिंग) कह दें। जो लोग खुद अँगरेजों के क्विसलिंग हैं, वे दूसरे को क्या कह सकते हैं? लेकिन राष्ट्रीय भारत सुभाष को उत्कट देशभक्त के रूप में ही जानता है, जो हमेशा ही आजादी की लड़ाई की अगली पाँत में रहे हैं। यह कल्पना भी नहीं की जा सकती है कि वह अपने देश को बेच देंगे। इसमें शक नहीं कि धुरी-शक्तियों ने ही उन्हें सब सामान और रुपये दिये हैं। किन्तु सबसे पहली बात तो यह है कि उनकी सरकार और फौज में वैसे ही लोग हैं जिनके हृदयों में अँगरेजों से घोर घृणा और अपने देश को आजाद करने की उत्कट इच्छा है। दूसरी बात यह याद रखने की है कि यूरोप के जितनी भगोड़ी सरकारें हैं, सब सयुक्तराष्ट्र के ही पैसों पर तो पल रही हैं। तीसरी बात—इस विश्वयुद्ध की मोर्चाबंदी ऐसी हालत भी पैदा कर सकती है कि महान राष्ट्र भी छोटे और गिरे हुए राष्ट्रों के नजदीक झुकने को

लाचार हो जायँ।……कौटिल्य और मेकियावेली से भी पहले का यह राजनीतिक नियम है कि दुश्मन से भी मदद ली जाय। हो सकता है, हम मदद के चलते सुभाषबाबू अन्त में धोखा खायँ, किन्तु उनकी ईमानदारी पर तो शक नहीं ही किया जा सकता है। अपने देश को आजाद कराने में वह सफल होंगे या नहीं, यह बात घटनाओं की ऐसी श्रृंखला पर निर्भर करती है जिसपर उनका या किसी भी देश के राजनैतिक नेता का वश नहीं।

"लेकिन सोनान की हिन्दोस्तानी सरकार और आजाद हिन्द फौज के महत्व को मानते हुए भी मैं यह साफ कह देना चाहता हूँ कि हमारी आजादी का दारमदार मुख्यतः हमारी शक्ति और साधन पर ही है। बाहरी मदद की उमीद में चुपचाप बैठे रहना आत्महत्या की राजनीति है। सिर्फ बाहरी मदद ही हमें आजाद नहीं करा सकती। यह सोचना भी पागलपन है कि सिर्फ सुभाषबाबू की फौज, चाहे वह कितनी भी बड़ी हो, मित्रराष्ट्रों की फौज को हरा सकेगी। मित्रराष्ट्रों की फौज को जापानी फौज ही हरा सकती है। किन्तु यदि जापानियों ने अँगरेजों को हिन्दोस्तान में हराया, तो वे चुपचाप हिंदोस्तान हमारे हाथों में नहीं सौंप देंगे—भले ही तोजो और सुभाषबाबू में जो भी शर्तनामे हुए हों। हमें तैयार रहना है कि ज्योंही अँगरेजों और जापानियों में हिंदोस्तान के मैदान में लड़ाई छिड़े, हम राज्यशक्ति अपने हाथों में कर ले सकें। यदि हम इसके लिए तैयार रहें, तभी आजाद हिन्द फौज हमारे काम की सिद्ध हो सकती हैं और तभी हम तोजो को हिन्दोस्तान में जापानी राज्य कायम करने से रोक सकते हैं। मुझे मालूम नहीं कि सुभाषबाबू हिंदोस्तान की इस राष्ट्रीय मोर्चाबंदी को समझ सके हैं या नहीं?"

और, जयप्रकाश इसीलिए बेचैन थे कि सुभाषबाबू से मिलकर इस राष्ट्रीय मोर्चाबंदी के बारे में ब्योरे के साथ बातें कर ली जायँ। वह खुद भी बरमा जाने को तैयार थे—आजादी के लिए बड़ा-से-बड़ा खतरा लेना जयप्रकाश के लिए कुछ नहीं था। जो नेपाल में नहीं हो सका, वह बरमा के जंगलों में हो हो! किन्तु, नियति उनकी इस दुस्साहसिकता पर मुस्कुरा रही थी!

७. लाहौर के नारकीय किले में!

चारों ओर जयप्रकाश की खोज है। शहर की गलियों में घेरे डाले जा रहे हैं, घोर देहात के गाँवों पर छापे मारे जा रहे हैं। जिनका चेहरा जयप्रकाश से मिलता-जुलता है, जिनके नाम के आगे-पीछे 'जय' या 'प्रकाश' है, उन पर आफत आई हुई है। तरह-तरह की कहानियाँ प्रचलित हैं; तरह-तरह की गप्पें उड़ रही हैं। कभी वह किसी राजा के घर में ठहरे हुए हैं, कभी कोई सेठ उन्हें सोने के कटोरे में दूध पिला रहा है—उनके आगे-पीछे उनकी अंगरक्षक सेना चला करती है, कितने ही अफसरों ने कई बार उन्हें देखा है; किंतु किसकी मजाल, जो उन्हें गिरफ्तार करे—जन-श्रुतियों और अफवाहों की कमी नहीं।

उनके मित्रों का आग्रह होता है, या तो आप किसी दूसरे देश में चले जाइए, या कहीं छुपकर कुछ दिनों तक रहिए; किंतु जयप्रकाश किसी की नहीं सुनते। वह अपने को बचाने के लिए, छुपाने के लिए, जेल से नहीं भागे हैं। क्रांति के प्रयत्न में अपने को खपा देना कहीं अच्छा है, बनिस्बत अपनी जान बचाने की चेष्टा में इधर-उधर छिपे फिरने के!

उस समय एक अफवाह बड़े जोरों से उड़ रही थी कि उस समय का होम-मेंबर मैक्सवेल जयप्रकाश के खून का प्यासा हो रहा है। उसने हुक्म दे रखा है, जयप्रकाश को जहाँ पाओ, गोली मार दो। अगर जयप्रकाश जिंदा भी पकड़े गए, तो उन्हें फाँसी पर लटकाए बिना वह चैन नहीं लेगा। अपने अनशन के पहले गांधीजी ने सरकार को जो खत लिखा था, उसमें जयप्रकाश की चर्चा करते हुए बड़े दर्द के साथ कहा था कि क्यों शिकारी जानवर की तरह इनका अहेर किया जा रहा है। जयप्रकाश का कसूर क्या है? यही न कि अपने देश के प्रति उनके हृदय में ज्वलंत प्रेम है। कहा जाता है, गांधीजी ने अपने खत में जयप्रकाश की चर्चा इसीलिए की थी कि उन्हें खबर थी, मैक्सवेल जयप्रकाश की जान का गाहक हो रहा है!

किंतु, जयप्रकाश को अपनी जान का सौदा करने में जरा भी उज्र नहीं था। वह निर्भीक और निर्द्वंद्व होकर घूमते-फिरते थे। उन्हें कुछ ऐसा

विश्वास हो गया था कि सरकारी गुर्गे पता लगाकर उन्हें पकड़ सकेंगे। वह अकेले लंबे-लंबे सफर कर लेते।

बरसात पहुँच चुकी थी और तबीयत भी कुछ खराब थी, अतः तय किया गया कि बीच के दो महीने काश्मीर की तरफ गुजारे जाएँ। भारत की उत्तरी-पश्चिमी सीमा से संपर्क ताजा कर लेना था; उधर के क्रांतिकारियों से घनिष्ठता बढ़ा लेनी थी। बरसात खत्म होते ही जापानी चढ़ाई की उमीद की जाती थी। तबतक क्रांति की सेनानियों में भी कुछ निश्चितता आ जाने की संभावना थी। कलकत्ता से दिल्ली और दिल्ली से काश्मीर की ओर।

१८वीं सितंबर, १९४३। दस बजे रात को सूट बूट में एक देसी साहब दिल्ली के सदर स्टेशन पर आते हैं और लाहौर जानेवाली ट्रेन के एक फर्स्ट क्लास डब्बे में सवार हो जाते हैं। बर्थ पहले से ही रिजर्व किया जा चुका है। सीटी होती है, गाड़ी चलती है। गाड़ी जब सरकती है, वह प्लैटफार्म की ओर चौकन्ना होकर देखते हैं और कहीं कुछ अस्वाभाविक नहीं पाकर अपना बिस्तरा फैलाकर लेट जाते हैं। किंतु, आज क्या बात है कि नींद नहीं आ रही है?

यह जयप्रकाश हैं। ९ नवंबर, १९४२ को हजारीबाग जेल से निकल पड़े और आज १८ वीं सितंबर १९४३ है। कुल दस महीने नौ दिन हुए हैं। ये दस महीने नौ दिन कैसे बीते हैं, किन मुसीबतों में बीते हैं! शरीर ने कौन-कौन से कष्ट नहीं उठाए, मस्तिष्क ने किन-किन चिन्ताओं का अनुभव नहीं किया! फरार की यह जिन्दगी—हमेशा नसें खिंची खिंची; हमेशा इन्द्रियाँ चौकस, चैतन्य! किन्तु, इन सबके ऊपर 'चांस' का खेलवाड़! चौकसी कहाँ तक मदद करेगी, यदि 'चांस' धोखा दे। इन दस महीनों के अंदर, कई ऐसे साथी गिरफ्तार हो चुके हैं, जिन्हें अपनी चौकसी और चालाकी पर नाज था! शुक्लजी बेचारे दस दिन भी बाहर नहीं रह सके, उनके अरमान उनके दिल में ही रह गये। बसावन अपने को तीसमार खाँ समझे बैठे थे, दिल्ली में गुप्त-गुप्त में बी० पी० सिन्हा के साथ गिरफ्तार हुये। अपने पूरे काफले के साथ जोशी गये, रामनन्दन भी पकड़े जा चुके हैं। क्रान्तिकारियों की पाँत कमजोर होती जाती है। कमजोर? नहीं-नहीं, ये

नये-नये लोग जो आये हैं, वे तो कमाल कर रहे हैं। आज समूचे देश में कम-से-कम दस हजार ऐसे आदमी हैं, जो संघबद्ध होकर, एक मनप्राण होकर क्रान्ति के बारे में सोच रहे हैं, कर रहे हैं। निराशा की कोई बात नहीं, क्रान्ति अमर है ......। पास में जो कई कागज हैं, क्या उन्हें नष्ट कर दिया जाए? इसी समय? हड़बड़ी क्या है—कल देखा जायेगा......।

और, अब कल होता है, तो यह अमृतसर है। मुँह-हाथ धोकर चाय-वाले को पुकारा जाता है। चायवाला ट्रे रख जाता है। चाय बनाकर पीने जा रहे हैं, कि बाहर से कोई दस्तक दे रहा है। आइए! एक अँगरेज, दो सिक्ख। तीनों आकर खड़े हैं, घूर रहे हैं। शक हो रहा है, चाय की चुस्की ली जा रही है। फिर सिर उठाकर कहते हैं—"बैठिए!" अँगरेज पूछता है—'कहाँ जा रहे हैं आप?' 'रावलपिंडी। बैठिए न?' किन्तु, वह बैठे क्या, फिर पूछता है,—"आपका साथी कहाँ है?"

"साथी? मैं तो अकेला हूँ।"

"तो, आप सिर निकालकर पीछे देख किसे रहे थे?"

"मैं किसे देखूँ—शायद आपको कुछ धोखा हो रहा है।"

"धोखा? तो, हाँ, इस ऊपर के बर्थ पर बिछावन किसका है?"—जयप्रकाश का होल्डौल ऊपर रखा था और उससे बिस्तरा निकाल कर वह नीचे के बर्थ पर रात में सोए थे। होल्डौल से उसे शक हो रहा था कि किसी दूसरे का बिस्तरा है। किन्तु, जयप्रकाश उसे बराबर इत्मीनान दिलाने की कोशिश करते हैं कि कोई दूसरा नहीं है। तब वह कहता है—

"आप मुझे धोखा नहीं दे सकते—यह नेपाल नहीं है!"

"नेपाल?"

"जी हाँ, आज आप बुरी तरह फँस गए हैं।"

"आप यह क्या कह रहे हैं? मैं कभी नेपाल नहीं गया। मैं बम्बई का व्यापारी हूँ।"

"आप जयप्रकाश नारायण हैं!"

"जी नहीं, मैं हूँ एस॰ पी॰ मेहता!"

"अच्छा, पहले अपनी तलाशी दे लीजिए। हमलोग पुलिस-अफसर हैं, यह तो आप समझ हो गए होंगे।

"जैसी आपलोगों की मर्जी!"

अब तलाशी शुरू हो रही है। बिस्तर देखा जाता है, सूटकेस देखा जाता है। पर्स देखा जाता है, टिकट देखा जाता है। पाकेटें देखी जाती हैं, तकिए को उलट-पलटकर देखा जाता है। कागज-पत्र की ओर उनका ध्यान भी नहीं है।

"आपके हथियार कहाँ है?"

"यह सब आप क्या बोल रहे हैं। मैं हूँ बम्बई का व्यापारी, एस० पी० मेहता। मैं फिजूल में तंग किया जा रहा हूँ।' वह अँगरेज अफसर बैठ जाता है। हँसकर कहने लगता है—

"आज आप बच गए; अगर ज्यादा सिर निकालते, हम आपको शूट कर देते। आप बिल्कुल घिरे थे। चारों ओर हमारे आदमी हैं। खैर, बताइए, आपके हथियार कहाँ हैं? आपके आदमी किस डब्बे में हैं।"

किन्तु, जयप्रकाश कहे जा रहे हैं—"आप गलत आदमी को घेरे हुए हैं। मैं तो बम्बई का व्यापारी हूँ। मैं नेपाल क्या जानूँ? हाँ, जयप्रकाश नारायण का नाम जरूर सुना है। किन्तु, मुझसे उनसे कोई वास्ता नहीं है। आपने तो तलाशी भी ले ली है।"

किन्तु, इन चरलों में वह आनेवाला नहीं। वह कहता है—"मिस्टर जे० पी०, यह बिल्कुल चांस की बात है कि आप पकड़े गए हैं। मेरा सौभाग्य था और आपका दुर्भाग्य— बस सिर्फ इतना ही। आपके पकड़ लेने का श्रेय मैं नहीं लेना चाहता।"

फिर वह इधर-उधर की बातें करने लगता है—"आपके देश में डेमोक्रैसी हो नहीं सकती; आपकी जमीन की यह उपज नहीं, आपके देश की यह चीज नहीं। हो सकता है, आप बिहार के बादशाह हो जाएँ। यह मुमकिन है। किन्तु, आप प्रजातंत्र के प्रेसिडेंट हों; यह बिलकुल गैरमुमकिन बात है।" और, साहब के इन बातों का जवाब सिर्फ यह कहकर दिया जा रहा है, आप गलत आदमी से ये बातें कह रहे हैं, मैं राजनीति क्या जानूँ, मैं तो एक साधारण-व्यापारी हूँ।

वातावरण में गाड़ी लाहौर के इधर मुगलपुरा पहुँचती है। गाड़ी से उत-रने के पहले जयप्रकाश के हाथ उनके स्ट्रैप से बाँध दिया जाता है। स्टेशन के बाहर लारी मोटर खड़ी थी। पहले से ही इंतजाम था। घरघर करती मोटर चलती और जयप्रकाश को लाहौर के उस नारकीय किले में दाखिल कर देती है।

यह है लाहौर फोर्ट।—हिंदोस्तान का नाजी कैंप नं० १। हाँ, नाजियों द्वारा दी गई यंत्रणाओं का हिंदोस्तान में कहीं जिक्र होता है, तो यहीं। अभी कुछ दिन पहले यहाँ रामनंदन पर क्या-क्या नहीं बीती है? बेचारे को सोने तक नहीं दिया जाता—बाल नोचे जा रहे हैं, लात-घूँसे लग रहे हैं, कंबल डालकर डंडे से पीटा जा रहा है, खाने-पीने की क्या चर्चा, अब कपड़े तक पहनने को नहीं दिए जा रहे हैं। रामनंदन अधमुए हो चुके थे—शरीर का लगभग एक मन खून और मांस गँवा चुके थे, तब कहीं उन्हें इस नार-कीय किले से फुर्सत मिली।

जयप्रकाश की गिरफ्तारी के बाद सरकार ने इस खबर को छिपाकर रखना चाहा। लेकिन, धीरे-धीरे यह बात खुली और लोगों में अफवाहें फैलने लगीं कि लाहौर किले में जयप्रकाश को तरह-तरह की यंत्रणाएँ दी जा रही हैं, जिनमें एक था कि जयप्रकाश को बर्फ पर बिठाया जा रहा है। साइटिका के बीमार को बर्फ पर बिठलाना—इस कल्पना से ही लोग काँप उठे। बंबई के सुप्रसिद्ध बैरिस्टर पारडीवाला लाहौर पहुँचे और उन्होंने लाहौर हाईकोर्ट में जयप्रकाश के लिए 'हाबियस कारपस' की दरखास्त दी। इस दरखास्त के मुताबिक जयप्रकाश को कोर्ट में कहाँ तक हाजिर किया जाता, पारडीवाला को ही पंजाब की पुलिस ने जेल में रख दिया। पारडीवाला की गिरफ्तारी से और भी सनसनी फैली। तब सुश्री पूर्णिमा बनर्जी पंजाब पहुँची और वहाँ के सुप्रसिद्ध वकील श्री जीवनलाल कपूर के द्वारा 'हाबियस कारपस' की दरखास्त दिलवाई। तब पंजाब की पुलिस ने दूसरी चालाकी की—अगर इसे शैतानी नहीं कहा जाए तो! जयप्रकाश को सेक्यूरिटी प्रिजनर से बदलकर १८१८ के तीसरे रेगुलेशन का स्टेट प्रिजनर बना दिया, जिसके मोताबिक 'हाबियस कारपस' की कार्रवाई नहीं हो सकती थी। किंतु, तमाशा यह कि ज्योंही

हाबियस कारपस की दरखास्त वापिस की गई, त्योंही उन्हें फिर सेक्यूरिटी प्रिजनर बना दिया गया।

उसके बाद ही बड़े जोरों से अफवाह फैली कि जयप्रकाश पर सरकार मुकदमा चलाने जा रही है और उनपर राज्य-विद्रोह के अतिरिक्त षड्यंत्र, हत्या आदि के अभियोग भी लगाए जाएँगे। इस मुकदमे के सिलसिले में बिहार में पुलिस की दौड़धूप भी शुरू हुई और अफवाह थी कि स्कॉटलैंड यार्ड के विशेषज्ञ भी इस मामले में बुलाए गए हैं। इस मुकदमे की खबर से बड़ी सनसनी मची; जयप्रकाश के मुकदमे की पैरवी करने के लिए सिर्फ हिंदोस्तान के बड़े-बड़े वकीलों के ही पैगाम नहीं आए, बल्कि इंगलैंड के इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी ने भी अपनी ओर से वकील भेजने का संवाद दिया। इन हलचलों के बाद मुकदमा चलाने की बात भी टायँटायँ फिस हो गई।

जयप्रकाश को लेकर इतना आंदोलन चल रहा था कि पंजाब सरकार ने उन्हें लाहौर से आगरा जेल भेज दिया। आगरा जेल में उनसे मिलने ब्रिटिश डेलिगेशन के श्री सोरेनसेन गए और तब खबर उड़ने लगी कि जयप्रकाश छोड़ दिए जाएँगे। किंतु, यह काम तब तक नहीं हुआ, जबतक कैबिनेट मिशन हिंदोस्तान नहीं पहुँचा। कहा जाता है, गांधीजी ने अँगरेजों की ईमानदारी के सबूत में यह भी रखा था कि जयप्रकाश को जेल से रिहा किया जाए। रिहाई के पहले भारत सरकार के होम मेंबर जयप्रकाश से मिलने आगरा जेल पहुँचे। दूसरी बातों के साथ होम मेंबर ने जयप्रकाश के सामने हिंसा और अहिंसा का प्रश्न उठाया। जयप्रकाश रिहाई के लिए अपने विचार को छिपा नहीं सकते थे। उन्होंने साफ कह दिया—हमारा मकसद आजादी है; अगर अहिंसा से मिलो, तो फिर क्या कहना है ? किंतु, जरूरत हुई, तो हिंसा से भी उसे प्राप्त करने में हम नहीं मुकरेंगे। कहा जाता है, होम - मेंबर जयप्रकाश के इस स्पष्ट कथन से बहुत ही प्रभावित हुए थे।

ता० ११ अप्रैल, '४६ को यह खबर बिजली की तरह सारे देश में फैल गई कि जयप्रकाश अपने साथी डाक्टर लोहिया के साथ आगरा जेल से रिहा कर दिए गए। जयप्रकाश को देश ने एक स्वर से अगस्त-क्रांति का अग्रदूत मानकर जो स्वागत किया और आज भी कर रहा है—क्या अभी उसकी चर्चा की जरूरत है।

जयप्रकाश और प्रभावती

हाबियस कारपस की दरख्वास्त वापिस की गई, त्योंही उन्हें फिर सेक्यूरिटी प्रिजनर बना दिया गया।

उसके बाद ही बड़े जोरों से अफवाह फैली कि जयप्रकाश पर सरकार मुकदमा चलाने जा रही है और उनपर राज्य-विद्रोह के अतिरिक्त षड्यंत्र, हत्या आदि के अभियोग भी लगाए जाएँगे। इस मुकदमे के सिलसिले में बिहार में पुलिस की दौड़धूप भी शुरू हुई और अफवाह थी कि स्कॉटलैंड यार्ड के विशेषज्ञ भी इस मामले में बुलाए गए हैं। इस मुकदमे की खबर से बड़ी सनसनी मची; जयप्रकाश के मुकदमे की पैरवी करने के लिए सिर्फ हिंदोस्तान के बड़े-बड़े वकीलों के ही पैगाम नहीं आए, बल्कि इंगलैंड के इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी ने भी अपनी ओर से वकील भेजने का संवाद दिया। इन हलचलों के बाद मुकदमा चलाने की बात भी टायँटायँ फिस हो गई।

जयप्रकाश को लेकर इतना आंदोलन चल रहा था कि पंजाब सरकार ने उन्हें लाहौर से आगरा जेल भेज दिया। आगरा जेल में उनसे मिलने ब्रिटिश डेलिगेशन के श्री सोरेनसेन गए और तब खबर उड़ने लगी कि जयप्रकाश छोड़ दिए जाएँगे। किंतु, यह काम तब तक नहीं हुआ, जबतक कैबिनेट मिशन हिंदोस्तान नहीं पहुँचा। कहा जाता है, गांधीजी ने अँगरेजों की ईमानदारी के सबूत में यह भी रखा था कि जयप्रकाश को जेल से रिहा किया जाए। रिहाई के पहले भारत सरकार के होम मेंबर जयप्रकाश से मिलने आगरा जेल पहुँचे। दूसरी बातों के साथ होम मेंबर ने जयप्रकाश के सामने हिंसा और अहिंसा का प्रश्न उठाया। जयप्रकाश रिहाई के लिए अपने विचार को छिपा नहीं सकते थे। उन्होंने साफ कह दिया—हमारा मकसद आजादी है; अगर अहिंसा से मिले, तो फिर क्या कहना है? किंतु, जरूरत हुई, तो हिंसा से भी उसे प्राप्त करने में हम नहीं मुकरेंगे। कहा जाता है, होम-मेंबर जयप्रकाश के इस स्पष्ट कथन से बहुत ही प्रभावित हुए थे।

ता० ११ अप्रैल, '४६ को यह खबर बिजली की तरह सारे देश में फैल गई कि जयप्रकाश अपने साथी डाक्टर लोहिया के साथ आगरा जेल से रिहा कर दिए गए। जयप्रकाश को देश ने एक स्वर से अगस्त-क्रांति का अग्रदूत मानकर जो स्वागत किया और आज भी कर रहा है—क्या अभी उसकी चर्चा की जरूरत है।

आज जर्रा-जर्रा बोल रहा है !

उस दिन नदियाँ बोलीं, आज जर्रा-जर्रा बोल रहा है !

बचपन का वह गुमसुम देहाती लड़का किशोरावस्था में आते ही अपनी प्रतिभा के पंख फटफटाने लगा ; युवावस्था के आगमन के साथ ही उसने सात समुन्दर की सैर कर ली, सात घाट का पानी पीकर अपने को ज्ञानवृद्ध बना लिया ; देश में लौटते ही वह राष्ट्र की सर्वमान्य संस्था से सम्बद्ध हुआ और उसके उच्चतम पदों की जिम्मेवारी योग्यतापूर्वक निभाई ; किन्तु, पुराना आकाश उसके नये पंखों के लिए पूरा नहीं मालूम हुआ, उसने नये आकाश की सृष्टि की—एक नई संस्था की कल्पना की, उसे मूर्त्त रूप दिया, उसे विकसित किया।

अपने दोनों पंखों से दोनों आकाशों को आच्छादित किये, मथते हुए उसने कितनी ही बार अपनी जान की बाजी लगाई—उसके अपनों की छाती बैठी जा रही थी ; परायों की साँस फूल रही थी—अरे, यह क्या होने जा रहा है ? क्या वह गया, सदा के लिए गया ? किन्तु हर बार वह मृत्यु-सागर की लहरों को चीरता हुआ ऊपर हुआ, हँसता, मुस्कुराता—उस कमल नाल-सा, जो क्षीर-शायी विष्णु की नाभि से फूट कर जगत-सृष्टा ब्रह्मा का सृष्टा बनता है।

नासिक, लाहौर, देवली, हजारीबाग—गुलाम देश के दक्षिण-उत्तर, पश्चिम-पूरब को अपनी लौहशृंखला में बाँधनेवाली काराओं ने उसको, उसकी निर्बन्ध आत्मा को निगलने की क्या-क्या न कोशिशें कीं; किन्तु वे क्या जानती थीं कि बकासुर की तरह अपने पेट फाड़ने के ही प्रयास में वे लगी हैं? इनसे वह निकला,—अपने डैनों में नये पंख लेते हुए, अपनी उड़ान में नई जान लेते हुए! हर घेरा उसकी आत्मा को प्रसार देता रहा है; हर बंधन उसकी गति को प्रखरता प्रदान करता रहा है!

आज वह दूने वेग से, चौगुनी ऊँचाई से देश के कोने-कोने को नाप डालने को तुला हुआ है! उसके पंखों की हहास, उसकी वाणी की तीक्ष्णता, उसके प्रशंसकों के हृदयों में उल्लास और उत्साह की सृष्टि करती है; और जो विपक्षी हैं, वे या तो भयभीत हो रहे हैं या समझ नहीं पाते, यह क्या है!

सिर्फ हिन्दोस्तान के नहीं; नये संसार के नवीनतम अग्रदूतों में उसकी गिनती होने लगी है और देखनेवाली आँखें देख रही हैं, वह 'प्रकाश' जो अभी अपने देश के अंधकार को ही छिन्न करने में लगा है, यहाँ 'जय' पाते ही संसार के कोने-कोने को भी उद्भासित-प्रकाशित करके रहेगा!

संक्रान्ति काल महानताओं का जनक होता है! महान कर्तृत्व, महान व्यक्तित्व; महान कलाकृति, महान श्रुतिस्मृति—संक्रान्ति काल में ही विकास पाते हैं! हम समझें या न समझें, हमारे देश का संक्रान्तिकाल हमें वैसी-वैसी महान हस्तियाँ दे रहा है, जिनपर हम सदियों तक नाज कर सकेंगे।

जयप्रकाश उन्हीं महान हस्तियों में हैं—क्या आप नहीं देख रहे' आँखें नहीं, तो *क्या कान भी नहीं हैं आपके! क्या आप नहीं सुन रहे हैं*, आपके देश का जर्रा-जर्रा क्या पुकार रहा है?

हाँ, आपके देश के जर्रे-जर्रे में एक आवाज है, एक पुकार है। वह आवाज, वह पुकार दिन-दिन स्पष्ट होती जा रही है—बहरे कानों में भी पहुँचने की बेचैनी उसे बेताब किये हुई है।

वह आवाज कहती है—आज जो तुम थोड़ी शान्ति देख रहे हो, वह आनेवाली आँधी के पहले का सन्नाटा-मात्र है। यह सन्नाटा टूटनेवाला है, एक बड़ा-सा झोंका इस देश को लक्ष्य बनाये दौड़ा आ रहा है। झोंका—

आँधी—तूफान ! पेड़ उखड़ेंगे; अट्टालिकायें हिलेंगी। जमीन के गर्दगुबार दूर होंगे। फिर, एक शीतल शान्तदायिनी फुहार, वर्षा ! पृथ्वी के कालिमा-कलुष धुल जायँगे; पेड़ों में नये पत्ते उगेंगे, अट्टालिकाओं पर ही नहीं, झोपड़ों पर भी नये रंग चमकेंगे ! आज की ऊसर-भूमि नन्दन उपवन बनकर रहेगी !

वह पुकार हमारे कर्णकुहरों में चिल्ला-चिल्ला कर कहती है—उफ, तुम कैसे हो, तुम कुछ नहीं सुन रहे ! अरे, जिसे तुम जयप्रकाश कहते हो न—वह उसी आगत झोंके, आँधी, तूफान और अन्त की शीतल शान्तिदायिनी फुहार, वर्षा का प्रतीक है ! महापुरुष सिर्फ बड़ा आदमी नहीं होता, एक प्रतीक होता है—किसी महान उद्देश्य का, किसी महान कर्म का ! लक्ष-लक्ष मानव मन की आशायें, आकांक्षायें ही एकत्र होकर एक महापुरुष का रूप धारण करती हैं ! ऐसे महान पुरुषों का वन्दन-अभिनन्दन व्यक्तिपूजा नहीं, आदर्शपूजा है और उसके कार्यों में हाथ बँटाने की चेष्टा पुनीत महायज्ञ ! यज्ञाग्नि प्रज्वलित है, उसमें अपनी समिधा डालो !